****

ARANYA KISKENDH SUNDER KAND

****

विषय	पृष्ठ-संख्या
३१-समुद्र लाँघनेका परामर्श, जाम्बवन्तका हनुमान्‌जीको बल याद दिलाकर उत्साहित करना	७९
३२-श्रीराम-गुणका माहात्म्य ..	८०
सुन्दरकाण्ड	
३३-मङ्गलाचरण	८३
३४-हनुमान्‌जीका लङ्काको प्रस्थान, सुरसासे भेंट, छाया पकड़ने-वाली राक्षसीका वध ..	८४
३५-लङ्कावर्णन, लङ्किनी-वध, लङ्कामें प्रवेश	८६
३६-हनुमान्-विभीषण-संवाद ..	८८
३७-हनुमान्‌जीका अशोकवाटिकामें सीताको देखकर दुःखी होना और रावणका सीताजीको भय दिखलाना	९०
३८-श्रीसीता-त्रिजटा-संवाद ..	९२
३९-श्रीसीता-हनुमान्-संवाद ..	९३
४०-हनुमान्‌जीद्वारा अशोकवाटिका-विध्वंस, अक्षयकुमार-वध और मेघनादका हनुमान्‌जीको नागपाशमें बाँधकर सभामें ले जाना	९७
४१-हनुमान्-रावण-संवाद ..	९९
४२-लङ्कादहन	१०३
४३-लङ्का जलानेके बाद हनुमान्‌जी-का सीताजीसे विदा माँगना और चूड़ामणि पाना ..	१०३
४४-समुद्रके इस पार आना, सबका लौटना, मधुवन-प्रवेश सुग्रीवमिलन, श्रीराम-हनुमान्-संवाद	१०४
४५-श्रीरामजीका वानरोंकी सेनाके साथ चलकर समुद्रतटपर पहुँचना	१०९
४६-मन्दोदरी-रावण-संवाद ..	११०
४७-रावणको विभीषणका समझाना और विभीषणका अपमान ..	११२
४८-विभीषणका भगवान् श्रीरामजीकी शरणके लिये प्रस्थान और शरणप्राप्ति	११४
४९-समुद्र पार करनेके लिये विचार, रावणदूत शुकका आना और लक्ष्मणजीके पत्रको लेकर लौटना	१२०
५०-दूतका रावणको समझाना और लक्ष्मणजीका पत्र देना ..	१२३
५१-समुद्रपर श्रीरामजीका क्रोध और समुद्रकी विनती ...	१२५
५२-श्रीराम-गुण-गानकी महिमा ...	१२८

श्रीगणेशाय नमः

श्रीजानकीवल्लभो विजयते

श्रीरामचरितमानस

तृतीय सोपान

अरण्यकाण्ड

श्लोक

मूलं धर्मतरोर्विवेकजलधेः पूर्णेन्दुमानन्ददं
वैराग्याम्बुजभास्करं ह्यघघनध्वान्तापहं तापहम्।
मोहाम्भोधरपूगपाटनविधौ स्वःसम्भवं शङ्करं
वन्दे ब्रह्मकुलं कलङ्कशमनं श्रीरामभूपप्रियम्॥ १॥

धर्मरूपी वृक्षके मूल, विवेकरूपी समुद्रको आनन्द देनेवाले पूर्णचन्द्र, वैराग्यरूपी कमलके [विकसित करनेवाले] सूर्य, पापरूपी घोर अन्धकारको निश्चय ही मिटानेवाले, तीनों तापोंको हरनेवाले, मोहरूपी बादलोंके समूहको छिन्न-भिन्न करनेकी विधि (क्रिया) में आकाशसे उत्पन्न पवनस्वरूप, ब्रह्माजीके वंशज (आत्मज) तथा कलङ्कनाशक महाराज श्रीरामचन्द्रजीके प्रिय श्रीशंकरजीकी मैं वन्दना करता हूँ॥ १॥

सान्द्रानन्दपयोदसौभगतनुं पीताम्बरं सुन्दरं
पाणौ बाणशरासनं कटिलसत्तूणीरभारं वरम्।
राजीवायतलोचनं धृतजटाजूटेन संशोभितं
सीतालक्ष्मणसंयुतं पथिगतं रामाभिरामं भजे॥ २॥

जिनका शरीर जलयुक्त मेघोंके समान सुन्दर (श्यामवर्ण) एवं आनन्दघन है, जो सुन्दर [वल्कलका] पीतवस्त्र धारण किये हैं, जिनके हाथोंमें बाण और धनुष हैं, कमर उत्तम तरकसके भारसे सुशोभित है, कमलके समान विशाल नेत्र हैं और मस्तकपर जटाजूट धारण किये हैं, उन अत्यन्त शोभायमान श्रीसीताजी और लक्ष्मणजीसहित मार्गमें चलते हुए आनन्द देनेवाले श्रीरामचन्द्रजीको मैं भजता हूँ॥ २॥

सो०—उमा राम गुन गूढ़ पंडित मुनि पावहिं बिरति।
पावहिं मोह बिमूढ़ जे हरि बिमुख न धर्म रति॥

हे पार्वती! श्रीरामजीके गुण गूढ़ हैं, पण्डित और मुनि उन्हें समझकर वैराग्य प्राप्त करते हैं। परंतु जो भगवान्‌से विमुख हैं और जिनका धर्ममें प्रेम नहीं है, वे महामूढ़ [उन्हें सुनकर] मोहको प्राप्त होते हैं।

चौ०—पुर नर भरत प्रीति मैं गाई। मति अनुरूप अनूप सुहाई॥
अब प्रभु चरित सुनहु अति पावन। करत जे बन सुर नर मुनि भावन॥ १॥

पुरवासियोंके और भरतजीके अनुपम और सुन्दर प्रेमका मैंने अपनी बुद्धिके अनुसार गान किया। अब देवता, मनुष्य और मुनियोंके मनको भानेवाले प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके वे अत्यन्त पवित्र चरित्र सुनो, जिन्हें वे वनमें कर रहे हैं॥ १॥

एक बार चुनि कुसुम सुहाए। निज कर भूषन राम बनाए॥
सीतहि पहिराए प्रभु सादर। बैठे फटिक सिला पर सुंदर॥ २॥

एक बार सुन्दर फूल चुनकर श्रीरामजीने अपने हाथोंसे भाँति-भाँतिके गहने बनाये और सुन्दर स्फटिकशिलापर बैठे हुए प्रभुने आदरके साथ वे गहने श्रीसीताजीको पहनाये॥ २॥

सुरपति सुत धरि बायस बेषा। सठ चाहत रघुपति बल देखा॥
जिमि पिपीलिका सागर थाहा। महा मंदमति पावन चाहा॥ ३॥

देवराज इन्द्रका मूर्ख पुत्र जयन्त कौएका रूप धरकर श्रीरघुनाथजीका बल देखना चाहता है। जैसे महान् मन्दबुद्धि चींटी समुद्रका थाह पाना चाहती हो॥ ३॥

सीता चरन चोंच हति भागा। मूढ़ मंदमति कारन कागा॥
चला रुधिर रघुनायक जाना। सींक धनुष सायक संधाना॥ ४॥

वह मूढ़, मन्दबुद्धि कारणसे (भगवान्‌के बलकी परीक्षा करनेके लिये) बना हुआ कौआ सीताजीके चरणोंमें चोंच मारकर भागा। जब रक्त बह चला, तब श्रीरघुनाथजीने जाना और धनुषपर सींक (सरकंडे) का बाण संधान किया॥ ४॥

दो०—अति कृपाल रघुनायक सदा दीन पर नेह।
ता सन आइ कीन्ह छलु मूरख अवगुन गेह॥ १॥

श्रीरघुनाथजी, जो अत्यन्त ही कृपालु हैं और जिनका दीनोंपर सदा प्रेम रहता है, उनसे भी उस अवगुणोंके घर मूर्ख जयन्तने आकर छल किया॥ १॥

चौ०—प्रेरित मंत्र ब्रह्मसर धावा। चला भाजि बायस भय पावा॥
धरि निज रूप गयउ पितु पाहीं। राम बिमुख राखा तेहि नाहीं॥ १॥

मन्त्रसे प्रेरित होकर वह ब्रह्मबाण दौड़ा। कौआ भयभीत होकर भाग चला। वह अपना असली रूप धरकर पिता इन्द्रके पास गया, पर श्रीरामजीका विरोधी जानकर इन्द्रने उसको नहीं रक्खा॥ १॥

भा निरास उपजी मन त्रासा। जथा चक्र भय रिषि दुर्बासा॥
ब्रह्मधाम सिवपुर सब लोका। फिरा श्रमित ब्याकुल भय सोका॥ २॥

तब वह निराश हो गया, उसके मनमें भय उत्पन्न हो गया; जैसे दुर्वासा ऋषिको चक्रसे भय हुआ था। वह ब्रह्मलोक, शिवलोक आदि समस्त लोकोंमें थका हुआ और भय-शोकसे व्याकुल होकर भागता फिरा॥ २॥

काहूँ बैठन कहा न ओही। राखि को सकइ राम कर द्रोही॥
मातु मृत्यु पितु समन समाना। सुधा होइ बिष सुनु हरिजाना॥ ३॥

[पर रखना तो दूर रहा] किसीने उसे बैठनेतकके लिये नहीं कहा। श्रीरामजीके द्रोहीको कौन रख सकता है? [काकभुशुण्डिजी कहते हैं—] हे गरुड़! सुनिये, उसके लिये माता मृत्युके समान, पिता यमराजके समान और अमृत विषके समान हो जाता है॥ ३॥

मित्र करइ सत रिपु कै करनी। ता कहँ बिबुधनदी बैतरनी॥
सब जगु ताहि अनलहु ते ताता। जो रघुबीर बिमुख सुनु भ्राता॥ ४॥

मित्र सैकड़ों शत्रुओंकी-सी करनी करने लगता है। देवनदी गङ्गाजी उसके लिये वैतरणी (यमपुरीकी नदी) हो जाती है। हे भाई ! सुनिये, जो श्रीरघुनाथजीके विमुख होता है, समस्त जगत् उसके लिये अग्निसे भी अधिक गरम (जलानेवाला) हो जाता है॥ ४॥

नारद देखा बिकल जयंता। लागि दया कोमल चित संता॥
पठवा तुरत राम पहिं ताही। कहेसि पुकारि प्रनत हित पाही॥ ५॥

नारदजीने जयन्तको व्याकुल देखा तो उन्हें दया आ गयी; क्योंकि संतोंका चित्त बड़ा कोमल होता है। उन्होंने उसे [समझाकर] तुरंत श्रीरामजीके पास भेज दिया। उसने [जाकर] पुकारकर कहा—हे शरणागतके हितकारी ! मेरी रक्षा कीजिये॥ ५॥

आतुर सभय गहेसि पद जाई। त्राहि त्राहि दयाल रघुराई॥
अतुलित बल अतुलित प्रभुताई। मैं मतिमंद जानि नहिं पाई॥ ६॥

आतुर और भयभीत जयन्तने जाकर श्रीरामजीके चरण पकड़ लिये [और कहा—] हे दयालु रघुनाथजी ! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। आपके अतुलित बल और आपकी अतुलित प्रभुता (सामर्थ्य) को मैं मन्दबुद्धि जान नहीं पाया था॥ ६॥

निज कृत कर्म जनित फल पायउँ। अब प्रभु पाहि सरन तकि आयउँ॥
सुनि कृपाल अति आरत बानी। एकनयन करि तजा भवानी॥ ७॥

अपने किये हुए कर्मसे उत्पन्न हुआ फल मैंने पा लिया। अब हे प्रभु ! मेरी रक्षा कीजिये। मैं आपकी शरण तककर आया हूँ। [शिवजी कहते हैं—] हे पार्वती ! कृपालु श्रीरघुनाथजीने उसकी अत्यन्त आर्त (दुःखभरी) वाणी सुनकर उसे एक आँखका काना करके छोड़ दिया॥ ७॥

सो०—कीन्ह मोह बस द्रोह जद्यपि तेहि कर बध उचित।
प्रभु छाड़ेउ करि छोह को कृपाल रघुबीर सम॥ २॥

उसने मोहवश द्रोह किया था, इसलिये यद्यपि उसका वध ही उचित था, पर प्रभुने कृपा करके उसे छोड़ दिया। श्रीरामजीके समान कृपालु और कौन होगा ?॥ २॥

चौ०—रघुपति चित्रकूट बसि नाना। चरित किए श्रुति सुधा समाना॥
बहुरि राम अस मन अनुमाना। होइहि भीर सबहिं मोहि जाना॥ १॥

चित्रकूटमें बसकर श्रीरघुनाथजीने बहुत-से चरित्र किये, जो कानोंको अमृतके समान [प्रिय] हैं। फिर (कुछ समय पश्चात्) श्रीरामजीने मनमें ऐसा अनुमान किया कि मुझे सब लोग जान गये हैं, इससे (यहाँ) बड़ी भीड़ हो जायगी॥ १॥

सकल मुनिन्ह सन बिदा कराई। सीता सहित चले द्वौ भाई॥
अत्रि के आश्रम जब प्रभु गयऊ। सुनत महामुनि हरषित भयऊ॥ २॥

[इसलिये] सब मुनियोंसे विदा लेकर सीताजीसहित दोनों भाई चले ! जब प्रभु अत्रिजीके आश्रममें गये, तो उनका आगमन सुनते ही महामुनि हर्षित हो गये॥ २॥

पुलकित गात अत्रि उठि धाए। देखि रामु आतुर चलि आए॥
करत दंडवत मुनि उर लाए। प्रेम बारि द्वौ जन अन्हवाए॥ ३॥

शरीर पुलकित हो गया, अत्रिजी उठकर दौड़े। उन्हें दौड़े आते देखकर श्रीरामजी और भी शीघ्रतासे चले आये। दण्डवत् करते हुए ही श्रीरामजीको [उठाकर] मुनिने हृदयसे लगा लिया

और प्रेमाश्रुओंके जलसे दोनों जनोंको (दोनों भाइयोंको) नहला दिया ॥ ३ ॥

देखि राम छबि नयन जुड़ाने। सादर निज आश्रम तब आने ॥
करि पूजा कहि बचन सुहाए। दिए मूल फल प्रभु मन भाए ॥ ४ ॥

श्रीरामजीकी छबि देखकर मुनिके नेत्र शीतल हो गये। तब वे उनको आदरपूर्वक अपने आश्रममें ले आये। पूजन करके सुन्दर वचन कहकर मुनिने मूल और फल दिये, जो प्रभुके मनको बहुत रुचे ॥ ४ ॥

सो०—प्रभु आसन आसीन भरि लोचन सोभा निरखि ॥
मुनिबर परम प्रबीन जोरि पानि अस्तुति करत ॥ ३ ॥

प्रभु आसनपर विराजमान हैं। नेत्र भरकर उनकी शोभा देखकर परम प्रवीण मुनिश्रेष्ठ हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे— ॥ ३ ॥

छं०—नमामि भक्त वत्सलं। कृपालु शील कोमलं ॥
भजामि ते पदांबुजं। अकामिनां स्वधामदं ॥ १ ॥

हे भक्तवत्सल ! हे कृपालु ! हे कोमल स्वभाववाले ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। निष्काम पुरुषोंको अपना परमधाम देनेवाले आपके चरणकमलोंको मैं भजता हूँ ॥ १ ॥

निकाम श्याम सुंदरं। भवांबुनाथ मंदरं ॥
प्रफुल्ल कंज लोचनं। मदादि दोष मोचनं ॥ २ ॥

आप नितान्त सुन्दर श्याम, संसार (आवागमन) रूपी समुद्रको मथनेके लिये मन्दराचलरूप, फूले हुए कमलके समान नेत्रोंवाले और मद आदि दोषोंसे छुड़ानेवाले हैं ॥ २ ॥

प्रलंब बाहु विक्रमं। प्रभोऽप्रमेय वैभवं ॥
निषंग चाप सायकं। धरं त्रिलोक नायकं ॥ ३ ॥

हे प्रभो ! आपकी लंबी भुजाओंका पराक्रम और आपका ऐश्वर्य अप्रमेय (बुद्धिके परे अथवा असीम) है। आप तरकस और धनुष-बाण धारण करनेवाले तीनों लोकोंके स्वामी, ॥ ३ ॥

दिनेश वंश मंडनं। महेश चाप खंडनं ॥
मुनींद्र संत रंजनं। सुरारि वृंद भंजनं ॥ ४ ॥

सूर्यवंशके भूषण, महादेवजीके धनुषको तोड़नेवाले, मुनिराजों और संतोंको आनन्द देनेवाले तथा देवताओंके शत्रु असुरोंके समूहका नाश करनेवाले हैं ॥ ४ ॥

मनोज वैरि वंदितं। अजादि देव सेवितं ॥
विशुद्ध बोध विग्रहं। समस्त दूषणापहं ॥ ५ ॥

आप कामदेवके शत्रु महादेवजीके द्वारा वन्दित, ब्रह्मा आदि देवताओंसे सेवित, विशुद्ध ज्ञानमय विग्रह और समस्त दोषोंको नष्ट करनेवाले हैं ॥ ५ ॥

नमामि इंदिरा पतिं। सुखाकरं सतां गतिं ॥
भजे सशक्ति सानुजं। शची पति प्रियानुजं ॥ ६ ॥

हे लक्ष्मीपते ! हे सुखोंकी खान और सत्पुरुषोंकी एकमात्र गति ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ ! हे शचीपति (इन्द्र) के प्रिय छोटे भाई (वामनजी) ! स्वरूपा-शक्ति श्रीसीताजी और छोटे भाई लक्ष्मणजीसहित आपको मैं भजता हूँ ॥ ६ ॥

त्वदंघ्रि मूल ये नराः। भजंति हीन मत्सराः॥
पतंति नो भवार्णवे। वितर्क वीचि संकुले॥ ७॥

जो मनुष्य मत्सर (डाह) रहित होकर आपके चरणकमलोंका सेवन करते हैं, वे तर्क-वितर्क (अनेक प्रकारके संदेह) रूपी तरङ्गोंसे पूर्ण संसाररूपी समुद्रमें नहीं गिरते (आवागमनके चक्करमें नहीं पड़ते)॥ ७॥

विविक्त वासिनः सदा। भजंति मुक्तये मुदा॥
निरस्य इंद्रियादिकं। प्रयांति ते गतिं स्वकं॥ ८॥

जो एकान्तवासी पुरुष मुक्तिके लिये, इन्द्रियादिका निग्रह करके (उन्हें विषयोंसे हटाकर) प्रसन्नतापूर्वक आपको भजते हैं, वे स्वकीय गतिको (अपने स्वरूपको) प्राप्त होते हैं॥ ८॥

तमेकमद्भुतं प्रभुं। निरीहमीश्वरं विभुं॥
जगद्गुरुं च शाश्वतं। तुरीयमेव केवलं॥ ९॥

उन (आप) को जो एक (अद्वितीय), अद्भुत (मायिक जगत्से विलक्षण), प्रभु (सर्वसमर्थ), इच्छारहित, ईश्वर (सबके स्वामी), व्यापक, जगद्गुरु, सनातन (नित्य), तुरीय (तीनों गुणोंसे सर्वथा परे) और केवल (अपने स्वरूपमें स्थित) हैं॥ ९॥

भजामि भाव वल्लभं। कुयोगिनां सुदुर्लभं॥
स्वभक्त कल्प पादपं। समं सुसेव्यमन्वहं॥ १०॥

[तथा] जो भावप्रिय, कुयोगियों (विषयी पुरुषों) के लिये अत्यन्त दुर्लभ, अपने भक्तोंके लिये कल्पवृक्ष (अर्थात् उनकी समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाले), सम (पक्षपातरहित) और सदा सुखपूर्वक सेवन करनेयोग्य हैं; मैं निरन्तर भजता हूँ॥ १०॥

अनूप रूप भूपतिं। नतोऽहमुर्विजा पतिं॥
प्रसीद मे नमामि ते। पदाब्ज भक्ति देहि मे॥ ११॥

हे अनुपम सुन्दर ! हे पृथ्वीपति ! हे जानकीनाथ ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। मुझपर प्रसन्न होइये, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। मुझे अपने चरणकमलोंकी भक्ति दीजिये॥ ११॥

पठंति ये स्तवं इदं। नरादरेण ते पदं॥
व्रजंति नात्र संशयं। त्वदीय भक्ति संयुताः॥ १२॥

जो मनुष्य इस स्तुतिको आदरपूर्वक पढ़ते हैं, वे आपकी भक्तिसे युक्त होकर आपके परमपदको प्राप्त होते हैं, इसमें संदेह नहीं॥ १२॥

दो०—बिनती करि मुनि नाइ सिरु कह कर जोरि बहोरि।
चरन सरोरुह नाथ जनि कबहुँ तजै मति मोरि॥ ४॥

मुनिने [इस प्रकार] विनती करके और फिर सिर नवाकर, हाथ जोड़कर कहा—हे नाथ ! मेरी बुद्धि आपके चरणकमलोंको कभी न छोड़े॥ ४॥

चौ०—अनुसुइया के पद गहि सीता। मिली बहोरि सुसील बिनीता॥
रिषिपतिनी मन सुख अधिकाई। आसिष देइ निकट बैठाई॥ १॥

फिर परम शीलवती और विनम्र श्रीसीताजी [अत्रिजीकी पत्नी] अनसूयाजीके चरण पकड़कर उनसे मिलीं। ऋषिपत्नीके मनमें बड़ा सुख हुआ। उन्होंने आशिष देकर सीताजीको पास बैठा लिया॥ १॥

दिब्य बसन भूषन पहिराए। जे नित नूतन अमल सुहाए॥
कह रिषिबधू सरस मृदु बानी। नारिधर्म कछु ब्याज बखानी॥ २॥

और उन्हें ऐसे दिव्य वस्त्र और आभूषण पहनाये, जो नित्य-नये निर्मल और सुहावने बने रहते हैं। फिर ऋषिपत्नी उनके बहाने मधुर और कोमल वाणीसे स्त्रियोंके कुछ धर्म बखानकर कहने लगीं॥ २॥

मातु पिता भ्राता हितकारी। मितप्रद सब सुनु राजकुमारी॥
अमित दानि भर्ता बयदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही॥ ३॥

हे राजकुमारी! सुनिये, माता, पिता, भाई सभी हित करनेवाले हैं, परंतु ये सब एक सीमातक ही [सुख] देनेवाले हैं। परंतु हे जानकी! पति तो [मोक्षरूप] असीम [सुख] देनेवाला है। वह स्त्री अधम है, जो ऐसे पतिकी सेवा नहीं करती॥ ३॥

धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परिखिअहिं चारी॥
बृद्ध रोगबस जड़ धनहीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना॥ ४॥

धैर्य, धर्म, मित्र और स्त्री—इन चारोंकी विपत्तिके समय ही परीक्षा होती है। वृद्ध, रोगी, मूर्ख, निर्धन, अंधा, बहरा, क्रोधी और अत्यन्त ही दीन—॥ ४॥

ऐसेहु पति कर किएँ अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना॥
एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। कायँ बचन मन पति पद प्रेमा॥ ५॥

ऐसे भी पतिका अपमान करनेसे स्त्री यमपुरमें भाँति-भाँतिके दुःख पाती है। शरीर, वचन और मनसे पतिके चरणोंमें प्रेम करना स्त्रीके लिये, बस, यह एक ही धर्म है, एक ही व्रत है और एक ही नियम है॥ ५॥

जग पतिब्रता चारि बिधि अहहीं। बेद पुरान संत सब कहहीं॥
उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं॥ ६॥

जगत्‌में चार प्रकारकी पतिव्रताएँ हैं। वेद, पुराण और संत सब ऐसा कहते हैं कि उत्तम श्रेणीकी पतिव्रताके मनमें ऐसा भाव बसा रहता है कि जगत्‌में [मेरे पतिको छोड़कर] दूसरा पुरुष स्वप्नमें भी नहीं है॥ ६॥

मध्यम परपति देखइ कैसें। भ्राता पिता पुत्र निज जैसें॥
धर्म बिचारि समुझि कुल रहई। सो निकिष्ट त्रिय श्रुति अस कहई॥ ७॥

मध्यम श्रेणीकी पतिव्रता पराये पतिको कैसे देखती है, जैसे वह अपना सगा भाई, पिता या पुत्र हो (अर्थात् समान अवस्थावालेको वह भाईके रूपमें देखती है, बड़ेको पिताके रूपमें और छोटेको पुत्रके रूपमें देखती है।) जो धर्मको विचारकर और अपने कुलकी मर्यादा समझकर बची रहती है, वह निकृष्ट (निम्न श्रेणीकी) स्त्री है, ऐसा वेद कहते हैं॥ ७॥

बिनु अवसर भय तें रह जोई। जानेहु अधम नारि जग सोई॥
पति बंचक परपति रति करई। रौरव नरक कल्प सत परई॥ ८॥

और जो स्त्री मौका न मिलनेसे या भयवश पतिव्रता बनी रहती है, जगत्‌में उसे अधम स्त्री जानना। पतिको धोखा देनेवाली जो स्त्री पराये पतिसे रति करती है, वह तो सौ कल्पतक रौरव नरकमें पड़ी रहती है॥ ८॥

छन सुख लागि जनम सत कोटी। दुख न समुझ तेहि सम को खोटी॥
बिनु श्रम नारि परम गति लहई। पतिब्रत धर्म छाड़ि छल गहई॥ ९॥

क्षणभरके सुखके लिये जो सौ करोड़ (असंख्य) जन्मोंके दुःखको नहीं समझती, उसके समान दुष्टा कौन होगी। जो स्त्री छल छोड़कर पातिव्रतधर्मको ग्रहण करती है, वह बिना ही परिश्रम परम गतिको प्राप्त करती है॥ ९॥

पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई। बिधवा होइ पाइ तरुनाई॥ १०॥

किंतु जो पतिके प्रतिकूल चलती है, वह जहाँ भी जाकर जन्म लेती है, वहीं जवानी पाकर (भरी जवानीमें) विधवा हो जाती है॥ १०॥

सो०—सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहइ।
जसु गावत श्रुति चारि अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय॥ ५ क॥

स्त्री जन्मसे ही अपवित्र है, किंतु पतिकी सेवा करके वह अनायास ही शुभ गति प्राप्त कर लेती है। [पातिव्रतधर्मके कारण ही] आज भी 'तुलसीजी' भगवान्‌को प्रिय हैं और चारों वेद उनका यश गाते हैं॥ ५ (क)॥

सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिब्रत करहिं।
तोहि प्रानप्रिय राम कहिउँ कथा संसार हित॥ ५ ख॥

हे सीता! सुनो, तुम्हारा तो नाम ही ले-लेकर स्त्रियाँ पातिव्रतधर्मका पालन करेंगी। तुम्हें तो श्रीरामजी प्राणोंके समान प्रिय हैं, यह (पातिव्रतधर्मकी) कथा तो मैंने संसारके हितके लिये कही है॥ ५ (ख)॥

चौ०—सुनि जानकीं परम सुखु पावा। सादर तासु चरन सिरु नावा॥
तब मुनि सन कह कृपानिधाना। आयसु होइ जाउँ बन आना॥ १॥

जानकीजीने सुनकर परम सुख पाया और आदरपूर्वक उनके चरणोंमें सिर नवाया। तब कृपाकी खान श्रीरामजीने मुनिसे कहा—आज्ञा हो तो अब दूसरे वनमें जाऊँ॥ १॥

संतत मो पर कृपा करेहू। सेवक जानि तजेहु जनि नेहू॥
धर्म धुरंधर प्रभु कै बानी। सुनि सप्रेम बोले मुनि ग्यानी॥ २॥

मुझपर निरन्तर कृपा करते रहियेगा और अपना सेवक जानकर स्नेह न छोड़ियेगा। धर्मधुरन्धर प्रभु श्रीरामजीके वचन सुनकर ज्ञानी मुनि प्रेमपूर्वक बोले—॥ २॥

जासु कृपा अज सिव सनकादी। चहत सकल परमारथ बादी॥
ते तुम्ह राम अकाम पिआरे। दीन बंधु मृदु बचन उचारे॥ ३॥

ब्रह्मा, शिव और सनकादि सभी परमार्थवादी (तत्त्ववेत्ता) जिनकी कृपा चाहते हैं, हे रामजी! आप वही निष्काम पुरुषोंके भी प्रिय और दीनोंके बन्धु भगवान् हैं, जो इस प्रकार कोमल वचन बोल रहे हैं॥ ३॥

अब जानी मैं श्री चतुराई। भजी तुम्हहि सब देव बिहाई॥
जेहि समान अतिसय नहिं कोई। ता कर सील कस न अस होई॥ ४॥

अब मैंने लक्ष्मीजीकी चतुराई समझी, जिन्होंने सब देवताओंको छोड़कर आपहीको भजा। जिसके समान [सब बातोंमें] अत्यन्त बड़ा और कोई नहीं है, उसका शील भला, ऐसा क्यों न होगा?॥ ४॥

केहि बिधि कहौं जाहु अब स्वामी। कहहु नाथ तुम्ह अंतरजामी॥
अस कहि प्रभु बिलोकि मुनि धीरा। लोचन जल बह पुलक सरीरा॥ ५॥

मैं किस प्रकार कहूँ कि हे स्वामी! आप अब जाइये? हे नाथ! आप अन्तर्यामी हैं, आप ही कहिये। ऐसा कहकर धीर मुनि प्रभुको देखने लगे। मुनिके नेत्रोंसे [प्रेमाश्रुओंका] जल बह

रहा है और शरीर पुलकित है ॥ ५ ॥

छं०—तन पुलक निर्भर प्रेम पूरन नयन मुख पंकज दिए।
मन ग्यान गुन गोतीत प्रभु मैं दीख जप तप का किए॥
जप जोग धर्म समूह तें नर भगति अनुपम पावई।
रघुबीर चरित पुनीत निसि दिन दास तुलसी गावई॥

मुनि अत्यन्त प्रेमसे पूर्ण हैं; उनका शरीर पुलकित है और नेत्रोंको श्रीरामजीके मुखकमलमें लगाये हुए हैं। [मनमें विचार रहे हैं कि] मैंने ऐसे कौन-से जप-तप किये थे, जिसके कारण मन, ज्ञान, गुण और इन्द्रियोंसे परे प्रभुके दर्शन पाये। जप, योग और धर्म-समूहसे मनुष्य अनुपम भक्तिको पाता है। श्रीरघुवीरके पवित्र चरित्रको तुलसीदास रात-दिन गाता है।

दो०—कलिमल समन दमन मन राम सुजस सुखमूल।
सादर सुनहिं जे तिन्ह पर राम रहहिं अनुकूल॥ ६ क॥

श्रीरामचन्द्रजीका सुन्दर यश कलियुगके पापोंका नाश करनेवाला, मनको दमन करनेवाला और सुखका मूल है। जो लोग इसे आदरपूर्वक सुनते हैं, उनपर श्रीरामजी प्रसन्न रहते हैं॥ ६ (क)॥

सो०—कठिन काल मल कोस धर्म न ग्यान न जोग जप।
परिहरि सकल भरोस रामहि भजहिं ते चतुर नर॥ ६ ख॥

यह कठिन कलिकाल पापोंका खजाना है; इसमें न धर्म है, न ज्ञान है और न योग तथा जप ही है। इसमें तो जो लोग सब भरोसोंको छोड़कर श्रीरामजीको ही भजते हैं, वे ही चतुर हैं॥ ६ (ख)॥

चौ०—मुनि पद कमल नाइ करि सीसा। चले बनहि सुर नर मुनि ईसा॥
आगें राम अनुज पुनि पाछें। मुनि बर बेष बने अति काछें॥ १॥

मुनिके चरणकमलोंमें सिर नवाकर देवता, मनुष्य और मुनियोंके स्वामी श्रीरामजी वनको चले। आगे श्रीरामजी हैं और उनके पीछे छोटे भाई लक्ष्मणजी हैं। दोनों ही मुनियोंका सुन्दर वेष बनाये अत्यन्त सुशोभित हैं॥ १॥

उभय बीच श्री सोहइ कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी॥
सरिता बन गिरि अवघट घाटा। पति पहिचानि देहिं बर बाटा॥ २॥

दोनोंके बीचमें श्रीजानकीजी कैसी सुशोभित हैं, जैसे ब्रह्म और जीवके बीच माया हो। नदी, वन, पर्वत और दुर्गम घाटियाँ, सभी अपने स्वामीको पहचानकर सुन्दर रास्ता दे देते हैं॥ २॥

जहँ जहँ जाहि देव रघुराया। करहि मेघ तहँ तहँ नभ छाया॥
मिला असुर बिराध मग जाता। आवतहीं रघुबीर निपाता॥ ३॥

जहाँ-जहाँ देव श्रीरघुनाथजी जाते हैं, वहाँ-वहाँ बादल आकाशमें छाया करते जाते हैं। रास्तेमें जाते हुए विराध राक्षस मिला। सामने आते ही श्रीरघुनाथजीने उसे मार डाला॥ ३॥

तुरतहिं रुचिर रूप तेहिं पावा। देखि दुखी निज धाम पठावा॥
पुनि आए जहँ मुनि सरभंगा। सुंदर अनुज जानकी संगा॥ ४॥

[श्रीरामजीके हाथसे मरते ही] उसने तुरंत सुन्दर (दिव्य) रूप प्राप्त कर लिया। दुखी देखकर प्रभुने उसे अपने परम धामको भेज दिया। फिर वे सुन्दर छोटे भाई लक्ष्मणजी और सीताजीके साथ वहाँ आये जहाँ मुनि शरभंगजी थे॥ ४॥

दो०—देखि राम मुख पंकज मुनिबर लोचन भृंग।
सादर पान करत अति धन्य जन्म सरभंग॥ ७॥

श्रीरामचन्द्रजीका मुखकमल देखकर मुनिश्रेष्ठके नेत्ररूपी भौंरे अत्यन्त आदरपूर्वक उसका [मकरन्दरस] पान कर रहे हैं। शरभंगजीका जन्म धन्य है॥ ७॥

चौ०—कह मुनि सुनु रघुबीर कृपाला। संकर मानस राजमराला॥
जात रहेउँ बिरंचि के धामा। सुनेउँ श्रवन बन ऐहहिं रामा॥ १॥

मुनिने कहा—हे कृपालु रघुवीर! हे शंकरजीके मनरूपी मानसरोवरके राजहंस! सुनिये, मैं ब्रह्मलोकको जा रहा था। [इतनेमें] कानोंसे सुना कि श्रीरामजी वनमें आवेंगे॥ १॥

चितवत पंथ रहेउँ दिन राती। अब प्रभु देखि जुड़ानी छाती॥
नाथ सकल साधन मैं हीना। कीन्ही कृपा जानि जन दीना॥ २॥

तबसे मैं दिन-रात आपकी राह देखता रहा हूँ। अब (आज) प्रभुको देखकर मेरी छाती शीतल हो गयी। हे नाथ! मैं सब साधनोंसे हीन हूँ। आपने अपना दीन सेवक जानकर मुझपर कृपा की है॥ २॥

सो कछु देव न मोहि निहोरा। निज पन राखेउ जन मन चोरा॥
तब लगि रहहु दीन हित लागी। जब लगि मिलौं तुम्हहि तनु त्यागी॥ ३॥

हे देव! यह कुछ मुझपर आपका एहसान नहीं है। हे भक्त-मनचोर! ऐसा करके आपने अपने प्रणकी ही रक्षा की है। अब इस दीनके कल्याणके लिये तबतक यहाँ ठहरिये, जबतक मैं शरीर छोड़कर आपसे [आपके धाममें न] मिलूँ॥ ३॥

जोग जग्य जप तप ब्रत कीन्हा। प्रभु कहँ देइ भगति बर लीन्हा॥
एहि बिधि सर रचि मुनि सरभंगा। बैठे हृदयँ छाड़ि सब संगा॥ ४॥

योग, यज्ञ, जप, तप जो कुछ व्रत आदि भी मुनिने किया था, सब प्रभुको समर्पण करके बदलेमें भक्तिका वरदान ले लिया। इस प्रकार [दुर्लभ भक्ति प्राप्त करके फिर] चिता रचकर मुनि शरभंगजी हृदयसे सब आसक्ति छोड़कर उसपर जा बैठे॥ ४॥

दो०—सीता अनुज समेत प्रभु नील जलद तनु स्याम।
मम हियँ बसहु निरंतर सगुनरूप श्रीराम॥ ८॥

हे नीले मेघके समान श्याम शरीरवाले सगुणरूप श्रीरामजी! सीताजी और छोटे भाई लक्ष्मणजीसहित प्रभु (आप) निरन्तर मेरे हृदयमें निवास कीजिये॥ ८॥

चौ०—अस कहि जोग अगिनि तनु जारा। राम कृपाँ बैकुंठ सिधारा॥
ताते मुनि हरि लीन न भयऊ। प्रथमहिं भेद भगति बर लयऊ॥ १॥

ऐसा कहकर शरभंगजीने योगाग्निसे अपने शरीरको जला डाला और श्रीरामजीकी कृपासे वे वैकुण्ठको चले गये। मुनि भगवान्‌में लीन इसलिये नहीं हुए कि उन्होंने पहले ही भेद-भक्तिका वर ले लिया था॥ १॥

रिषि निकाय मुनिबर गति देखी। सुखी भए निज हृदयँ बिसेषी॥
अस्तुति करहिं सकल मुनि बृंदा। जयति प्रनत हित करुना कंदा॥ २॥

ऋषिसमूह मुनिश्रेष्ठ शरभंगजीकी यह [दुर्लभ] गति देखकर अपने हृदयमें विशेषरूपसे सुखी हुए। समस्त मुनिवृंद श्रीरामजीकी स्तुति कर रहे हैं [और कह रहे हैं] शरणागतहितकारी

करुणाकन्द (करुणाके मूल) प्रभुकी जय हो ! ॥ २ ॥

पुनि रघुनाथ चले बन आगे। मुनिबर बृंद बिपुल सँग लागे॥
अस्थि समूह देखि रघुराया। पूछी मुनिन्ह लागि अति दाया॥ ३॥

फिर श्रीरघुनाथजी आगे वनमें चले। श्रेष्ठ मुनियोंके बहुत-से समूह उनके साथ हो लिये। हड्डियोंका ढेर देखकर श्रीरघुनाथजीको बड़ी दया आयी, उन्होंने मुनियोंसे पूछा॥ ३॥

जानतहूँ पूछिअ कस स्वामी। सबदरसी तुम्ह अंतरजामी॥
निसिचर निकर सकल मुनि खाए। मुनि रघुबीर नयन जल छाए॥ ४॥

[मुनियोंने कहा—] हे स्वामी ! आप सर्वदर्शी (सर्वज्ञ) और अन्तर्यामी (सबके हृदयकी जाननेवाले) हैं। जानते हुए भी [अनजानकी तरह] हमसे कैसे पूछ रहे हैं ? राक्षसोंके दलोंने सब मुनियोंको खा डाला है [ये सब उन्हींकी हड्डियोंके ढेर हैं]। यह सुनते ही श्रीरघुवीरके नेत्रोंमें जल छा गया (उनकी आँखोंमें करुणाके आँसू भर आये)॥ ४॥

दो०—निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह॥ ९॥

श्रीरामजीने भुजा उठाकर प्रण किया कि मैं पृथ्वीको राक्षसोंसे रहित कर दूँगा। फिर समस्त मुनियोंके आश्रमोंमें जा-जाकर उनको [दर्शन एवं सम्भाषणका] सुख दिया॥ ९॥

चौ०—मुनि अगस्ति कर सिष्य सुजाना। नाम सुतीछन रति भगवाना॥
मन क्रम बचन राम पद सेवक। सपनेहुँ आन भरोस न देवक॥ १॥

मुनि अगस्त्यजीके एक सुतीक्ष्ण नामक सुजान (ज्ञानी) शिष्य थे, उनकी भगवान्‌में प्रीति थी। वे मन, वचन और कर्मसे श्रीरामजीके चरणोंके सेवक थे। उन्हें स्वप्नमें भी किसी दूसरे देवताका भरोसा नहीं था॥ १॥

प्रभु आगवनु श्रवन सुनि पावा। करत मनोरथ आतुर धावा॥
हे बिधि दीनबंधु रघुराया। मो से सठ पर करिहहिं दाया॥ २॥

उन्होंने ज्यों ही प्रभुका आगमन कानोंसे सुन पाया, त्यों ही अनेक प्रकारके मनोरथ करते हुए वे आतुरता (शीघ्रता) से दौड़ चले। हे विधाता ! क्या दीनबन्धु श्रीरघुनाथजी मुझ-जैसे दुष्टपर भी दया करेंगे ?॥ २॥

सहित अनुज मोहि राम गोसाईं। मिलिहहिं निज सेवक की नाईं॥
मोरे जियँ भरोस दृढ़ नाहीं। भगति बिरति न ग्यान मन माहीं॥ ३॥

क्या स्वामी श्रीरामजी छोटे भाई लक्ष्मणजीसहित मुझसे अपने सेवककी तरह मिलेंगे ? मेरे हृदयमें दृढ़ विश्वास नहीं होता; क्योंकि मेरे मनमें भक्ति, वैराग्य या ज्ञान कुछ भी नहीं है॥ ३॥

नहिं सतसंग जोग जप जागा। नहिं दृढ़ चरन कमल अनुरागा॥
एक बानि करुनानिधान की। सो प्रिय जाकें गति न आन की॥ ४॥

मैंने न तो सत्सङ्ग, योग, जप अथवा यज्ञ ही किये हैं और न प्रभुके चरणकमलोंमें मेरा दृढ़ अनुराग ही है। हाँ, दयाके भण्डार प्रभुकी एक बान है कि जिसे किसी दूसरेका सहारा नहीं है, वह उन्हें प्रिय होता है॥ ४॥

होइहैं सुफल आजु मम लोचन। देखि बदन पंकज भव मोचन॥
निर्भर प्रेम मगन मुनि ग्यानी। कहि न जाइ सो दसा भवानी॥ ५॥

[भगवान्‌की इस बानका स्मरण आते ही मुनि आनन्दमग्न होकर मन-ही-मन कहने लगे—] अहा ! भवबन्धनसे छुड़ानेवाले प्रभुके मुखारविन्दको देखकर आज मेरे नेत्र सफल होंगे। [शिवजी कहते हैं—] हे भवानी ! ज्ञानी मुनि प्रेममें पूर्णरूपसे निमग्न हैं। उनकी वह दशा कही नहीं जाती ॥ ५ ॥

दिसि अरु बिदिसि पंथ नहिं सूझा। को मैं चलेउँ कहाँ नहिं बूझा ॥
कबहुँक फिरि पाछें पुनि जाई। कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई ॥ ६ ॥

उन्हें दिशा-विदिशा (दिशाएँ और उनके कोण आदि) और रास्ता, कुछ भी नहीं सूझ रहा है। मैं कौन हूँ और कहाँ जा रहा हूँ, यह भी नहीं जानते (इसका भी ज्ञान नहीं है) । वे कभी पीछे घूमकर फिर आगे चलने लगते हैं और कभी [प्रभुके] गुण गा-गाकर नाचने लगते हैं ॥ ६ ॥

अबिरल प्रेम भगति मुनि पाई। प्रभु देखैं तरु ओट लुकाई ॥
अतिसय प्रीति देखि रघुबीरा। प्रगटे हृदयँ हरन भव भीरा ॥ ७ ॥

मुनिने प्रगाढ़ प्रेमाभक्ति प्राप्त कर ली। प्रभु श्रीरामजी वृक्षकी आड़में छिपकर [भक्तकी प्रेमोन्मत्त दशा] देख रहे हैं। मुनिका अत्यन्त प्रेम देखकर भवभय (आवागमनके भय) को हरनेवाले श्रीरघुनाथजी मुनिके हृदयमें प्रकट हो गये ॥ ७ ॥

मुनि मग माझ अचल होइ बैसा। पुलक सरीर पनस फल जैसा ॥
तब रघुनाथ निकट चलि आए। देखि दसा निज जन मन भाए ॥ ८ ॥

[हृदयमें प्रभुके दर्शन पाकर] मुनि बीच रास्तेमें अचल (स्थिर) होकर बैठ गये। उनका शरीर रोमाञ्चसे कटहलके फलके समान [कण्टकित] हो गया। तब श्रीरघुनाथजी उनके पास चले आये और अपने भक्तकी प्रेमदशा देखकर मनमें बहुत प्रसन्न हुए ॥ ८ ॥

मुनिहि राम बहु भाँति जगावा। जाग न ध्यान जनित सुख पावा ॥
भूप रूप तब राम दुरावा। हृदयँ चतुर्भुज रूप देखावा ॥ ९ ॥

श्रीरामजीने मुनिको बहुत प्रकारसे जगाया, पर मुनि नहीं जागे; क्योंकि उन्हें प्रभुके ध्यानका सुख प्राप्त हो रहा था। तब श्रीरामजीने अपने राजरूपको छिपा लिया और उनके हृदयमें अपना चतुर्भुजरूप प्रकट किया ॥ ९ ॥

मुनि अकुलाइ उठा तब कैसें। बिकल हीन मनि फनिबर जैसें ॥
आगें देखि राम तन स्यामा। सीता अनुज सहित सुख धामा ॥ १० ॥

तब (अपने इष्ट-स्वरूपके अन्तर्धान होते ही) मुनि कैसे व्याकुल होकर उठे, जैसे श्रेष्ठ (मणिधर) सर्प मणिके बिना व्याकुल हो जाता है। मुनिने अपने सामने सीताजी और लक्ष्मणजीसहित श्यामसुन्दर-विग्रह सुखधाम श्रीरामजीको देखा ॥ १० ॥

परेउ लकुट इव चरनन्हि लागी। प्रेम मगन मुनिबर बड़ भागी ॥
भुज बिसाल गहि लिए उठाई। परम प्रीति राखे उर लाई ॥ ११ ॥

प्रेममें मग्न हुए वे बड़भागी श्रेष्ठ मुनि लाठीकी तरह गिरकर श्रीरामजीके चरणोंमें लग गये। श्रीरामजीने अपनी विशाल भुजाओंसे पकड़कर उन्हें उठा लिया और बड़े प्रेमसे हृदयसे लगा रक्खा ॥ ११ ॥

मुनिहि मिलत अस सोह कृपाला। कनक तरुहि जनु भेंट तमाला ॥
राम बदनु बिलोक मुनि ठाढ़ा। मानहुँ चित्र माझ लिखि काढ़ा ॥ १२ ॥

कृपालु श्रीरामचन्द्रजी मुनिसे मिलते हुए ऐसे शोभित हो रहे हैं, मानो सोनेके वृक्षसे तमालका वृक्ष गले लगकर मिल रहा हो। मुनि [निस्तब्ध] खड़े हुए [टकटकी लगाकर] श्रीरामजीका मुख देख रहे हैं, मानो चित्रमें लिखकर बनाये गये हों॥ १२॥

दो०—तब मुनि हृदयँ धीर धरि गहि पद बारहिं बार।
निज आश्रम प्रभु आनि करि पूजा बिबिध प्रकार॥ १०॥

तब मुनिने हृदयमें धीरज धरकर बार-बार चरणोंको स्पर्श किया। फिर प्रभुको अपने आश्रममें लाकर अनेक प्रकारसे उनकी पूजा की॥ १०॥

चौ०—कह मुनि प्रभु सुनु बिनती मोरी। अस्तुति करौं कवन बिधि तोरी॥
महिमा अमित मोरि मति थोरी। रबि सन्मुख खद्योत अँजोरी॥ १॥

मुनि कहने लगे—हे प्रभो! मेरी विनती सुनिये। मैं किस प्रकारसे आपकी स्तुति करूँ? आपकी महिमा अपार है और मेरी बुद्धि अल्प है। जैसे सूर्यके सामने जुगनूका उजाला!॥ १॥

श्याम तामरस दाम शरीरं। जटा मुकुट परिधन मुनिचीरं॥
पाणि चाप शर कटि तूणीरं। नौमि निरंतर श्रीरघुवीरं॥ २॥

हे नीलकमलकी मालाके समान श्याम शरीरवाले! हे जटाओंका मुकुट और मुनियोंके (वल्कल) वस्त्र पहने हुए, हाथोंमें धनुष-बाण लिये तथा कमरमें तरकस कसे हुए श्रीरामजी! मैं आपको निरन्तर नमस्कार करता हूँ॥ २॥

मोह विपिन घन दहन कृशानुः। संत सरोरुह कानन भानुः॥
निसिचर करि वरूथ मृगराजः। त्रातु सदा नो भव खग बाजः॥ ३॥

जो मोहरूपी घने वनको जलानेके लिये अग्नि हैं, संतरूपी कमलोंके वनके प्रफुल्लित करनेके लिये सूर्य हैं, राक्षसरूपी हाथियोंके समूहके पछाड़नेके लिये सिंह हैं और भव (आवागमन) रूपी पक्षीके मारनेके लिये बाजरूप हैं, वे प्रभु सदा हमारी रक्षा करें॥ ३॥

अरुण नयन राजीव सुवेशं। सीता नयन चकोर निशेशं॥
हर हृदि मानस बाल मरालं। नौमि राम उर बाहु विशालं॥ ४॥

हे लाल कमलके समान नेत्र और सुन्दर वेषवाले! सीताजीके नेत्ररूपी चकोरके चन्द्रमा, शिवजीके हृदयरूपी मानसरोवरके बालहंस, विशाल हृदय और भुजावाले श्रीरामचन्द्रजी! मैं आपको नमस्कार करता हूँ॥ ४॥

संशय सर्प ग्रसन उरगादः। शमन सुकर्कश तर्क विषादः॥
भव भंजन रंजन सुर यूथः। त्रातु सदा नो कृपा वरूथः॥ ५॥

जो संशयरूपी सर्पको ग्रसनेके लिये गरुड़ हैं, अत्यन्त कठोर तर्कसे उत्पन्न होनेवाले विषादका नाश करनेवाले हैं, आवागमनको मिटानेवाले और देवताओंके समूहको आनन्द देनेवाले हैं, वे कृपाके समूह श्रीरामजी सदा हमारी रक्षा करें॥ ५॥

निर्गुण सगुण विषम सम रूपं। ज्ञान गिरा गोतीतमनूपं॥
अमलमखिलमनवद्यमपारं। नौमि राम भंजन महि भारं॥ ६॥

हे निर्गुण, सगुण, विषम और समरूप! हे ज्ञान, वाणी और इन्द्रियोंसे अतीत! हे अनुपम, निर्मल, सम्पूर्ण दोषरहित, अनन्त एवं पृथ्वीका भार उतारनेवाले श्रीरामचन्द्रजी! मैं आपको नमस्कार

करता हूँ ॥ ६ ॥

भक्त कल्पपादप आरामः । तर्जन क्रोध लोभ मद कामः ॥
अति नागर भव सागर सेतुः । त्रातु सदा दिनकर कुल केतुः ॥ ७ ॥

जो भक्तोंके लिये कल्पवृक्षके बगीचे हैं, क्रोध, लोभ, मद और कामको डरानेवाले हैं, अत्यन्त ही चतुर और संसाररूपी समुद्रसे तरनेके लिये सेतुरूप हैं, वे सूर्यकुलकी ध्वजा श्रीरामजी सदा मेरी रक्षा करें ॥ ७ ॥

अतुलित भुज प्रताप बल धामः । कलि मल विपुल विभंजन नामः ॥
धर्म वर्म नर्मद गुण ग्रामः । संतत शं तनोतु मम रामः ॥ ८ ॥

जिनकी भुजाओंका प्रताप अतुलनीय है, जो बलके धाम हैं, जिनका नाम कलियुगके बड़े भारी पापोंका नाश करनेवाला है, जो धर्मके कवच (रक्षक) हैं और जिनके गुणसमूह आनन्द देनेवाले हैं, वे श्रीरामजी निरन्तर मेरे कल्याणका विस्तार करें ॥ ८ ॥

जदपि बिरज ब्यापक अबिनासी । सब के हृदयँ निरंतर बासी ॥
तदपि अनुज श्री सहित खरारी । बसतु मनसि मम कानन चारी ॥ ९ ॥

यद्यपि आप निर्मल, व्यापक, अविनाशी और सबके हृदयमें निरन्तर निवास करनेवाले हैं; तथापि हे खरारि श्रीरामजी ! लक्ष्मणजी और सीताजीसहित वनमें विचरनेवाले आप इसी रूपमें मेरे हृदयमें निवास कीजिये ॥ ९ ॥

जे जानहिं ते जानहुँ स्वामी । सगुन अगुन उर अंतरजामी ॥
जो कोसलपति राजिव नयना । करउ सो राम हृदय मम अयना ॥ १० ॥

हे स्वामी ! आपको जो सगुण, निर्गुण और अन्तर्यामी जानते हों, वे जाना करें, मेरे हृदयको तो कोसलपति कमलनयन श्रीरामजी ही अपना घर बनावें ॥ १० ॥

अस अभिमान जाइ जनि भोरे । मैं सेवक रघुपति पति मोरे ॥
सुनि मुनि बचन राम मन भाए । बहुरि हरषि मुनिबर उर लाए ॥ ११ ॥

ऐसा अभिमान भूलकर भी न छूटे कि मैं सेवक हूँ और श्रीरघुनाथजी मेरे स्वामी हैं । मुनिके वचन सुनकर श्रीरामजी मनमें बहुत प्रसन्न हुए । तब उन्होंने हर्षित होकर श्रेष्ठ मुनिको हृदयसे लगा लिया ॥ ११ ॥

परम प्रसन्न जानु मुनि मोही । जो बर मागहु देउँ सो तोही ॥
मुनि कह मैं बर कबहुँ न जाचा । समुझि न परइ झूठ का साचा ॥ १२ ॥

और कहा—] हे मुनि ! मुझे परम प्रसन्न जानो । जो वर माँगो, वही मैं तुम्हें दूँ ! मुनि सुतीक्ष्णजीने कहा—मैंने तो वर कभी माँगा ही नहीं । मुझे समझ ही नहीं पड़ता कि क्या झूठ है और क्या सत्य है, (क्या माँगूँ, क्या नहीं) ॥ १२ ॥

तुम्हहि नीक लागै रघुराई । सो मोहि देहु दास सुखदाई ॥
अबिरल भगति बिरति बिग्याना । होहु सकल गुन ग्यान निधाना ॥ १३ ॥

[अतः] हे रघुनाथजी ! हे दासोंको सुख देनेवाले ! आपको जो अच्छा लगे, मुझे वही दीजिये । [श्रीरामचन्द्रजीने कहा—हे मुने !] तुम प्रगाढ़ भक्ति, वैराग्य, विज्ञान और समस्त गुणों तथा ज्ञानके निधान हो जाओ ॥ १३ ॥

प्रभु जो दीन्ह सो बरु मैं पावा । अब सो देहु मोहि जो भावा ॥ १४ ॥

[तब मुनि बोले—] प्रभुने जो वरदान दिया वह तो मैंने पा लिया । अब मुझे जो अच्छा

लगता है वह दीजिये ॥ १४ ॥

दो०—अनुज जानकी सहित प्रभु चाप बान धर राम।
मम हिय गगन इंदु इव बसहु सदा निहकाम ॥ ११ ॥

हे प्रभो ! हे श्रीरामजी ! छोटे भाई लक्ष्मणजी और सीताजीसहित धनुष-बाणधारी आप निष्काम (स्थिर) होकर मेरे हृदयरूपी आकाशमें चन्द्रमाकी भाँति सदा निवास कीजिये ॥ ११ ॥

चौ०—एवमस्तु करि रमानिवासा। हरषि चले कुंभज रिषि पासा ॥
बहुत दिवस गुर दरसनु पाएँ। भए मोहि एहिं आश्रम आएँ ॥ १ ॥

'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) ऐसा उच्चारण कर लक्ष्मीनिवास श्रीरामचन्द्रजी हर्षित होकर अगस्त्य ऋषिके पास चले। [तब सुतीक्ष्णजी बोले—] गुरु अगस्त्यजीका दर्शन पाये और इस आश्रममें आये मुझे बहुत दिन हो गये ॥ १ ॥

अब प्रभु संग जाउँ गुर पाहीं। तुम्ह कहँ नाथ निहोरा नाहीं ॥
देखि कृपानिधि मुनि चतुराई। लिए संग बिहसे द्वौ भाई ॥ २ ॥

अब मैं भी प्रभु (आप) के साथ गुरुजीके पास चलता हूँ। इसमें हे नाथ ! आपपर मेरा कोई एहसान नहीं है। मुनिकी चतुराई देखकर कृपाके भण्डार श्रीरामजीने उनको साथ ले लिया और दोनों भाई हँसने लगे ॥ २ ॥

पंथ कहत निज भगति अनूपा। मुनि आश्रम पहुँचे सुर भूपा ॥
तुरत सुतीछन गुर पहिं गयऊ। करि दंडवत कहत अस भयऊ ॥ ३ ॥

रास्तेमें अपनी अनुपम भक्तिका वर्णन करते हुए देवताओंके राजराजेश्वर श्रीरामजी अगस्त्य मुनिके आश्रमपर पहुँचे। सुतीक्ष्ण तुरंत ही गुरु अगस्त्यजीके पास गये और दण्डवत् करके ऐसा कहने लगे ॥ ३ ॥

नाथ कोसलाधीस कुमारा। आए मिलन जगत आधारा ॥
राम अनुज समेत बैदेही। निसि दिनु देव जपत हहु जेही ॥ ४ ॥

हे नाथ ! अयोध्याके राजा दशरथजीके कुमार जगदाधार श्रीरामचन्द्रजी छोटे भाई लक्ष्मणजी और सीताजीसहित आपसे मिलने आये हैं, जिनका हे देव ! आप रात-दिन जप करते रहते हैं ॥ ४ ॥

सुनत अगस्ति तुरत उठि धाए। हरि बिलोकि लोचन जल छाए ॥
मुनि पद कमल परे द्वौ भाई। रिषि अति प्रीति लिए उर लाई ॥ ५ ॥

यह सुनते ही अगस्त्यजी तुरंत ही उठ दौड़े। भगवान्‌को देखते ही उनके नेत्रोंमें [आनन्द और प्रेमके आँसुओंका] जल भर आया। दोनों भाई मुनिके चरणकमलोंपर गिर पड़े। ऋषिने [उठाकर] बड़े प्रेमसे उन्हें हृदयसे लगा लिया ॥ ५ ॥

सादर कुसल पूछि मुनि ग्यानी। आसन बर बैठारे आनी ॥
पुनि करि बहु प्रकार प्रभु पूजा। मोहि सम भाग्यवंत नहिं दूजा ॥ ६ ॥

ज्ञानी मुनिने आदरपूर्वक कुशल पूछकर उनको लाकर श्रेष्ठ आसनपर बैठाया। फिर बहुत प्रकारसे प्रभुकी पूजा करके कहा—मेरे समान भाग्यवान् आज दूसरा कोई नहीं है ॥ ६ ॥

जहँ लगि रहे अपर मुनि बृंदा। हरषे सब बिलोकि सुखकंदा ॥ ७ ॥

वहाँ जहाँतक (जितने भी) अन्य मुनिगण थे, सभी आनन्दकन्द श्रीरामजीके दर्शन करके हर्षित हो गये ॥ ७ ॥

दो०—मुनि समूह महँ बैठे सन्मुख सब की ओर।
सरद इंदु तन चितवत मानहुँ निकर चकोर॥ १२॥

मुनियोंके समूहमें श्रीरामचन्द्रजी सबकी ओर सम्मुख होकर बैठे हैं (अर्थात् प्रत्येक मुनिको श्रीरामजी अपने ही सामने मुख करके बैठे दिखायी देते हैं और सब मुनि टकटकी लगाये उनके मुखको देख रहे हैं)। ऐसा जान पड़ता है मानो चकोरोंका समुदाय शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाकी ओर देख रहा हो॥ १२॥

चौ०—तब रघुबीर कहा मुनि पाहीं। तुम्ह सन प्रभु दुराव कछु नाहीं॥
तुम्ह जानहु जेहि कारन आयउँ। ताते तात न कहि समुझायउँ॥ १॥

तब श्रीरामजीने मुनिसे कहा—हे प्रभो! आपसे तो कुछ छिपाव है नहीं। मैं जिस कारणसे आया हूँ वह आप जानते ही हैं। इसीसे हे तात! मैंने आपसे समझाकर कुछ नहीं कहा॥ १॥

अब सो मंत्र देहु प्रभु मोही। जेहि प्रकार मारौं मुनिद्रोही॥
मुनि मुसुकाने सुनि प्रभु बानी। पूछेहु नाथ मोहि का जानी॥ २॥

हे प्रभो! अब आप मुझे वही मन्त्र (सलाह) दीजिये, जिस प्रकार मैं मुनियोंके द्रोही राक्षसोंको मारूँ। प्रभुकी वाणी सुनकर मुनि मुस्कराये और बोले—हे नाथ! आपने क्या समझकर मुझसे यह प्रश्न किया है?॥ २॥

तुम्हरेइँ भजन प्रभाव अघारी। जानउँ महिमा कछुक तुम्हारी॥
ऊमरि तरु बिसाल तव माया। फल ब्रह्मांड अनेक निकाया॥ ३॥

हे पापोंका नाश करनेवाले! मैं तो आपहीके भजनके प्रभावसे आपकी कुछ थोड़ी-सी महिमा जानता हूँ। आपकी माया गूलरके विशाल वृक्षके समान है, अनेकों ब्रह्माण्डोंके समूह ही जिसके फल हैं॥ ३॥

जीव चराचर जंतु समाना। भीतर बसहिं न जानहिं आना॥
ते फल भच्छक कठिन कराला। तव भयँ डरत सदा सोउ काला॥ ४॥

चर और अचर जीव [गूलरके फलके भीतर रहनेवाले छोटे-छोटे] जन्तुओंके समान उन [ब्रह्माण्डरूपी फलों] के भीतर बसते हैं और वे [अपने उस छोटे-से जगत्‌के सिवा] दूसरा कुछ नहीं जानते। उन फलोंका भक्षण करनेवाला कठिन और कराल काल है। वह काल भी सदा आपसे भयभीत रहता है॥ ४॥

ते तुम्ह सकल लोकपति साईं। पूँछेहु मोहि मनुज की नाईं॥
यह बर मागउँ कृपानिकेता। बसहु हृदयँ श्री अनुज समेता॥ ५॥

उन्हीं आपने समस्त लोकपालोंके स्वामी होकर भी मुझसे मनुष्यकी तरह प्रश्न किया। हे कृपाके धाम! मैं तो यह वर माँगता हूँ कि आप श्रीसीताजी और छोटे भाई लक्ष्मणजीसहित मेरे हृदयमें [सदा] निवास कीजिये॥ ५॥

अबिरल भगति बिरति सतसंगा। चरन सरोरुह प्रीति अभंगा॥
जद्यपि ब्रह्म अखंड अनंता। अनुभव गम्य भजहिं जेहि संता॥ ६॥

मुझे प्रगाढ़ भक्ति, वैराग्य, सत्संग और आपके चरणकमलोंमें अटूट प्रेम प्राप्त हो। यद्यपि आप अखण्ड और अनन्त ब्रह्म हैं, जो अनुभवसे ही जाननेमें आते हैं और जिनका संतजन भजन करते हैं॥ ६॥

अस तव रूप बखानउँ जानउँ। फिरि फिरि सगुन ब्रह्म रति मानउँ॥
संतत दासन्ह देहु बड़ाई। तातें मोहि पूँछेहु रघुराई॥ ७॥

यद्यपि मैं आपके ऐसे रूपको जानता हूँ और उसका वर्णन भी करता हूँ तो भी लौट-लौटकर मैं सगुण ब्रह्ममें (आपके इस सुन्दर स्वरूपमें) ही प्रेम मानता हूँ। आप सेवकोंको सदा ही बड़ाई दिया करते हैं, इसीसे हे रघुनाथजी ! आपने मुझसे पूछा है ॥ ७ ॥

है प्रभु परम मनोहर ठाऊँ। पावन पंचबटी तेहि नाऊँ ॥
दंडक बन पुनीत प्रभु करहू। उग्र साप मुनिबर कर हरहू ॥ ८ ॥

हे प्रभो ! एक परम मनोहर और पवित्र स्थान है, उसका नाम पञ्चवटी है। हे प्रभो ! आप दण्डकवनको [जहाँ पञ्चवटी है] पवित्र कीजिये और श्रेष्ठ मुनि गौतमजीके कठोर शापको हर लीजिये ॥ ८ ॥

बास करहु तहँ रघुकुल राया। कीजे सकल मुनिन्ह पर दाया ॥
चले राम मुनि आयसु पाई। तुरतहिं पंचबटी निअराई ॥ ९ ॥

हे रघुकुलके स्वामी ! आप सब मुनियोंपर दया करके वहीं निवास कीजिये। मुनिकी आज्ञा पाकर श्रीरामचन्द्रजी वहाँसे चल दिये और शीघ्र ही पञ्चवटीके निकट पहुँच गये ॥ ९ ॥

दो०—गीधराज सैं भेंट भइ बहु बिधि प्रीति बढ़ाइ।
गोदावरी निकट प्रभु रहे परन गृह छाइ ॥ १३ ॥

वहाँ गृधराज जटायुसे भेंट हुई। उसके साथ बहुत प्रकारसे प्रेम बढ़ाकर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी गोदावरीजीके समीप पर्णकुटी छाकर रहने लगे ॥ १३ ॥

चौ०—जब ते राम कीन्ह तहँ बासा। सुखी भए मुनि बीती त्रासा ॥
गिरि बन नदीं ताल छबि छाए। दिन दिन प्रति अति होहिं सुहाए ॥ १ ॥

जबसे श्रीरामजीने वहाँ निवास किया तबसे मुनि सुखी हो गये, उनका डर जाता रहा। पर्वत, वन, नदी और तालाब शोभासे छा गये। वे दिनोंदिन अधिक सुहावने [मालूम] होने लगे ॥ १ ॥

खग मृग बृंद अनंदित रहहीं। मधुप मधुर गुंजत छबि लहहीं ॥
सो बन बरनि न सक अहिराजा। जहाँ प्रगट रघुबीर बिराजा ॥ २ ॥

पक्षी और पशुओंके समूह आनन्दित रहते हैं और भौंरे मधुर गुंजार करते हुए शोभा पा रहे हैं। जहाँ प्रत्यक्ष श्रीरामजी विराजमान हैं, उस वनका वर्णन सर्पराज शेषजी भी नहीं कर सकते ॥ २ ॥

एक बार प्रभु सुख आसीना। लछिमन बचन कहे छलहीना ॥
सुर नर मुनि सचराचर साईं। मैं पूछउँ निज प्रभु की नाईं ॥ ३ ॥

एक बार प्रभु श्रीरामजी सुखसे बैठे हुए थे। उस समय लक्ष्मणजीने उनसे छलरहित (सरल) वचन कहे—हे देवता, मनुष्य, मुनि और चराचरके स्वामी ! मैं अपने प्रभुकी तरह (अपना स्वामी समझकर) आपसे पूछता हूँ ॥ ३ ॥

मोहि समुझाइ कहहु सोइ देवा। सब तजि करौं चरन रज सेवा ॥
कहहु ग्यान बिराग अरु माया। कहहु सो भगति करहु जेहिं दाया ॥ ४ ॥

हे देव ! मुझे समझाकर वही कहिये, जिससे सब छोड़कर मैं आपकी चरणरजकी ही सेवा करूँ। ज्ञान, वैराग्य और मायाका वर्णन कीजिये; और उस भक्तिको कहिये जिसके कारण आप दया करते हैं ॥ ४ ॥

दो०—ईस्वर जीव भेद प्रभु सकल कहौ समुझाइ।
जातें होइ चरन रति सोक मोह भ्रम जाइ ॥ १४ ॥

हे प्रभो ! ईश्वर और जीवका भेद भी सब समझाकर कहिये, जिससे आपके चरणोंमें मेरी प्रीति हो और शोक, मोह तथा भ्रम नष्ट हो जायँ ॥ १४ ॥

चौ०—थोरेहि महँ सब कहउँ बुझाई। सुनहु तात मति मन चित लाई ॥
मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया ॥ १ ॥

[श्रीरामजीने कहा—] हे तात ! मैं थोड़ेहीमें सब समझाकर कहे देता हूँ। तुम मन, चित्त और बुद्धि लगाकर सुनो ! मैं और मेरा, तू और तेरा—यही माया है, जिसने समस्त जीवोंको वशमें कर रक्खा है ॥ १ ॥

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई ॥
तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ। बिद्या अपर अबिद्या दोऊ ॥ २ ॥

इन्द्रियोंके विषयोंको और जहाँतक मन जाता है, हे भाई ! उस सबको माया जानना। उसके भी—एक विद्या और दूसरी अविद्या, इन दोनों भेदोंको तुम सुनो— ॥ २ ॥

एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा। जा बस जीव परा भवकूपा ॥
एक रचइ जग गुन बस जाकें। प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकें ॥ ३ ॥

एक (अविद्या) दुष्ट (दोषयुक्त) है और अत्यन्त दुःखरूप है जिसके वश होकर जीव संसाररूपी कुएँमें पड़ा हुआ है और एक (विद्या) जिसके वशमें गुण है और जो जगत्‌की रचना करती है, वह प्रभुसे ही प्रेरित होती है, उसके अपना बल कुछ भी नहीं है ॥ ३ ॥

ग्यान मान जहँ एकउ नाहीं। देख ब्रह्म समान सब माहीं ॥
कहिअ तात सो परम बिरागी। तृन सम सिद्धि तीनि गुन त्यागी ॥ ४ ॥

ज्ञान वह है जहाँ (जिसमें) मान आदि एक भी [दोष] नहीं है और जो सबमें समानरूपसे ब्रह्मको देखता है। हे तात ! उसीको परम वैराग्यवान् कहना चाहिये जो सारी सिद्धियोंको और तीनों गुणोंको तिनकेके समान त्याग चुका हो ॥ ४ ॥

[जिसमें मान, दम्भ, हिंसा, क्षमाराहित्य, टेढ़ापन, आचार्यसेवाका अभाव, अपवित्रता, अस्थिरता, मनका निगृहीत न होना, इन्द्रियोंके विषयमें आसक्ति, अहंकार, जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधिमय जगत्‌में सुखबुद्धि, स्त्री-पुत्र-घर आदिमें आसक्ति तथा ममता, इष्ट और अनिष्टकी प्राप्तिमें हर्ष-शोक, भक्तिका अभाव, एकान्तमें मन न लगना, विषयी मनुष्योंके संगमें प्रेम—ये अठारह न हों और नित्य अध्यात्म (आत्मा) में स्थिति तथा तत्त्वज्ञानके अर्थ (तत्त्वज्ञानके द्वारा जाननेयोग्य) परमात्माका नित्य दर्शन हो, वही ज्ञान कहलाता है। देखिये गीता अध्याय १३। ७ से ११]

दो०—माया ईस न आपु कहुँ जान कहिअ सो जीव।
बंध मोच्छ प्रद सर्बपर माया प्रेरक सीव ॥ १५ ॥

जो मायाको, ईश्वरको और अपने स्वरूपको नहीं जानता, उसे जीव कहना चाहिये। जो [कर्मानुसार] बन्धन और मोक्ष देनेवाला, सबसे परे और मायाका प्रेरक है वह ईश्वर है ॥ १५ ॥

चौ०—धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना। ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना।
जातें बेगि द्रवउँ मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई ॥ १ ॥

धर्म [के आचरण] से वैराग्य और योगसे ज्ञान होता है तथा ज्ञान मोक्षका देनेवाला है—ऐसा वेदोंने वर्णन किया है। और हे भाई ! जिससे मैं शीघ्र ही प्रसन्न होता हूँ, वह मेरी भक्ति है जो भक्तोंको सुख देनेवाली है ॥ १ ॥

सो सुतंत्र अवलंब न आना। तेहि आधीन ग्यान बिग्याना॥
भगति तात अनुपम सुखमूला। मिलइ जो संत होइँ अनुकूला॥ २॥

वह भक्ति स्वतन्त्र है, उसको [ज्ञान-विज्ञान आदि किसी] दूसरे साधनका सहारा (अपेक्षा) नहीं है। ज्ञान और विज्ञान तो उसके अधीन है। हे तात! भक्ति अनुपम एवं सुखकी मूल है; और वह तभी मिलती है जब संत अनुकूल (प्रसन्न) होते हैं॥ २॥

भगति कि साधन कहउँ बखानी। सुगम पंथ मोहि पावहिं प्रानी॥
प्रथमहिं बिप्र चरन अति प्रीती। निज निज कर्म निरत श्रुति रीती॥ ३॥

अब मैं भक्तिके साधन विस्तारसे कहता हूँ—यह सुगम मार्ग है, जिससे जीव मुझको सहज ही पा जाते हैं। पहले तो ब्राह्मणोंके चरणोंमें अत्यन्त प्रीति हो और वेदकी रीतिके अनुसार अपने-अपने [वर्णाश्रमके] कर्मोंमें लगा रहे॥ ३॥

एहि कर फल पुनि बिषय बिरागा। तब मम धर्म उपज अनुरागा॥
श्रवनादिक नव भक्ति दृढ़ाहीं। मम लीला रति अति मन माहीं॥ ४॥

इसका फल, फिर विषयोंसे वैराग्य होगा। तब (वैराग्य होनेपर) मेरे धर्म (भागवत-धर्म) में प्रेम उत्पन्न होगा। तब श्रवण आदि नौ प्रकारकी भक्तियाँ दृढ़ होंगी और मनमें मेरी लीलाओंके प्रति अत्यन्त प्रेम होगा॥ ४॥

संत चरन पंकज अति प्रेमा। मन क्रम बचन भजन दृढ़ नेमा॥
गुरु पितु मातु बंधु पति देवा। सब मोहि कहँ जानै दृढ़ सेवा॥ ५॥

जिसका संतोंके चरणकमलोंमें अत्यन्त प्रेम हो; मन, वचन और कर्मसे भजनका दृढ़ नियम हो और जो मुझको ही गुरु, पिता, माता, भाई, पति और देवता सब कुछ जाने और सेवामें दृढ़ हो,॥ ५॥

मम गुन गावत पुलक सरीरा। गदगद गिरा नयन बह नीरा॥
काम आदि मद दंभ न जाकें। तात निरंतर बस मैं ताकें॥ ६॥

मेरा गुण गाते समय जिसका शरीर पुलकित हो जाय, वाणी गद्‌गद हो जाय और नेत्रोंसे [प्रेमाश्रुओंका] जल बहने लगे और काम, मद और दम्भ आदि जिसमें न हों, हे भाई! मैं सदा उसके वशमें रहता हूँ॥ ६॥

दो०—बचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहिं निःकाम।
तिन्ह के हृदय कमल महुँ करउँ सदा बिश्राम॥ १६॥

जिनको कर्म, वचन और मनसे मेरी ही गति है; और जो निष्काम भावसे मेरा भजन करते हैं, उनके हृदय-कमलमें मैं सदा विश्राम किया करता हूँ॥ १६॥

चौ०—भगति जोग सुनि अति सुख पावा। लछिमन प्रभु चरननि सिरु नावा॥
एहि बिधि गए कछुक दिन बीती। कहत बिराग ग्यान गुन नीती॥ १॥

इस भक्तियोगको सुनकर लक्ष्मणजीने अत्यन्त सुख पाया और उन्होंने प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें सिर नवाया। इस प्रकार वैराग्य, ज्ञान, गुण और नीति कहते हुए कुछ दिन बीत गये॥ १॥

सूपनखा रावन कै बहिनी। दुष्ट हृदय दारुन जस अहिनी॥
पंचबटी सो गइ एक बारा। देखि बिकल भइ जुगल कुमारा॥ २॥

शूर्पणखा नामक रावणकी एक बहिन थी, जो नागिनके समान भयानक और दुष्ट हृदयकी थी। वह एक बार पञ्चवटीमें गयी और दोनों राजकुमारोंको देखकर विकल (कामसे पीड़ित) हो गयी॥ २॥

भ्राता पिता पुत्र उरगारी। पुरुष मनोहर निरखत नारी॥
होइ बिकल सक मनहि न रोकी। जिमि रबिमनि द्रव रबिहि बिलोकी॥ ३॥

[काकभुशुण्डिजी कहते हैं—] हे गरुड़जी! [शूर्पणखा-जैसी राक्षसी, धर्मज्ञानशून्य कामान्ध] स्त्री मनोहर पुरुषको देखकर, चाहे वह भाई, पिता, पुत्र ही हो, विकल हो जाती है और मनको नहीं रोक सकती। जैसे सूर्यकान्तमणि सूर्यको देखकर द्रवित हो जाती है (ज्वालासे पिघल जाती है)॥ ३॥

रुचिर रूप धरि प्रभु पहिं जाई। बोली बचन बहुत मुसुकाई॥
तुम्ह सम पुरुष न मो सम नारी। यह सँजोग बिधि रचा बिचारी॥ ४॥

वह सुन्दर रूप धरकर प्रभुके पास जाकर और बहुत मुस्कराकर वचन बोली—न तो तुम्हारे समान कोई पुरुष है, न मेरे समान स्त्री। विधाताने यह संयोग (जोड़ा) बहुत विचारकर रचा है॥ ४॥

मम अनुरूप पुरुष जग माहीं। देखेउँ खोजि लोक तिहु नाहीं॥
तातें अब लगि रहिउँ कुमारी। मनु माना कछु तुम्हहि निहारी॥ ५॥

मेरे योग्य पुरुष (वर) जगत्‌भरमें नहीं है, मैंने तीनों लोकोंको खोज देखा। इसीसे मैं अबतक कुमारी (अविवाहित) रही। अब तुमको देखकर कुछ मन माना (चित्त ठहरा) है॥ ५॥

सीतहि चितइ कही प्रभु बाता। अहइ कुआर मोर लघु भ्राता॥
गइ लछिमन रिपु भगिनी जानी। प्रभु बिलोकि बोले मृदु बानी॥ ६॥

सीताजीकी ओर देखकर प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने यह बात कही कि मेरा छोटा भाई कुमार है। तब वह लक्ष्मणजीके पास गयी। लक्ष्मणजी उसे शत्रुकी बहिन समझकर और प्रभुकी ओर देखकर कोमल वाणीसे बोले—॥ ६॥

सुंदरि सुनु मैं उन्ह कर दासा। पराधीन नहिं तोर सुपासा॥
प्रभु समर्थ कोसलपुर राजा। जो कछु करहिं उनहि सब छाजा॥ ७॥

हे सुन्दरी! सुन, मैं तो उनका दास हूँ। मैं पराधीन हूँ, अतः तुम्हें सुभीता (सुख) न होगा। प्रभु समर्थ हैं, कोसलपुरके राजा हैं, वे जो कुछ करें, उन्हें सब फबता है॥ ७॥

सेवक सुख चह मान भिखारी। ब्यसनी धन सुभ गति बिभिचारी॥
लोभी जसु चह चार गुमानी। नभ दुहि दूध चहत ए प्रानी॥ ८॥

सेवक सुख चाहे, भिखारी सम्मान चाहे, व्यसनी (जिसे जूए, शराब आदिका व्यसन हो) धन और व्यभिचारी शुभगति चाहे, लोभी यश चाहे और अभिमानी चारों फल—अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चाहे, तो ये सब प्राणी आकाशको दुहकर दूध लेना चाहते हैं (अर्थात् असम्भव बातको सम्भव करना चाहते हैं)॥ ८॥

पुनि फिरि राम निकट सो आई। प्रभु लछिमन पहिं बहुरि पठाई॥
लछिमन कहा तोहि सो बरई। जो तृन तोरि लाज परिहरई॥ ९॥

वह लौटकर फिर श्रीरामजीके पास आयी, प्रभुने उसे फिर लक्ष्मणजीके पास भेज दिया। लक्ष्मणजीने कहा—तुम्हें वही बरेगा जो लज्जाको तृण तोड़कर (अर्थात् प्रतिज्ञा करके) त्याग देगा

(अर्थात् जो निपट निर्लज्ज होगा) ॥ ९ ॥

तब खिसिआनि राम पहिं गई। रूप भयंकर प्रगटत भई॥
सीतहि सभय देखि रघुराई। कहा अनुज सन सयन बुझाई॥ १०॥

तब वह खिसियायी हुई (क्रुद्ध होकर) श्रीरामजीके पास गयी और उसने अपना भयंकर रूप प्रकट किया। सीताजीको भयभीत देखकर श्रीरघुनाथजीने लक्ष्मणजीको इशारा देकर कहा॥ १०॥

दो०—लछिमन अति लाघवँ सो नाक कान बिनु कीन्हि।
ताके कर रावन कहँ मनौ चुनौती दीन्हि॥ १७॥

लक्ष्मणजीने बड़ी फुर्तीसे उसको बिना नाक-कानकी कर दिया। मानो उसके हाथ रावणको चुनौती दी हो!॥ १७॥

चौ०—नाक कान बिनु भइ बिकरारा। जनु स्रव सैल गेरु कै धारा॥
खर दूषन पहिं गइ बिलपाता। धिग धिग तव पौरुष बल भ्राता॥ १॥

बिना नाक-कानके वह विकराल हो गयी। [उसके शरीरसे रक्त इस प्रकार बहने लगा] मानो [काले] पर्वतसे गेरूकी धारा बह रही हो। वह विलाप करती हुई खर-दूषणके पास गयी [और बोली—] हे भाई! तुम्हारे पौरुष (वीरता) को धिक्कार है, तुम्हारे बलको धिक्कार है॥ १॥

तेहिं पूछा सब कहेसि बुझाई। जातुधान सुनि सेन बनाई॥
धाए निसिचर निकर बरूथा। जनु सपच्छ कज्जल गिरि जूथा॥ २॥

उन्होंने पूछा, तब शूर्पणखाने सब समझाकर कहा। सब सुनकर राक्षसोंने सेना तैयार की। राक्षससमूह झुंड-के-झुंड दौड़े। मानो पंखधारी काजलके पर्वतोंका झुंड हो॥ २॥

नाना बाहन नानाकारा। नानायुध धर घोर अपारा॥
सूपनखा आगें करि लीनी। असुभ रूप श्रुति नासा हीनी॥ ३॥

वे अनेकों प्रकारकी सवारियोंपर चढ़े हुए तथा अनेकों आकार (सूरतों) के हैं। वे अपार हैं और अनेकों प्रकारके असंख्य भयानक हथियार धारण किये हुए हैं। उन्होंने नाक-कान कटी हुई अमङ्गलरूपिणी शूर्पणखाको आगे कर लिया॥ ३॥

असगुन अमित होहिं भयकारी। गनहिं न मृत्यु बिबस सब झारी॥
गर्जहिं तर्जहिं गगन उड़ाहीं। देखि कटकु भट अति हरषाहीं॥ ४॥

अनगिनत भयंकर अशकुन हो रहे हैं। परंतु मृत्युके वश होनेके कारण वे सब-के-सब उनको कुछ गिनते ही नहीं। गरजते हैं, ललकारते हैं और आकाशमें उड़ते हैं। सेना देखकर योद्धालोग बहुत ही हर्षित होते हैं॥ ४॥

कोउ कह जिअत धरहु द्वौ भाई। धरि मारहु तिय लेहु छड़ाई॥
धूरि पूरि नभ मंडल रहा। राम बोलाइ अनुज सन कहा॥ ५॥

कोई कहता है दोनों भाइयोंको जीता ही पकड़ लो, पकड़कर मार डालो और स्त्रीको छीन लो। आकाशमण्डल धूलसे भर गया। तब श्रीरामजीने लक्ष्मणजीको बुलाकर उनसे कहा॥ ५॥

लै जानकिहि जाहु गिरि कंदर। आवा निसिचर कटकु भयंकर॥
रहेहु सजग सुनि प्रभु कै बानी। चले सहित श्री सर धनु पानी॥ ६॥

राक्षसोंकी भयानक सेना आ गयी है। जानकीजीको लेकर तुम पर्वतकी कन्दरामें चले जाओ। सावधान रहना। प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके वचन सुनकर लक्ष्मणजी हाथमें धनुष-बाण लिये श्रीसीताजीसहित चले॥ ६॥

देखि राम रिपुदल चलि आवा। बिहसि कठिन कोदंड चढ़ावा॥ ७॥

शत्रुओंकी सेना [समीप] चली आयी है, यह देखकर श्रीरामजीने हँसकर कठिन धनुषको चढ़ाया॥ ७॥

छं०—कोदंड कठिन चढ़ाइ सिर जट जूट बाँधत सोह क्यों।
मरकत सयल पर लरत दामिनि कोटि सों जुग भुजग ज्यों॥
कटि कसि निषंग बिसाल भुज गहि चाप बिसिख सुधारि कै।
चितवत मनहुँ मृगराज प्रभु गजराज घटा निहारि कै॥

कठिन धनुष चढ़ाकर सिरपर जटाका जूड़ा बाँधते हुए प्रभु कैसे शोभित हो रहे हैं, जैसे मरकतमणि (पन्ने) के पर्वतपर करोड़ों बिजलियोंसे दो साँप लड़ रहे हों। कमरमें तरकस कसकर, विशाल भुजाओंमें धनुष लेकर और बाण सुधारकर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी राक्षसोंकी ओर देख रहे हैं। मानो मतवाले हाथियोंके समूहको [आता] देखकर सिंह [उनकी ओर] ताक रहा हो।

सो०—आइ गए बगमेल धरहु धरहु धावत सुभट।
जथा बिलोकि अकेल बाल रबिहि घेरत दनुज॥ १८॥

'पकड़ो-पकड़ो' पुकारते हुए राक्षस योद्धा बाग छोड़कर (बड़ी तेजीसे) दौड़े हुए आये [और उन्होंने श्रीरामजीको चारों ओरसे घेर लिया], जैसे बालसूर्य (उदय-कालीन सूर्य) को अकेला देखकर मन्देह नामक दैत्य घेर लेते हैं॥ १८॥

चौ०—प्रभु बिलोकि सर सकहिं न डारी। थकित भई रजनीचर धारी॥
सचिव बोलि बोले खर दूषन। यह कोउ नृपबालक नर भूषन॥ १॥

[सौन्दर्य-माधुर्यनिधि] प्रभु श्रीरामजीको देखकर राक्षसोंकी सेना थकित रह गयी। वे उनपर बाण नहीं छोड़ सके। मन्त्रीको बुलाकर खर-दूषणने कहा—यह राजकुमार कोई मनुष्योंका भूषण है॥ १॥

नाग असुर सुर नर मुनि जेते। देखे जिते हते हम केते॥
हम भरि जन्म सुनहु सब भाई। देखी नहिं असि सुंदरताई॥ २॥

जितने भी नाग, असुर, देवता, मनुष्य और मुनि हैं, उनमेंसे हमने न जाने कितने ही देखे, जीते और मार डाले हैं। पर हे सब भाइयो! सुनो, हमने जन्मभरमें ऐसी सुन्दरता कहीं नहीं देखी॥ २॥

जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरूपा। बध लायक नहिं पुरुष अनूपा॥
देहु तुरत निज नारि दुराई। जीअत भवन जाहु द्वौ भाई॥ ३॥

यद्यपि इन्होंने हमारी बहिनको कुरूप कर दिया तथापि ये अनुपम पुरुष वध करने योग्य नहीं हैं। 'छिपायी हुई अपनी स्त्री हमें तुरंत दे दो और दोनों भाई जीते-जी घर लौट जाओ'॥ ३॥

मोर कहा तुम्ह ताहि सुनावहु। तासु बचन सुनि आतुर आवहु॥
दूतन्ह कहा राम सन जाई। सुनत राम बोले मुसुकाई॥ ४॥

मेरा यह कथन तुमलोग उसे सुनाओ और उसका वचन (उत्तर) सुनकर शीघ्र आओ। दूतोंने

जाकर यह संदेश श्रीरामचन्द्रजीसे कहा। उसे सुनते ही श्रीरामचन्द्रजी मुस्कराकर बोले— ॥ ४ ॥

हम छत्री मृगया बन करहीं। तुम्ह से खल मृग खोजत फिरहीं॥
रिपु बलवंत देखि नहिं डरहीं। एक बार कालहु सन लरहीं॥ ५॥

हम क्षत्रिय हैं, वनमें शिकार करते हैं और तुम्हारे-सरीखे दुष्ट पशुओंको तो ढूँढ़ते ही फिरते हैं। हम बलवान् शत्रुको देखकर नहीं डरते। [लड़नेको आवे तो] एक बार तो हम कालसे भी लड़ सकते हैं॥ ५॥

जद्यपि मनुज दनुज कुल घालक। मुनि पालक खल सालक बालक॥
जौं न होइ बल घर फिरि जाहू। समर बिमुख मैं हतउँ न काहू॥ ६॥

यद्यपि हम मनुष्य हैं, परंतु दैत्यकुलका नाश करनेवाले और मुनियोंकी रक्षा करनेवाले हैं, हम बालक हैं, परंतु हैं दुष्टोंको दण्ड देनेवाले। यदि बल न हो तो घर लौट जाओ। संग्राममें पीठ दिखानेवाले किसीको मैं नहीं मारता॥ ६॥

रन चढ़ि करिअ कपट चतुराई। रिपु पर कृपा परम कदराई॥
दूतन्ह जाइ तुरत सब कहेऊ। सुनि खर दूषन उर अति दहेऊ॥ ७॥

रणमें चढ़ आकर कपट-चतुराई करना और शत्रुपर कृपा करना (दया दिखाना) तो बड़ी भारी कायरता है। दूतोंने लौटकर तुरंत सब बातें कहीं, जिन्हें सुनकर खर-दूषणका हृदय अत्यन्त जल उठा॥ ७॥

छं०—उर दहेउ कहेउ कि धरहु धाए बिकट भट रजनीचरा।
सर चाप तोमर सक्ति सूल कृपान परिघ परसु धरा॥
प्रभु कीन्हि धनुष टकोर प्रथम कठोर घोर भयावहा।
भए बधिर ब्याकुल जातुधान न ग्यान तेहि अवसर रहा॥

[खर-दूषणका] हृदय जल उठा। तब उन्होंने कहा—पकड़ लो (कैद कर लो)। [यह सुनकर] भयानक राक्षस योद्धा बाण, धनुष, तोमर, शक्ति (साँग), शूल (बरछी), कृपाण (कटार), परिघ और फरसा धारण किये हुए दौड़ पड़े। प्रभु श्रीरामजीने पहले धनुषका बड़ा कठोर, घोर और भयानक टंकार किया, जिसे सुनकर राक्षस बहरे और व्याकुल हो गये। उस समय उन्हें कुछ भी होश न रहा।

दो०—सावधान होइ धाए जानि सबल आराति।
लागे बरषन राम पर अस्त्र सस्त्र बहुभाँति॥ १९ क॥

फिर वे शत्रुको बलवान् जानकर सावधान होकर दौड़े और श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर बहुत प्रकारके अस्त्र-शस्त्र बरसाने लगे॥ १९ (क)॥

तिन्ह के आयुध तिल सम करि काटे रघुबीर।
तानि सरासन श्रवन लगि पुनि छाँड़े निज तीर॥ १९ ख॥

श्रीरघुवीरजीने उनके हथियारोंको तिलके समान (टुकड़े-टुकड़े) करके काट डाला। फिर धनुषको कानतक तानकर अपने तीर छोड़े॥ १९ (ख)॥

छं०—तब चले बान कराल। फुंकरत जनु बहु ब्याल॥
कोपेउ समर श्रीराम। चले बिसिख निसित निकाम॥ १॥

तब भयानक बाण ऐसे चले, मानो फुफकारते हुए बहुत-से सर्प जा रहे हैं। श्रीरामचन्द्रजी संग्राममें क्रुद्ध हुए और अत्यन्त तीक्ष्ण बाण चले॥ १॥

अवलोकि खरतर तीर। मुरि चले निसिचर बीर॥
भए क्रुद्ध तीनिउ भाइ। जो भागि रन ते जाइ॥ २॥

अत्यन्त तीक्ष्ण बाणोंको देखकर राक्षस वीर पीठ दिखाकर भाग चले। तब खर-दूषण और त्रिशिरा तीनों भाई क्रुद्ध होकर बोले—जो रणसे भागकर जायगा,॥ २॥

तेहि बधब हम निज पानि। फिरे मरन मन महुँ ठानि॥
आयुध अनेक प्रकार। सनमुख ते करहिं प्रहार॥ ३॥

उसका हम अपने हाथों वध करेंगे। तब मनमें मरना ठानकर भागते हुए राक्षस लौट पड़े और सामने होकर वे अनेकों प्रकारके हथियारोंसे श्रीरामजीपर प्रहार करने लगे॥ ३॥

रिपु परम कोपे जानि। प्रभु धनुष सर संधानि॥
छाँड़े बिपुल नाराच। लगे कटन बिकट पिसाच॥ ४॥

शत्रुको अत्यन्त कुपित जानकर प्रभुने धनुषपर बाण चढ़ाकर बहुत-से बाण छोड़े, जिनसे भयानक राक्षस कटने लगे॥ ४॥

उर सीस भुज कर चरन। जहँ तहँ लगे महि परन॥
चिक्करत लागत बान। धर परत कुधर समान॥ ५॥

उनकी छाती, सिर, भुजा, हाथ और पैर जहाँ-तहाँ पृथ्वीपर गिरने लगे। बाण लगते ही वे हाथीकी तरह चिग्घाड़ते हैं। उनके पहाड़के समान धड़ कट-कटकर गिर रहे हैं॥ ५॥

भट कटत तन सत खंड। पुनि उठत करि पाषंड॥
नभ उड़त बहु भुज मुंड। बिनु मौलि धावत रुंड॥ ६॥

योद्धाओंके शरीर कटकर सैकड़ों टुकड़े हो जाते हैं। वे फिर माया करके उठ खड़े होते हैं। आकाशमें बहुत-सी भुजाएँ और सिर उड़ रहे हैं तथा बिना सिरके धड़ दौड़ रहे हैं॥ ६॥

खग कंक काक सृगाल। कटकटहिं कठिन कराल॥ ७॥

चील [या क्रौंच], कौए आदि पक्षी और सियार कठोर और भयंकर कट-कट शब्द कर रहे हैं॥ ७॥

छं०—कटकटहिं जंबुक भूत प्रेत पिसाच खर्पर संचहीं।
बेताल बीर कपाल ताल बजाइ जोगिनि नंचहीं॥
रघुबीर बान प्रचंड खंडहिं भटन्ह के उर भुज सिरा।
जहँ तहँ परहिं उठि लरहिं धर धरु धरु करहिं भयकर गिरा॥ १॥

सियार कटकटाते हैं, भूत, प्रेत और पिशाच खोपड़ियाँ बटोर रहे हैं, [अथवा खप्पर भर रहे हैं]। वीर-वैताल खोपड़ियोंपर ताल दे रहे हैं और योगिनियाँ नाच रही हैं। श्रीरघुवीरके प्रचण्ड बाण योद्धाओंके वक्षःस्थल, भुजा और सिरोंके टुकड़े-टुकड़े कर डालते हैं। उनके धड़ जहाँ-तहाँ गिर पड़ते हैं, फिर उठते और लड़ते हैं और 'पकड़ो-पकड़ो' का भयंकर शब्द करते हैं॥ १॥

अंतावरीं गहि उड़त गीध पिसाच कर गहि धावहीं।
संग्राम पुर बासी मनहुँ बहु बाल गुड़ी उड़ावहीं॥

मारे पछारे उर बिदारे बिपुल भट कहँरत परे।
अवलोकि निज दल बिकल भट तिसिरादि खर दूषन फिरे॥ २॥

अँतड़ियोंके एक छोरको पकड़कर गीध उड़ते हैं और उन्हींका दूसरा छोर हाथसे पकड़कर पिशाच दौड़ते हैं, ऐसा मालूम होता है, मानो संग्रामरूपी नगरके निवासी बहुत-से बालक पतंग उड़ा रहे हों। अनेकों योद्धा मारे और पछाड़े गये, बहुत-से, जिनके हृदय विदीर्ण हो गये हैं, पड़े कराह रहे हैं। अपनी सेनाको व्याकुल देखकर त्रिशिरा और खर-दूषण आदि योद्धा श्रीरामजीकी ओर मुड़े॥ २॥

सर सक्ति तोमर परसु सूल कृपान एकहि बारहीं।
करि कोप श्रीरघुबीर पर अगनित निसाचर डारहीं॥
प्रभु निमिष महुँ रिपु सर निवारि पचारि डारे सायका।
दस दस बिसिख उर माझ मारे सकल निसिचर नायका॥ ३॥

अनगिनत राक्षस क्रोध करके बाण, शक्ति, तोमर, फरसा, शूल और कृपाण एक ही बारमें श्रीरघुवीरपर छोड़ने लगे। प्रभुने पलभरमें शत्रुओंके बाणोंको काटकर, ललकारकर उनपर अपने बाण छोड़े। सब राक्षस-सेनापतियोंके हृदयमें दस-दस बाण मारे॥ ३॥

महि परत उठि भट भिरत मरत न करत माया अति घनी।
सुर डरत चौदह सहस प्रेत बिलोकि एक अवध धनी॥
सुर मुनि सभय प्रभु देखि मायानाथ अति कौतुक कर्‌यो।
देखहिं परसपर राम करि संग्राम रिपु दल लरि मर्‌यो॥ ४॥

योद्धा पृथ्वीपर गिर पड़ते हैं, फिर उठकर भिड़ते हैं। मरते नहीं, बहुत प्रकारकी अतिशय माया रचते हैं। देवता यह देखकर डरते हैं कि प्रेत (राक्षस) चौदह हजार हैं और अयोध्यानाथ श्रीरामजी अकेले हैं। देवता और मुनियोंको भयभीत देखकर मायाके स्वामी प्रभुने एक बड़ा कौतुक किया, जिससे शत्रुओंकी सेना एक-दूसरेको रामरूप देखने लगी और आपसमें ही लड़-भिड़कर मर गयी॥ ४॥

दो०—राम राम कहि तनु तजहिं पावहिं पद निर्बान।
करि उपाय रिपु मारे छन महुँ कृपानिधान॥ २० क॥

सब ['यही राम है, इसे मारो' इस प्रकार] राम-राम कहकर शरीर छोड़ते हैं और निर्वाण (मोक्ष) पद पाते हैं। कृपानिधान श्रीरामजीने यह उपाय करके क्षणभरमें शत्रुओंका नाश कर दिया॥ २०(क)॥

हरषित बरषहिं सुमन सुर बाजहिं गगन निसान।
अस्तुति करि करि सब चले सोभित बिबिध बिमान॥ २० ख॥

देवता हर्षित होकर फूल बरसाते हैं, आकाशमें नगाड़े बज रहे हैं। फिर वे सब स्तुति कर-करके अनेकों विमानोंपर सुशोभित हुए चले गये॥ २०(ख)॥

चौ०—जब रघुनाथ समर रिपु जीते। सुर नर मुनि सब के भय बीते॥
तब लछिमन सीतहि लै आए। प्रभु पद परत हरषि उर लाए॥ १॥

जब श्रीरघुनाथजीने युद्धमें शत्रुओंको जीत लिया तथा देवता, मनुष्य और मुनि सबके भय नष्ट हो गये, तब लक्ष्मणजी सीताजीको ले आये। चरणोंमें पड़ते हुए उनको प्रभुने प्रसन्नतापूर्वक उठाकर हृदयसे लगा लिया॥ १॥

सीता चितव स्याम मृदु गाता। परम प्रेम लोचन न अघाता॥
पंचबटीं बसि श्रीरघुनायक। करत चरित सुर मुनि सुखदायक॥ २॥

सीताजी श्रीरामजीके श्याम और कोमल शरीरको परम प्रेमके साथ देख रही हैं, नेत्र अघाते नहीं हैं। इस प्रकार पञ्चवटीमें बसकर श्रीरघुनाथजी देवताओं और मुनियोंको सुख देनेवाले चरित्र करने लगे॥ २॥

धुआँ देखि खरदूषन केरा। जाइ सुपनखाँ रावन प्रेरा॥
बोली बचन क्रोध करि भारी। देस कोस कै सुरति बिसारी॥ ३॥

खर-दूषणका विध्वंस देखकर शूर्पणखाने जाकर रावणको भड़काया। वह बड़ा क्रोध करके वचन बोली—तूने देश और खजानेकी सुधि ही भुला दी॥ ३॥

करसि पान सोवसि दिनु राती। सुधि नहिं तव सिर पर आराती॥
राज नीति बिनु धन बिनु धर्मा। हरिहि समर्पे बिनु सतकर्मा॥ ४॥
बिद्या बिनु बिबेक उपजाएँ। श्रम फल पढ़ें किएँ अरु पाएँ॥
संग तें जती कुमंत्र ते राजा। मान ते ग्यान पान तें लाजा॥ ५॥

शराब पी लेता है और दिन-रात पड़ा सोता रहता है। तुझे खबर नहीं है कि शत्रु तेरे सिरपर खड़ा है? नीतिके बिना राज्य और धर्मके बिना धन प्राप्त करनेसे, भगवान्‌को समर्पण किये बिना उत्तम कर्म करनेसे और विवेक उत्पन्न किये बिना विद्या पढ़नेसे परिणाममें श्रम ही हाथ लगता है। विषयोंके सङ्गसे संन्यासी, बुरी सलाहसे राजा, मानसे ज्ञान, मदिरापानसे लज्जा,॥ ४-५॥

प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी। नासहिं बेगि नीति अस सुनी॥ ६॥

नम्रताके बिना (नम्रता न होनेसे) प्रीति और मद (अहंकार) से गुणवान् शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं, इस प्रकार नीति मैंने सुनी है॥ ६॥

सो०—रिपु रुज पावक पाप प्रभु अहि गनिअ न छोट करि।
अस कहि बिबिध बिलाप करि लागी रोदन करन॥ २१ क॥

शत्रु, रोग, अग्नि, पाप, स्वामी और सर्पको छोटा करके नहीं समझना चाहिये। ऐसा कहकर शूर्पणखा अनेक प्रकारसे विलाप करके रोने लगी॥ २१ (क)॥

दो०—सभा माझ परि ब्याकुल बहु प्रकार कह रोइ।
तोहि जिअत दसकंधर मोरि कि असि गति होइ॥ २१ ख॥

[रावणकी] सभाके बीच वह व्याकुल होकर पड़ी हुई बहुत प्रकारसे रो-रोकर कह रही है कि अरे दशग्रीव! तेरे जीते-जी मेरी क्या ऐसी दशा होनी चाहिये?॥ २१ (ख)॥

चौ०—सुनत सभासद उठे अकुलाई। समुझाई गहि बाँह उठाई॥
कह लंकेस कहसि निज बाता। केइँ तव नासा कान निपाता॥ १॥

शूर्पणखाके वचन सुनते ही सभासद् अकुला उठे। उन्होंने शूर्पणखाकी बाँह पकड़कर उसे उठाया और समझाया। लङ्कापति रावणने कहा—अपनी बात तो बता, किसने तेरे नाक-कान काट लिये?॥ १॥

अवध नृपति दसरथ के जाए। पुरुष सिंघ बन खेलन आए॥
समुझि परी मोहि उन्ह कै करनी। रहित निसाचर करिहहिं धरनी॥ २॥

[वह बोली—] अयोध्याके राजा दशरथके पुत्र, जो पुरुषोंमें सिंहके समान हैं, वनमें शिकार खेलने आये हैं। मुझे उनकी करनी ऐसी समझ पड़ी है कि वे पृथ्वीको राक्षसोंसे रहित कर देंगे॥ २॥

जिन्ह कर भुजबल पाइ दसानन। अभय भए बिचरत मुनि कानन॥
देखत बालक काल समाना। परम धीर धन्वी गुन नाना॥ ३॥

जिनकी भुजाओंका बल पाकर हे दशमुख! मुनि लोग वनमें निर्भय होकर विचरने लगे हैं। वे देखनेमें तो बालक हैं, पर हैं कालके समान। वे परम धीर, श्रेष्ठ धनुर्धर और अनेकों गुणोंसे युक्त हैं॥ ३॥

अतुलित बल प्रताप द्वौ भ्राता। खल बध रत सुर मुनि सुखदाता॥
सोभा धाम राम अस नामा। तिन्ह के संग नारि एक स्यामा॥ ४॥

दोनों भाइयोंका बल और प्रताप अतुलनीय है। वे दुष्टोंके वध करनेमें लगे हैं और देवता तथा मुनियोंको सुख देनेवाले हैं। वे शोभाके धाम हैं, 'राम' ऐसा उनका नाम है। उनके साथ एक तरुणी सुन्दरी स्त्री है॥ ४॥

रूप रासि बिधि नारि सँवारी। रति सत कोटि तासु बलिहारी॥
तासु अनुज काटे श्रुति नासा। सुनि तव भगिनि करहिं परिहासा॥ ५॥

विधाताने उस स्त्रीको ऐसी रूपकी राशि बनाया है कि सौ करोड़ रति (कामदेवकी स्त्री) उसपर निछावर हैं। उन्हींके छोटे भाईने मेरे नाक-कान काट डाले। मैं तेरी बहिन हूँ, यह सुनकर वे मेरी हँसी करने लगे॥ ५॥

खर दूषन सुनि लगे पुकारा। छन महुँ सकल कटक उन्ह मारा॥
खर दूषन तिसिरा कर घाता। सुनि दससीस जरे सब गाता॥ ६॥

मेरी पुकार सुनकर खर-दूषण सहायता करने आये। पर उन्होंने क्षणभरमें सारी सेनाको मार डाला। खर-दूषण और त्रिशिराका वध सुनकर रावणके सारे अंग जल उठे॥ ६॥

दो०—सूपनखहि समुझाइ करि बल बोलेसि बहु भाँति।
गयउ भवन अति सोचबस नीद परइ नाहिं राति॥ २२॥

उसने शूर्पणखाको समझाकर बहुत प्रकारसे अपने बलका बखान किया, किंतु [मनमें] वह अत्यन्त चिन्तावश होकर अपने महलमें गया, उसे रातभर नींद नहीं पड़ी॥ २२॥

चौ०—सुर नर असुर नाग खग माहीं। मोरे अनुचर कहँ कोउ नाहीं॥
खर दूषन मोहि सम बलवंता। तिन्हहि को मारइ बिनु भगवंता॥ १॥

[वह मन-ही-मन विचार करने लगा—] देवता, मनुष्य, असुर, नाग और पक्षियोंमें कोई ऐसा नहीं जो मेरे सेवकको भी पा सके। खर-दूषण तो मेरे ही समान बलवान् थे। उन्हें भगवान्‌के सिवा और कौन मार सकता है?॥ १॥

सुर रंजन भंजन महि भारा। जौं भगवंत लीन्ह अवतारा॥
तौ मैं जाइ बैरु हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ॥ २॥

देवताओंको आनन्द देनेवाले और पृथ्वीका भार हरण करनेवाले भगवान्‌ने ही यदि अवतार

लिया है तो मैं जाकर उनसे हठपूर्वक वैर करूँगा और प्रभुके बाण [के आघात] से प्राण छोड़कर भवसागरसे तर जाऊँगा ॥ २ ॥

होइहि भजनु न तामस देहा। मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा ॥
जौं नररूप भूपसुत कोऊ। हरिहउँ नारि जीति रन दोऊ ॥ ३ ॥

इस तामस शरीरसे भजन तो होगा नहीं; अतएव मन, वचन और कर्मसे यही दृढ़ निश्चय है। और यदि वे मनुष्यरूप कोई राजकुमार होंगे तो उन दोनोंको रणमें जीतकर उनकी स्त्रीको हर लूँगा ॥ ३ ॥

चला अकेल जान चढ़ि तहवाँ। बस मारीच सिंधु तट जहवाँ ॥
इहाँ राम जसि जुगुति बनाई। सुनहु उमा सो कथा सुहाई ॥ ४ ॥

[यों विचारकर] रावण रथपर चढ़कर अकेला ही वहाँ चला, जहाँ समुद्रके तटपर मारीच रहता था। [शिवजी कहते हैं कि—] हे पार्वती ! यहाँ श्रीरामचन्द्रजीने जैसी युक्ति रची, वह सुन्दर कथा सुनो ॥ ४ ॥

दो०—लछिमन गए बनहिं जब लेन मूल फल कंद।
जनकसुता सन बोले बिहसि कृपा सुख बृंद ॥ २३ ॥

लक्ष्मणजी जब कन्द-मूल-फल लेनेके लिये वनमें गये, तब [अकेलेमें] कृपा और सुखके समूह श्रीरामचन्द्रजी हँसकर जानकीजीसे बोले— ॥ २३ ॥

चौ०—सुनहु प्रिया ब्रत रुचिर सुसीला। मैं कछु करबि ललित नरलीला ॥
तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा। जौ लगि करौं निसाचर नासा ॥ १ ॥

हे प्रिये ! हे सुन्दर पातिव्रत-धर्मका पालन करनेवाली सुशीले ! सुनो ! मैं अब कुछ मनोहर मनुष्यलीला करूँगा। इसलिये जबतक मैं राक्षसोंका नाश करूँ, तबतक तुम अग्निमें निवास करो ॥ १ ॥

जबहिं राम सब कहा बखानी। प्रभु पद धरि हियँ अनल समानी ॥
निज प्रतिबिंब राखि तहँ सीता। तैसइ सील रूप सुबिनीता ॥ २ ॥

श्रीरामजीने ज्यों ही सब समझाकर कहा, त्यों ही श्रीसीताजी प्रभुके चरणोंको हृदयमें धरकर अग्निमें समा गयीं। सीताजीने अपनी ही छायामूर्ति वहाँ रख दी, जो उनके-जैसे ही शील-स्वभाव और रूपवाली तथा वैसे ही विनम्र थी ॥ २ ॥

लछिमनहूँ यह मरमु न जाना। जो कछु चरित रचा भगवाना ॥
दसमुख गयउ जहाँ मारीचा। नाइ माथ स्वारथ रत नीचा ॥ ३ ॥

भगवान्‌ने जो कुछ लीला रची, इस रहस्यको लक्ष्मणजीने भी नहीं जाना। स्वार्थपरायण और नीच रावण वहाँ गया जहाँ मारीच था और उसको सिर नवाया ॥ ३ ॥

नवनि नीच कै अति दुखदाई। जिमि अंकुस धनु उरग बिलाई ॥
भयदायक खल कै प्रिय बानी। जिमि अकाल के कुसुम भवानी ॥ ४ ॥

नीचका झुकना (नम्रता) भी अत्यन्त दुःखदायी होता है। जैसे अंकुश, धनुष, साँप और बिल्लीका झुकना। हे भवानी ! दुष्टकी मीठी वाणी भी [उसी प्रकार] भय देनेवाली होती है, जैसे बिना ऋतुके फूल ! ॥ ४ ॥

दो०—करि पूजा मारीच तब सादर पूछी बात।
कवन हेतु मन ब्यग्र अति अकसर आयहु तात॥ २४॥

तब मारीचने उसकी पूजा करके आदरपूर्वक बात पूछी—हे तात! आपका मन किस कारण इतना अधिक व्यग्र है और आप अकेले आये हैं?॥ २४॥

चौ०—दसमुख सकल कथा तेहि आगें। कही सहित अभिमान अभागें॥
होहु कपट मृग तुम्ह छलकारी। जेहि बिधि हरि आनौं नृपनारी॥ १॥

भाग्यहीन रावणने सारी कथा अभिमानसहित उसके सामने कही [और फिर कहा—] तुम छल करनेवाले कपटमृग बनो, जिस उपायसे मैं उस राजवधूको हर लाऊँ॥ १॥

तेहिं पुनि कहा सुनहु दससीसा। ते नररूप चराचर ईसा॥
तासों तात बयरु नहिं कीजै। मारें मरिअ जिआएँ जीजै॥ २॥

तब उसने (मारीचने) कहा—हे दशशीश! सुनिये। वे मनुष्यरूपमें चराचरके ईश्वर हैं। हे तात! उनसे वैर न कीजिये। उन्हींके मारनेसे मरना और उनके जिलानेसे जीना होता है (सबका जीवन-मरण उन्हींके अधीन है)॥ २॥

मुनि मख राखन गयउ कुमारा। बिनु फर सर रघुपति मोहि मारा॥
सत जोजन आयउँ छन माहीं। तिन्ह सन बयरु किएँ भल नाहीं॥ ३॥

यही राजकुमार मुनि विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षाके लिये गये थे। उस समय श्रीरघुनाथजीने बिना फलका बाण मुझे मारा था, जिससे मैं क्षणभरमें सौ योजनपर आ गिरा। उनसे वैर करनेमें भलाई नहीं है॥ ३॥

भइ मम कीट भृंग की नाईं। जहँ तहँ मैं देखउँ दोउ भाई॥
जौं नर तात तदपि अति सूरा। तिन्हहि बिरोधि न आइहि पूरा॥ ४॥

मेरी दशा तो भृंगीके कीड़ेकी-सी हो गयी है। अब मैं जहाँ-तहाँ श्रीराम-लक्ष्मण दोनों भाइयोंको ही देखता हूँ। और हे तात! यदि वे मनुष्य हैं, तो भी बड़े शूरवीर हैं। उनसे विरोध करनेमें पूरा न पड़ेगा (सफलता नहीं मिलेगी)॥ ४॥

दो०—जेहिं ताड़का सुबाहु हति खंडेउ हर कोदंउ।
खर दूषन तिसिरा बधेउ मनुज कि अस बरिबंड॥ २५॥

जिसने ताड़का और सुबाहुको मारकर शिवजीका धनुष तोड़ दिया और खर, दूषण और त्रिशिराका वध कर डाला, ऐसा प्रचण्ड बली भी कहीं मनुष्य हो सकता है?॥ २५॥

चौ०—जाहु भवन कुल कुसल बिचारी। सुनत जरा दीन्हिसि बहु गारी॥
गुरु जिमि मूढ़ करसि मम बोधा। कहु जग मोहि समान को जोधा॥ १॥

अतः अपने कुलकी कुशल विचारकर आप घर लौट जाइये। यह सुनकर रावण जल उठा और उसने बहुत-सी गालियाँ दीं (दुर्वचन कहे)। [कहा—] अरे मूर्ख! तू गुरुकी तरह, मुझे ज्ञान सिखाता है? बता तो संसारमें मेरे समान योद्धा कौन है?॥ १॥

तब मारीच हृदयँ अनुमाना। नवहि बिरोधें नहिं कल्याना॥
सस्त्री मर्मी प्रभु सठ धनी। बैद बंदि कबि भानस गुनी॥ २॥

तब मारीचने हृदयमें अनुमान किया कि शस्त्री (शस्त्रधारी), मर्मी (भेद जाननेवाला), समर्थ

स्वामी, मूर्ख, धनवान्, वैद्य, भाट, कवि और रसोइया—इन नौ व्यक्तियोंसे विरोध (वैर) करनेमें कल्याण (कुशल) नहीं होता ॥ २ ॥

उभय भाँति देखा निज मरना। तब ताकिसि रघुनायक सरना ॥
उतरु देत मोहि बधब अभागें। कस न मरौं रघुपति सर लागें ॥ ३ ॥

जब मारीचने दोनों प्रकारसे अपना मरण देखा, तब उसने श्रीरघुनाथजीकी शरण तकी (अर्थात् उनकी शरण जानेमें ही कल्याण समझा)। [सोचा कि] उत्तर देते ही (नहीं करते ही) यह अभागा मुझे मार डालेगा। फिर श्रीरघुनाथजीके बाण लगनेसे ही क्यों न मरूँ ॥ ३ ॥

अस जियँ जानि दसानन संगा। चला राम पद प्रेम अभंगा ॥
मन अति हरष जनाव न तेही। आजु देखिहउँ परम सनेही ॥ ४ ॥

हृदयमें ऐसा समझकर वह रावणके साथ चला। श्रीरामजीके चरणोंमें उसका अखण्ड प्रेम है। उसके मनमें इस बातका अत्यन्त हर्ष है कि आज मैं अपने परम स्नेही श्रीरामजीको देखूँगा; किंतु उसने यह हर्ष रावणको नहीं जनाया ॥ ४ ॥

छं०—निज परम प्रीतम देखि लोचन सुफल करि सुख पाइहौं।
श्रीसहित अनुज समेत कृपानिकेत पद मन लाइहौं ॥
निर्बान दायक क्रोध जा कर भगति अबसहि बसकरी।
निज पानि सर संधानि सो मोहि बधिहि सुखसागर हरी ॥

[वह मन-ही-मन सोचने लगा—] अपने परम प्रियतमको देखकर नेत्रोंको सफल करके सुख पाऊँगा। जानकीजीसहित और छोटे भाई लक्ष्मणजीसमेत कृपानिधान श्रीरामजीके चरणोंमें मन लगाऊँगा। जिनका क्रोध भी मोक्ष देनेवाला है, और जिनकी भक्ति उन अवश (किसीके वशमें न होनेवाले, स्वतन्त्र भगवान्) को भी वशमें करनेवाली है, अहा ! वे ही आनन्दके समुद्र श्रीहरि अपने हाथोंसे बाण सन्धानकर मेरा वध करेंगे।

दो०—मम पाछें धर धावत धरें सरासन बान।
फिरि फिरि प्रभुहि बिलोकिहउँ धन्य न मो सम आन ॥ २६ ॥

धनुष-बाण धारण किये मेरे पीछे-पीछे पृथ्वीपर [पकड़नेके लिये] दौड़ते हुए प्रभुको मैं फिर-फिरकर देखूँगा। मेरे समान धन्य दूसरा कोई नहीं है ॥ २६ ॥

चौ०—तेहि बन निकट दसानन गयऊ। तब मारीच कपटमृग भयऊ ॥
अति बिचित्र कछु बरनि न जाई। कनक देह मनि रचित बनाई ॥ १ ॥

जब रावण उस वनके (जिस वनमें श्रीरघुनाथजी रहते थे) निकट पहुँचा, तब मारीच कपटमृग बन गया ! वह अत्यन्त ही विचित्र था, कुछ वर्णन नहीं किया जा सकता। सोनेका शरीर मणियोंसे जड़कर बनाया था ॥ १ ॥

सीता परम रुचिर मृग देखा। अंग अंग सुमनोहर बेषा ॥
सुनहु देव रघुबीर कृपाला। एहि मृग कर अति सुंदर छाला ॥ २ ॥

सीताजीने उस परम सुन्दर हिरनको देखा, जिसके अंग-अंगकी छटा अत्यन्त मनोहर थी। [वे कहने लगीं—] हे देव ! हे कृपालु रघुवीर ! सुनिये। इस मृगकी छाल बहुत ही सुन्दर है ॥ २ ॥

सत्यसंध प्रभु बधि करि एही। आनहु चर्म कहति बैदेही॥
तब रघुपति जानत सब कारन। उठे हरषि सुर काजु सँवारन॥ ३॥

जानकीजीने कहा—हे सत्यप्रतिज्ञ प्रभो! इसको मारकर इसका चमड़ा ला दीजिये। तब श्रीरघुनाथजी, [मारीचके कपटमृग बननेका] सब कारण जानते हुए भी, देवताओंका कार्य बनानेके लिये हर्षित होकर उठे॥ ३॥

मृग बिलोकि कटि परिकर बाँधा। करतल चाप रुचिर सर साँधा॥
प्रभु लछिमनहि कहा समुझाई। फिरत बिपिन निसिचर बहु भाई॥ ४॥

हिरनको देखकर श्रीरामजीने कमरमें फेंटा बाँधा और हाथमें धनुष लेकर उसपर सुन्दर (दिव्य) बाण चढ़ाया। फिर प्रभुने लक्ष्मणजीको समझाकर कहा—हे भाई! वनमें बहुत-से राक्षस फिरते हैं॥ ४॥

सीता केरि करेहु रखवारी। बुधि बिबेक बल समय बिचारी॥
प्रभुहि बिलोकि चला मृग भाजी। धाए रामु सरासन साजी॥ ५॥

तुम बुद्धि और विवेकके द्वारा बल और समयका विचार करके सीताकी रखवाली करना। प्रभुको देखकर मृग भाग चला। श्रीरामचन्द्रजी भी धनुष चढ़ाकर उसके पीछे दौड़े॥ ५॥

निगम नेति सिव ध्यान न पावा। मायामृग पाछें सो धावा॥
कबहुँ निकट पुनि दूरि पराई। कबहुँक प्रगटइ कबहुँ छपाई॥ ६॥

वेद जिनके विषयमें 'नेति-नेति' कहकर रह जाते हैं और शिवजी भी जिन्हें ध्यानमें नहीं पाते (अर्थात् जो मन और वाणीसे नितान्त परे हैं), वे ही श्रीरामजी मायासे बने हुए मृगके पीछे दौड़ रहे हैं। वह कभी निकट आ जाता है और फिर दूर भाग जाता है। कभी तो प्रकट हो जाता है और कभी छिप जाता है॥ ६॥

प्रगटत दुरत करत छल भूरी। एहि बिधि प्रभुहि गयउ लै दूरी॥
तब तकि राम कठिन सर मारा। धरनि परेउ करि घोर पुकारा॥ ७॥

इस प्रकार प्रकट होता और छिपता हुआ तथा बहुतेरे छल करता हुआ वह प्रभुको दूर ले गया। तब श्रीरामचन्द्रजीने तककर (निशाना साधकर) कठोर बाण मारा, [जिसके लगते ही] वह घोर शब्द करके पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ७॥

लछिमन कर प्रथमहिं लै नामा। पाछें सुमिरेसि मन महुँ रामा॥
प्रान तजत प्रगटेसि निज देहा। सुमिरेसि रामु समेत सनेहा॥ ८॥

पहले लक्ष्मणजीका नाम लेकर उसने पीछे मनमें श्रीरामजीका स्मरण किया। प्राण त्याग करते समय उसने अपना (राक्षसी) शरीर प्रकट किया और प्रेमसहित श्रीरामजीका स्मरण किया॥ ८॥

अंतर प्रेम तासु पहिचाना। मुनि दुर्लभ गति दीन्हि सुजाना॥ ९॥

सुजान (सर्वज्ञ) श्रीरामजीने उसके हृदयके प्रेमको पहचानकर उसे वह गति (अपना परमपद) दी जो मुनियोंको भी दुर्लभ है॥ ९॥

दो०—बिपुल सुमन सुर बरषहिं गावहिं प्रभु गुन गाथ।
निज पद दीन्ह असुर कहुँ दीनबंधु रघुनाथ॥ २७॥

देवता बहुत-से फूल बरसा रहे हैं और प्रभुके गुणोंकी गाथाएँ (स्तुतियाँ) गा रहे हैं [कि] श्रीरघुनाथजी ऐसे दीनबन्धु हैं कि उन्होंने असुरको भी अपना परम पद दे दिया ॥ २७ ॥

चौ०—खल बधि तुरत फिरे रघुबीरा। सोह चाप कर कटि तूनीरा ॥
आरत गिरा सुनी जब सीता। कह लछिमन सन परम सभीता ॥ १ ॥

दुष्ट मारीचको मारकर श्रीरघुवीर तुरंत लौट पड़े। हाथमें धनुष और कमरमें तरकस शोभा दे रहा है। इधर जब सीताजीने दुःखभरी वाणी (मरते समय मारीचकी 'हा लक्ष्मण' की आवाज) सुनी तो वे बहुत ही भयभीत होकर लक्ष्मणजीसे कहने लगीं ॥ १ ॥

जाहु बेगि संकट अति भ्राता। लछिमन बिहसि कहा सुनु माता ॥
भृकुटि बिलास सृष्टि लय होई। सपनेहुँ संकट परइ कि सोई ॥ २ ॥

तुम शीघ्र जाओ, तुम्हारे भाई बड़े संकटमें हैं। लक्ष्मणजीने हँसकर कहा—हे माता ! सुनो, जिनके भ्रुकुटिविलास (भौंके इशारे) मात्रसे सारी सृष्टिका लय (प्रलय) हो जाता है, वे श्रीरामजी क्या कभी स्वप्नमें भी संकटमें पड़ सकते हैं ? ॥ २ ॥

मरम बचन जब सीता बोला। हरि प्रेरित लछिमन मन डोला ॥
बन दिसि देव सौंपि सब काहू। चले जहाँ रावन ससि राहू ॥ ३ ॥

इसपर जब सीताजी कुछ मर्म-वचन (हृदयमें चुभनेवाले वचन) कहने लगीं, तब भगवान्‌की प्रेरणासे लक्ष्मणजीका मन भी चञ्चल हो उठा। वे श्रीसीताजीको वन और दिशाओंके देवताओंको सौंपकर वहाँ चले, जहाँ रावणरूपी चन्द्रमाके लिये राहुरूप श्रीरामजी थे ॥ ३ ॥

सून बीच दसकंधर देखा। आवा निकट जती कें बेषा ॥
जाकें डर सुर असुर डेराहीं। निसि न नीद दिन अन्न न खाहीं ॥ ४ ॥

रावण सूना मौका देखकर यति (संन्यासी) के वेषमें श्रीसीताजीके समीप आया। जिसके डरसे देवता और दैत्यतक इतना डरते हैं कि रातको नींद नहीं आती और दिनमें [भरपेट] अन्न नहीं खाते— ॥ ४ ॥

सो दससीस स्वान की नाईं। इत उत चितइ चला भड़िहाईं ॥
इमि कुपंथ पग देत खगेसा। रह न तेज तन बुधि बल लेसा ॥ ५ ॥

वही दस सिरवाला रावण कुत्तेकी तरह इधर-उधर ताकता हुआ भड़िहाई* (चोरी) के लिये चला। [काकभुशुण्डिजी कहते हैं—] हे गरुड़जी ! इस प्रकार कुमार्गपर पैर रखते ही शरीरमें तेज तथा बुद्धि एवं बलका लेश भी नहीं रह जाता ॥ ५ ॥

*सूना पाकर कुत्ता चुपके-से बर्तन-भाँड़ोंमें मुँह डालकर कुछ चुरा ले जाता है। उसे 'भड़िहाई' कहते हैं।

नाना बिधि करि कथा सुहाई। राजनीति भय प्रीति देखाई ॥
कह सीता सुनु जती गोसाईं। बोलेहु बचन दुष्ट की नाईं ॥ ६ ॥

रावणने अनेकों प्रकारकी सुहावनी कथाएँ रचकर सीताजीको राजनीति, भय और प्रेम दिखलाया। सीताजीने कहा—हे यति गोसाईं ! सुनो, तुमने तो दुष्टकी तरह वचन कहे ॥ ६ ॥

तब रावन निज रूप देखावा। भई सभय जब नाम सुनावा ॥
कह सीता धरि धीरजु गाढ़ा। आइ गयउ प्रभु रहु खल ठाढ़ा ॥ ७ ॥

तब रावणने अपना असली रूप दिखलाया और जब नाम सुनाया तब तो सीताजी भयभीत हो गयीं। उन्होंने गहरा धीरज धरकर कहा—'अरे दुष्ट ! खड़ा तो रह, प्रभु आ गये' ॥ ७ ॥

जिमि हरिबधुहि छुद्र ससु चाहा। भएसि कालबस निसिचर नाहा॥
सुनत बचन दससीस रिसाना। मन महुँ चरन बंदि सुख माना॥ ८॥

जैसे सिंहकी स्त्रीको तुच्छ खरगोश चाहे, वैसे ही अरे राक्षसराज ! तू [मेरी चाह करके] कालके वश हुआ है। ये वचन सुनते ही रावणको क्रोध आ गया, परंतु मनमें उसने सीताजीके चरणोंकी वन्दना करके सुख माना ॥ ८ ॥

दो०—क्रोधवंत तब रावन लीन्हिसि रथ बैठाइ।
चला गगनपथ आतुर भयँ रथ हाँकि न जाइ॥ २८॥

फिर क्रोधमें भरकर रावणने सीताजीको रथपर बैठा लिया और वह बड़ी उतावलीके साथ आकाशमार्गसे चला; किंतु डरके मारे उससे रथ हाँका नहीं जाता था ॥ २८ ॥

चौ०—हा जग एक बीर रघुराया। केहिं अपराध बिसारेहु दाया॥
आरति हरन सरन सुखदायक। हा रघुकुल सरोज दिननायक॥ १॥

[सीताजी विलाप कर रही थीं—] हा जगत्‌के अद्वितीय वीर श्रीरघुनाथजी ! आपने किस अपराधसे मुझपर दया भुला दी। हे दुःखोंके हरनेवाले, हे शरणागतको सुख देनेवाले, हा रघुकुलरूपी कमलके सूर्य ! ॥ १ ॥

हा लछिमन तुम्हार नहिं दोसा। सो फलु पायउँ कीन्हेउँ रोसा॥
बिबिध बिलाप करति बैदेही। भूरि कृपा प्रभु दूरि सनेही॥ २॥

हा लक्ष्मण ! तुम्हारा दोष नहीं है। मैंने क्रोध किया, उसका फल पाया। श्रीजानकीजी बहुत प्रकारसे विलाप कर रही हैं—[हाय !] प्रभुकी कृपा तो बहुत है, परंतु वे स्नेही प्रभु बहुत दूर रह गये हैं ॥ २ ॥

बिपति मोरि को प्रभुहि सुनावा। पुरोडास चह रासभ खावा॥
सीता कै बिलाप सुनि भारी। भए चराचर जीव दुखारी॥ ३॥

प्रभुको मेरी यह विपत्ति कौन सुनावे ? यज्ञके अन्नको गदहा खाना चाहता है। सीताजीका भारी विलाप सुनकर जड़-चेतन सभी जीव दुखी हो गये ॥ ३ ॥

गीधराज सुनि आरत बानी। रघुकुलतिलक नारि पहिचानी॥
अधम निसाचर लीन्हें जाई। जिमि मलेछ बस कपिला गाई॥ ४॥

गृध्रराज जटायुने सीताजीकी दुःखभरी वाणी सुनकर पहचान लिया कि ये रघुकुलतिलक श्रीरामचन्द्रजीकी पत्नी हैं। [उसने देखा कि] नीच राक्षस इनको [बुरी तरह] लिये जा रहा है, जैसे कपिला गाय म्लेच्छके पाले पड़ गयी हो ॥ ४ ॥

सीते पुत्रि करसि जनि त्रासा। करिहउँ जातुधान कर नासा॥
धावा क्रोधवंत खग कैसें। छूटइ पबि परबत कहुँ जैसें॥ ५॥

[वह बोला—] हे सीते पुत्री ! भय मत कर। मैं इस राक्षसका नाश करूँगा। [यह कहकर] वह पक्षी क्रोधमें भरकर कैसे दौड़ा, जैसे पर्वतकी ओर वज्र छूटता हो ॥ ५ ॥

रे रे दुष्ट ठाढ़ किन होही। निर्भय चलेसि न जानेहि मोही॥
आवत देखि कृतांत समाना। फिरि दसकंधर कर अनुमाना॥ ६॥

[उसने ललकारकर कहा—] रे रे दुष्ट ! खड़ा क्यों नहीं होता ? निडर होकर चल दिया ! मुझे तूने नहीं जाना ? उसको यमराजके समान आता हुआ देखकर रावण घूमकर मनमें अनुमान करने लगा— ॥ ६ ॥

की मैनाक कि खगपति होई। मम बल जान सहित पति सोई॥
जाना जरठ जटायू एहा। मम कर तीरथ छाँड़िहि देहा॥ ७॥

यह या तो मैनाक पर्वत है या पक्षियोंका स्वामी गरुड़। पर वह (गरुड़) तो अपने स्वामी विष्णुसहित मेरे बलको जानता है ! [कुछ पास आनेपर] रावणने उसे पहचान लिया [और बोला—] यह तो बूढ़ा जटायु है। यह मेरे हाथरूपी तीर्थमें शरीर छोड़ेगा ॥ ७ ॥

सुनत गीध क्रोधातुर धावा। कह सुनु रावन मोर सिखावा॥
तजि जानकिहि कुसल गृह जाहू। नाहिं त अस होइहि बहुबाहू॥ ८॥

यह सुनते ही गीध क्रोधमें भरकर बड़े वेगसे दौड़ा और बोला—रावण ! मेरी सिखावन सुन। जानकीजी-को छोड़कर कुशलपूर्वक अपने घर चला जा। नहीं तो हे बहुत भुजाओंवाले ! ऐसा होगा कि— ॥ ८ ॥

राम रोष पावक अति घोरा। होइहि सकल सलभ कुल तोरा॥
उतरु न देत दसानन जोधा। तबहिं गीध धावा करि क्रोधा॥ ९॥

श्रीरामजीके क्रोधरूपी अत्यन्त भयानक अग्निमें तेरा सारा वंश पतिंगा [होकर भस्म] हो जायगा। योद्धा रावण कुछ उत्तर नहीं देता। तब गीध क्रोध करके दौड़ा ॥ ९ ॥

धरि कच बिरथ कीन्ह महि गिरा। सीतहि राखि गीध पुनि फिरा॥
चोचन्ह मारि बिदारेसि देही। दंड एक भइ मुरुछा तेही॥ १०॥

उसने [रावणके] बाल पकड़कर उसे रथके नीचे उतार लिया, रावण पृथ्वीपर गिर पड़ा। गीध सीताजीको एक ओर बैठाकर फिर लौटा और चोंचोंसे मार-मारकर रावणके शरीरको विदीर्ण कर डाला। इससे उसे एक घड़ीके लिये मूर्च्छा हो गयी ॥ १० ॥

तब सक्रोध निसिचर खिसिआना। काढ़ेसि परम कराल कृपाना॥
काटेसि पंख परा खग धरनी। सुमिरि राम करि अदभुत करनी॥ ११॥

तब खिसियाये हुए रावणने क्रोधयुक्त होकर अत्यन्त भयानक कटार निकाली और उससे जटायुके पंख काट डाले। पक्षी (जटायु) श्रीरामजीकी अद्भुत लीलाका स्मरण करके पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ११ ॥

सीतहि जान चढ़ाइ बहोरी। चला उताइल त्रास न थोरी॥
करति बिलाप जाति नभ सीता। ब्याध बिबस जनु मृगी सभीता॥ १२॥

सीताजीको फिर रथपर चढ़ाकर रावण बड़ी उतावलीके साथ चला। उसे भय कम न था। सीताजी आकाशमें विलाप करती हुई जा रही हैं। मानो व्याधेके वशमें पड़ी हुई (जालमें फँसी हुई) कोई भयभीत हिरनी हो ! ॥ १२ ॥

गिरि पर बैठे कपिन्ह निहारी। कहि हरि नाम दीन्ह पट डारी॥
एहि बिधि सीतहि सो लै गयऊ। बन असोक महँ राखत भयऊ॥ १३॥

पर्वतपर बैठे हुए बंदरोंको देखकर सीताजीने हरिनाम लेकर वस्त्र डाल दिया। इस प्रकार वह सीताजीको ले गया और उन्हें अशोकवनमें जा रक्खा ॥ १३ ॥

दो०—हारि परा खल बहु बिधि भय अरु प्रीति देखाइ।
तब असोक पादप तर राखिसि जतन कराइ ॥ २९ क ॥

सीताजीको बहुत प्रकारसे भय और प्रीति दिखलाकर जब वह दुष्ट हार गया, तब उन्हें यत्न कराके (सब व्यवस्था ठीक कराके) अशोक वृक्षके नीचे रख दिया ॥ २९ (क) ॥

नवाह्नपारायण, छठा विश्राम

जेहि बिधि कपट कुरंग सँग धाइ चले श्रीराम।
सो छबि सीता राखि उर रटति रहति हरिनाम ॥ २९ ख ॥

जिस प्रकार कपटमृगके साथ श्रीरामजी दौड़ चले थे, उसी छविको हृदयमें रखकर वे हरिनाम (रामनाम) रटती रहती हैं ॥ २९ (ख) ॥

चौ०—रघुपति अनुजहि आवत देखी। बाहिज चिंता कीन्हि बिसेषी ॥
जनकसुता परिहरिहु अकेली। आयहु तात बचन मम पेली ॥ १ ॥

[इधर] श्रीरघुनाथजीने छोटे भाई लक्ष्मणजीको आते देखकर बाह्यरूपमें बहुत चिन्ता की [और कहा—]हे भाई ! तुमने जानकीको अकेली छोड़ दिया और मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन कर यहाँ चले आये ! ॥ १ ॥

निसिचर निकर फिरहिं बन माहीं। मम मन सीता आश्रम नाहीं ॥
गहि पद कमल अनुज कर जोरी। कहेउ नाथ कछु मोहि न खोरी ॥ २ ॥

राक्षसोंके झुंड वनमें फिरते रहते हैं। मेरे मनमें ऐसा आता है कि सीता आश्रममें नहीं है। छोटे भाई लक्ष्मणजीने श्रीरामजीके चरणकमलोंको पकड़कर हाथ जोड़कर कहा—हे नाथ ! मेरा कुछ भी दोष नहीं है ॥ २ ॥

अनुज समेत गए प्रभु तहवाँ। गोदावरि तट आश्रम जहवाँ ॥
आश्रम देखि जानकी हीना। भए बिकल जस प्राकृत दीना ॥ ३ ॥

लक्ष्मणजीसहित प्रभु श्रीरामजी वहाँ गये, जहाँ गोदावरीके तटपर उनका आश्रम था। आश्रमको जानकीजीसे रहित देखकर श्रीरामजी साधारण मनुष्यकी भाँति व्याकुल और दीन (दुखी) हो गये ॥ ३ ॥

हा गुन खानि जानकी सीता। रूप सील ब्रत नेम पुनीता ॥
लछिमन समुझाए बहु भाँती। पूछत चले लता तरु पाँती ॥ ४ ॥

[वे विलाप करने लगे—] हा गुणोंकी खान जानकी ! हा रूप, शील, व्रत और नियमोंमें पवित्र सीते ! लक्ष्मणजीने बहुत प्रकारसे समझाया। तब श्रीरामजी लताओं और वृक्षोंकी पंक्तियोंसे पूछते हुए चले ॥ ४ ॥

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृगनैनी ॥
खंजन सुक कपोत मृग मीना। मधुप निकर कोकिला प्रबीना ॥ ५ ॥

हे पक्षियो ! हे पशुओ ! हे भौंरोंकी पंक्तियो ! तुमने कहीं मृगनयनी सीताको देखा है ? खंजन, तोता, कबूतर, हिरन, मछली, भौंरोंका समूह, प्रवीण कोयल, ॥ ५ ॥

कुंद कली दाड़िम दामिनी। कमल सरद ससि अहिभामिनी॥
बरुन पास मनोज धनु हंसा। गज केहरि निज सुनत प्रसंसा॥ ६॥

कुन्दकली, अनार, बिजली, कमल, शरद्का चन्द्रमा और नागिनी, वरुणका पाश, कामदेवका धनुष, हंस, गज और सिंह—ये सब आज अपनी प्रशंसा सुन रहे हैं॥ ६॥

श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं। नेकु न संक सकुच मन माहीं॥
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू। हरषे सकल पाइ जनु राजू॥ ७॥

बेल, सुवर्ण और केला हर्षित हो रहे हैं। इनके मनमें जरा भी शंका और संकोच नहीं है। हे जानकी! सुनो, तुम्हारे बिना ये सब आज ऐसे हर्षित हैं, मानो राज पा गये हों। (अर्थात् तुम्हारे अङ्गोंके सामने ये सब तुच्छ, अपमानित और लज्जित थे। आज तुम्हें न देखकर ये अपनी शोभाके अभिमानमें फूल रहे हैं)॥ ७॥

किमि सहि जात अनख तोहि पाहीं। प्रिया बेगि प्रगटसि कस नाहीं॥
एहि बिधि खोजत बिलपत स्वामी। मनहुँ महा बिरही अति कामी॥ ८॥

तुमसे यह अनख (स्पर्धा) कैसे सही जाती है? हे प्रिये! तुम शीघ्र ही प्रकट क्यों नहीं होती? इस प्रकार [अनन्त ब्रह्माण्डोंके अथवा महामहिमामयी स्वरूपाशक्ति श्रीसीताजीके] स्वामी श्रीरामजी सीताजीको खोजते हुए [इस प्रकार] विलाप करते हैं, मानो कोई महाविरही और अत्यन्त कामी पुरुष हो॥ ८॥

पूरनकाम राम सुख रासी। मनुजचरित कर अज अबिनासी॥
आगें परा गीधपति देखा। सुमिरत राम चरन जिन्ह रेखा॥ ९॥

पूर्णकाम, आनन्दकी राशि, अजन्मा और अविनाशी श्रीरामजी मनुष्योंके-से चरित्र कर रहे हैं। आगे [जानेपर] उन्होंने गृध्रपति जटायुको पड़ा देखा। वह श्रीरामजीके चरणोंका स्मरण कर रहा था, जिनमें [ध्वजा, कुलिश आदिकी] रेखाएँ (चिह्न) हैं॥ ९॥

दो०—कर सरोज सिर परसेउ कृपासिंधु रघुबीर।
निरखि राम छबि धाम मुख बिगत भई सब पीर॥ ३०॥

कृपासागर श्रीरघुवीरने अपने करकमलसे उसके सिरका स्पर्श किया (उसके सिरपर कर-कमल फेर दिया)। शोभाधाम श्रीरामजीका [परम सुन्दर] मुख देखकर उसकी सब पीड़ा जाती रही॥ ३०॥

चौ०—तब कह गीध बचन धरि धीरा। सुनहु राम भंजन भव भीरा॥
नाथ दसानन यह गति कीन्ही। तेहिं खल जनकसुता हरि लीन्ही॥ १॥

तब धीरज धरकर गीधने यह वचन कहा—हे भव (जन्म-मृत्यु) के भयका नाश करनेवाले श्रीरामजी! सुनिये। हे नाथ! रावणने मेरी यह दशा की है। उसी दुष्टने जानकीजीको हर लिया है॥ १॥

लै दच्छिन दिसि गयउ गोसाईं। बिलपति अति कुररी की नाईं॥
दरस लागि प्रभु राखेउँ प्राना। चलन चहत अब कृपानिधाना॥ २॥

हे गोसाईं! वह उन्हें लेकर दक्षिण दिशाको गया है। सीताजी कुररी (कुर्ज) की तरह अत्यन्त विलाप कर रही थीं। हे प्रभो! मैंने आपके दर्शनोंके लिये ही प्राण रोक रक्खे थे। हे कृपानिधान!

अब ये चलना ही चाहते हैं ॥ २ ॥

राम कहा तनु राखहु ताता। मुख मुसुकाइ कही तेहि बाता ॥
जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमउ मुकुत होइ श्रुति गावा ॥ ३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने कहा—हे तात ! शरीरको बनाये रखिये। तब उसने मुसकराते हुए मुँहसे यह बात कही—मरते समय जिनका नाम मुखमें आ जानेसे अधम (महान् पापी) भी मुक्त हो जाता है, ऐसा वेद गाते हैं— ॥ ३ ॥

सो मम लोचन गोचर आगें। राखौं देह नाथ केहि खाँगें ॥
जल भरि नयन कहहिं रघुराई। तात कर्म निज तें गति पाई ॥ ४ ॥

वही (आप) मेरे नेत्रोंके विषय होकर सामने खड़े हैं। हे नाथ ! अब मैं किस कमी [की पूर्ति] के लिये देहको रक्खूँ ? नेत्रोंमें जल भरकर श्रीरघुनाथजी कहने लगे—हे तात ! आपने अपने श्रेष्ठ कर्मोंसे [दुर्लभ] गति पायी है ॥ ४ ॥

परहित बस जिन्ह के मन माहीं। तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥
तनु तजि तात जाहु मम धामा। देउँ काह तुम्ह पूरनकामा ॥ ५ ॥

जिनके मनमें दूसरेका हित बसता है (समाया रहता है), उनके लिये जगत्‌में कुछ भी (कोई भी गति) दुर्लभ नहीं है। हे तात ! शरीर छोड़कर आप मेरे परम धाममें जाइये। मैं आपको क्या दूँ ? आप तो पूर्णकाम हैं (सब कुछ पा चुके हैं) ॥ ५ ॥

दो०—सीता हरन तात जनि कहहु पिता सन जाइ।
जौं मैं राम त कुल सहित कहिहि दसानन आइ ॥ ३१ ॥

हे तात ! सीताहरणकी बात आप जाकर पिताजीसे न कहियेगा। यदि मैं राम हूँ तो दशमुख रावण कुटुम्बसहित वहाँ आकर स्वयं ही कहेगा ॥ ३१ ॥

चौ०—गीध देह तजि धरि हरि रूपा। भूषन बहु पट पीत अनूपा ॥
स्याम गात बिसाल भुज चारी। अस्तुति करत नयन भरि बारी ॥ १ ॥

जटायुने गीधकी देह त्यागकर हरिका रूप धारण किया और बहुत-से अनुपम (दिव्य) आभूषण और [दिव्य] पीताम्बर पहन लिये। श्याम शरीर है, विशाल चार भुजाएँ हैं और नेत्रोंमें [प्रेम तथा आनन्दके आँसुओंका] जल भरकर वह स्तुति कर रहा है— ॥ १ ॥

छं०—जय राम रूप अनूप निर्गुन सगुन गुन प्रेरक सही।
दससीस बाहु प्रचंड खंडन चंड सर मंडन मही ॥
पाथोद गात सरोज मुख राजीव आयत लोचनं।
नित नौमि रामु कृपाल बाहु बिसाल भव भय मोचनं ॥ १ ॥

हे रामजी ! आपकी जय हो। आपका रूप अनुपम है, आप निर्गुण हैं, सगुण हैं और सत्य ही गुणोंके (मायाके) प्रेरक हैं। दस सिरवाले रावणकी प्रचण्ड भुजाओंको खण्ड-खण्ड करनेके लिये प्रचण्ड बाण धारण करनेवाले, पृथ्वीको सुशोभित करनेवाले, जलयुक्त मेघके समान श्याम शरीरवाले, कमलके समान मुख और [लाल] कमलके समान विशाल नेत्रोंवाले, विशाल भुजाओंवाले और भव-भयसे छुड़ानेवाले कृपालु श्रीरामजीको मैं नित्य नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥

बलमप्रमेयमनादिमजमव्यक्तमेकमगोचरं ।
गोबिंद गोपर द्वंद्वहर बिग्यानघन धरनीधरं ॥
जे राम मंत्र जपंत संत अनंत जन मन रंजनं ।
नित नौमि राम अकाम प्रिय कामादि खल दल गंजनं ॥ २ ॥

आप अपरिमित बलवाले हैं, अनादि, अजन्मा, अव्यक्त (निराकार), एक, अगोचर (अलक्ष्य), गोविन्द (वेदवाक्योंद्वारा जाननेयोग्य), इन्द्रियोंसे अतीत, [जन्म-मरण, सुख-दुःख, हर्ष-शोकादि] द्वन्द्वोंको हरनेवाले, विज्ञानकी घनमूर्ति और पृथ्वीके आधार हैं तथा जो संत राम-मन्त्रको जपते हैं, उन अनन्त सेवकोंके मनको आनन्द देनेवाले हैं। उन निष्कामप्रिय (निष्कामजनोंके प्रेमी अथवा उन्हें प्रिय) तथा काम आदि दुष्टों (दुष्ट-वृत्तियों) के दलका दलन करनेवाले श्रीरामजीको मैं नित्य नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥

जेहि श्रुति निरंजन ब्रह्म ब्यापक बिरज अज कहि गावहीं ।
करि ध्यान ग्यान बिराग जोग अनेक मुनि जेहि पावहीं ॥
सो प्रगट करुना कंद सोभा बृंद अग जग मोहई ।
मम हृदय पंकज भृंग अंग अनंग बहु छबि सोहई ॥ ३ ॥

जिनको श्रुतियाँ निरञ्जन (मायासे परे), ब्रह्म, व्यापक, निर्विकार और जन्मरहित कहकर गान करती हैं। मुनि जिन्हें ध्यान, ज्ञान, वैराग्य और योग आदि अनेक साधन करके पाते हैं। वे ही करुणाकन्द, शोभाके समूह [स्वयं श्रीभगवान्] प्रकट होकर जड़-चेतन समस्त जगत्‌को मोहित कर रहे हैं। मेरे हृदय-कमलके भ्रमररूप उनके अङ्ग-अङ्गमें बहुत-से कामदेवोंकी छबि शोभा पा रही है ॥ ३ ॥

जो अगम सुगम सुभाव निर्मल असम सम सीतल सदा ।
पस्यंति जं जोगी जतन करि करत मन गो बस सदा ॥
सो राम रमा निवास संतत दास बस त्रिभुवन धनी ।
मम उर बसउ सो समन संसृति जासु कीरति पावनी ॥ ४ ॥

जो अगम और सुगम हैं, निर्मलस्वभाव हैं, विषम और सम हैं और सदा शीतल (शान्त) हैं। मन और इन्द्रियोंको सदा वशमें करते हुए योगी बहुत साधन करनेपर जिन्हें देख पाते हैं। वे तीनों लोकोंके स्वामी, रमानिवास श्रीरामजी निरन्तर अपने दासोंके वशमें रहते हैं। वे ही मेरे हृदयमें निवास करें, जिनकी पवित्र कीर्ति आवागमनको मिटानेवाली है ॥ ४ ॥

दो०—अबिरल भगति मागि बर गीध गयउ हरिधाम ।
तेहि की क्रिया जथोचित निज कर कीन्ही राम ॥ ३२ ॥

अखण्ड भक्तिका वर माँगकर गृध्रराज जटायु श्रीहरिके परमधामको चला गया। श्रीरामचन्द्रजीने उसकी [दाहकर्म आदि सारी] क्रियाएँ यथायोग्य अपने हाथोंसे कीं ॥ ३२ ॥

चौ०—कोमल चित अति दीनदयाला । कारन बिनु रघुनाथ कृपाला ॥
गीध अधम खग आमिष भोगी । गति दीन्ही जो जाचत जोगी ॥ १ ॥

श्रीरघुनाथजी अत्यन्त कोमल चित्तवाले, दीनदयालु और बिना ही कारण कृपालु हैं। गीध [पक्षियोंमें भी] अधम पक्षी और मांसाहारी था, उसको भी वह दुर्लभ गति दी, जिसे योगीजन

माँगते रहते हैं ॥ १ ॥

सुनहु उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं बिषय अनुरागी ॥
पुनि सीतहि खोजत द्वौ भाई। चले बिलोकत बन बहुताई ॥ २ ॥

[शिवजी कहते हैं—] हे पार्वती ! सुनो, वे लोग अभागे हैं जो भगवान्‌को छोड़कर विषयोंसे अनुराग करते हैं। फिर दोनों भाई सीताजीको खोजते हुए आगे चले। वे वनकी सघनता देखते जाते हैं ॥ २ ॥

संकुल लता बिटप घन कानन। बहु खग मृग तहँ गज पंचानन ॥
आवत पंथ कबंध निपाता। तेहिं सब कही साप कै बाता ॥ ३ ॥

वह सघन वन लताओं और वृक्षोंसे भरा है। उसमें बहुत-से पक्षी, मृग, हाथी और सिंह रहते हैं। श्रीरामजीने रास्तेमें आते हुए कबंध राक्षसको मार डाला। उसने अपने शापकी सारी बात कही ॥ ३ ॥

दुरबासा मोहि दीन्ही सापा। प्रभु पद पेखि मिटा सो पापा ॥
सुनु गंधर्ब कहउँ मैं तोही। मोहि न सोहाइ ब्रह्मकुल द्रोही ॥ ४ ॥

[वह बोला—] दुर्वासाजीने मुझे शाप दिया था। अब प्रभुके चरणोंको देखनेसे वह पाप मिट गया। [श्रीरामजीने कहा—] हे गन्धर्व ! सुनो, मैं तुम्हें कहता हूँ, ब्राह्मणकुलसे द्रोह करनेवाला मुझे नहीं सुहाता ॥ ४ ॥

दो०—मन क्रम बचन कपट तजि जो कर भूसुर सेव।
मोहि समेत बिरंचि सिव बस ताकें सब देव ॥ ३३ ॥

मन, वचन और कर्मसे कपट छोड़कर जो भूदेव ब्राह्मणोंकी सेवा करता है, मुझसमेत ब्रह्मा, शिव आदि सब देवता उसके वशमें हो जाते हैं ॥ ३३ ॥

चौ०—सापत ताड़त परुष कहंता। बिप्र पूज्य अस गावहिं संता ॥
पूजिअ बिप्र सील गुन हीना। सूद्र न गुन गन ग्यान प्रबीना ॥ १ ॥

शाप देता हुआ, मारता हुआ और कठोर वचन कहता हुआ भी ब्राह्मण पूजनीय है, ऐसा संत कहते हैं। शील और गुणसे हीन भी ब्राह्मण पूजनीय है। और गुणगणोंसे युक्त और ज्ञानमें निपुण भी शूद्र पूजनीय नहीं है ॥ १ ॥

कहि निज धर्म ताहि समुझावा। निज पद प्रीति देखि मन भावा ॥
रघुपति चरन कमल सिरु नाई। गयउ गगन आपनि गति पाई ॥ २ ॥

श्रीरामजीने अपना धर्म (भागवतधर्म) कहकर उसे समझाया। अपने चरणोंमें प्रेम देखकर वह उनके मनको भाया। तदनन्तर श्रीरघुनाथजीके चरणकमलोंमें सिर नवाकर वह अपनी गति (गन्धर्वका स्वरूप) पाकर आकाशमें चला गया ॥ २ ॥

ताहि देइ गति राम उदारा। सबरी कें आश्रम पगु धारा ॥
सबरी देखि राम गृहँ आए। मुनि के बचन समुझि जियँ भाए ॥ ३ ॥

उदार श्रीरामजी उसे गति देकर शबरीजीके आश्रममें पधारे। शबरीजीने श्रीरामचन्द्रजीको घरमें आये देखा, तब मुनि मतङ्गजीके वचनोंको याद करके उनका मन प्रसन्न हो गया ॥ ३ ॥

सरसिज लोचन बाहु बिसाला। जटा मुकुट सिर उर बनमाला॥
स्याम गौर सुंदर दोउ भाई। सबरी परी चरन लपटाई॥ ४॥

कमल-सदृश नेत्र और विशाल भुजावाले, सिरपर जटाओंका मुकुट और हृदयपर वनमाला धारण किये हुए सुन्दर साँवले और गोरे दोनों भाइयोंके चरणोंमें शबरीजी लिपट पड़ीं॥ ४॥

प्रेम मगन मुख बचन न आवा। पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा॥
सादर जल लै चरन पखारे। पुनि सुंदर आसन बैठारे॥ ५॥

वे प्रेममें मग्न हो गयीं, मुखसे वचन नहीं निकलता। बार-बार चरण-कमलोंमें सिर नवा रही हैं। फिर उन्होंने जल लेकर आदरपूर्वक दोनों भाइयोंके चरण धोये और फिर उन्हें सुन्दर आसनोंपर बैठाया॥ ५॥

दो०—कंद मूल फल सुरस अति दिए राम कहुँ आनि।
प्रेम सहित प्रभु खाए बारंबार बखानि॥ ३४॥

उन्होंने अत्यन्त रसीले और स्वादिष्ट कन्द, मूल और फल लाकर श्रीरामजीको दिये। प्रभुने बार-बार प्रशंसा करके उन्हें प्रेमसहित खाया॥ ३४॥

चौ०—पानि जोरि आगें भइ ठाढ़ी। प्रभुहि बिलोकि प्रीति अति बाढ़ी॥
केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी। अधम जाति मैं जड़मति भारी॥ १॥

फिर वे हाथ जोड़कर आगे खड़ी हो गयीं। प्रभुको देखकर उनका प्रेम अत्यन्त बढ़ गया। [उन्होंने कहा—] मैं किस प्रकार आपकी स्तुति करूँ? मैं नीच जातिकी और अत्यन्त मूढ़बुद्धि हूँ॥ १॥

अधम ते अधम अधम अति नारी। तिन्ह महँ मैं मतिमंद अघारी॥
कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानउँ एक भगति कर नाता॥ २॥

जो अधमसे भी अधम हैं, स्त्रियाँ उनमें भी अत्यन्त अधम हैं; और उनमें भी हे पापनाशन! मैं मन्दबुद्धि हूँ। श्रीरघुनाथजीने कहा—हे भामिनि! मेरी बात सुन। मैं तो केवल एक भक्तिहीका सम्बन्ध मानता हूँ॥ २॥

जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई॥
भगति हीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिअ जैसा॥ ३॥

जाति, पाँति, कुल, धर्म, बड़ाई, धन, बल, कुटुम्ब, गुण और चतुरता—इन सबके होनेपर भी भक्तिसे रहित मनुष्य कैसा लगता है, जैसे जलहीन बादल [शोभाहीन] दिखायी पड़ता है॥ ३॥

नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं। सावधान सुनु धरु मन माहीं॥
प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥ ४॥

मैं तुझसे अब अपनी नवधा भक्ति कहता हूँ। तू सावधान होकर सुन और मनमें धारण कर। पहली भक्ति है संतोंका सत्संग। दूसरी भक्ति है मेरे कथा-प्रसंगमें प्रेम॥ ४॥

दो०—गुर पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान॥ ३५॥

तीसरी भक्ति है अभिमानरहित होकर गुरुके चरण-कमलोंकी सेवा और चौथी भक्ति यह है कि कपट छोड़कर मेरे गुणसमूहोंका गान करे॥ ३५॥

चौ०—मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा॥
छठ दम सील बिरति बहु करमा। निरत निरंतर सज्जन धरमा॥ १॥

मेरे (राम) मन्त्रका जाप और मुझमें दृढ़ विश्वास—यह पाँचवीं भक्ति है, जो वेदोंमें प्रसिद्ध है। छठी भक्ति है इन्द्रियोंका निग्रह, शील (अच्छा स्वभाव या चरित्र), बहुत कार्योंसे वैराग्य और निरन्तर संत पुरुषोंके धर्म (आचरण) में लगे रहना॥ १॥

सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा॥
आठवँ जथालाभ संतोषा। सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा॥ २॥

सातवीं भक्ति है जगत्‌भरको समभावसे मुझमें ओतप्रोत (राममय) देखना और संतोंको मुझसे भी अधिक करके मानना। आठवीं भक्ति है जो कुछ मिल जाय, उसीमें संतोष करना और स्वप्नमें भी पराये दोषोंको न देखना॥ २॥

नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हियँ हरष न दीना॥
नव महुँ एकउ जिन्ह कें होई। नारि पुरुष सचराचर कोई॥ ३॥

नवीं भक्ति है सरलता और सबके साथ कपटरहित बर्ताव करना, हृदयमें मेरा भरोसा रखना और किसी भी अवस्थामें हर्ष और दैन्य (विषाद) का न होना। इन नवोंमेंसे जिनके एक भी होती है, वह स्त्री-पुरुष, जड़-चेतन कोई भी हो—॥ ३॥

सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरें। सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरें॥
जोगि बृंद दुरलभ गति जोई। तो कहुँ आजु सुलभ भइ सोई॥ ४॥

हे भामिनि! मुझे वही अत्यन्त प्रिय है। फिर तुझमें तो सभी प्रकारकी भक्ति दृढ़ है। अतएव जो गति योगियोंको भी दुर्लभ है, वही आज तेरे लिये सुलभ हो गयी है॥ ४॥

मम दरसन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा॥
जनकसुता कइ सुधि भामिनी। जानहि कहु करिबरगामिनी॥ ५॥

मेरे दर्शनका परम अनुपम फल यह है कि जीव अपने सहज स्वरूपको प्राप्त हो जाता है। हे भामिनि! अब यदि तू गजगामिनी जानकीकी कुछ खबर जानती हो तो बता॥ ५॥

पंपा सरहि जाहु रघुराई। तहँ होइहि सुग्रीव मिताई॥
सो सब कहिहि देव रघुबीरा। जानतहूँ पूछहु मतिधीरा॥ ६॥

[शबरीने कहा—] हे रघुनाथजी! आप पंपा नामक सरोवरको जाइये। वहाँ आपकी सुग्रीवसे मित्रता होगी। हे देव! हे रघुवीर! वह सब हाल बतावेगा। हे धीरबुद्धि! आप सब जानते हुए भी मुझसे पूछते हैं!॥ ६॥

बार बार प्रभु पद सिरु नाई। प्रेम सहित सब कथा सुनाई॥ ७॥

बार-बार प्रभुके चरणोंमें सिर नवाकर, प्रेमसहित उसने सब कथा सुनायी॥ ७॥

छं०—कहि कथा सकल बिलोकि हरि मुख हृदयँ पद पंकज धरे।
तजि जोग पावक देह हरि पद लीन भइ जहँ नहिं फिरे॥
नर बिबिध कर्म अधर्म बहु मत सोकप्रद सब त्यागहू।
बिस्वास करि कह दास तुलसी राम पद अनुरागहू॥

सब कथा कहकर भगवान्‌के मुखके दर्शन कर हृदयमें उनके चरणकमलोंको धारण कर लिया और योगाग्निसे देहको त्यागकर (जलाकर) वह उस दुर्लभ हरिपदमें लीन हो गयी, जहाँसे लौटना नहीं होता। तुलसीदासजी कहते हैं कि अनेकों प्रकारके कर्म, अधर्म और बहुत-से मत—ये सब शोकप्रद हैं; हे मनुष्यो ! इनका त्याग कर दो और विश्वास करके श्रीरामजीके चरणोंमें प्रेम करो।

दो०—जाति हीन अघ जन्म महि मुक्त कीन्हि असि नारि।
महामंद मन सुख चहसि ऐसे प्रभुहि बिसारि॥ ३६॥

जो नीच जातिकी और पापोंकी जन्मभूमि थी, ऐसी स्त्रीको भी जिन्होंने मुक्त कर दिया, अरे महादुर्बुद्धि मन ! तू ऐसे प्रभुको भूलकर सुख चाहता है ?॥ ३६॥

चौ०—चले राम त्यागा बन सोऊ। अतुलित बल नर केहरि दोऊ॥
बिरही इव प्रभु करत बिषादा। कहत कथा अनेक संबादा॥ १॥

रामचन्द्रजीने उस वनको भी छोड़ दिया और वे आगे चले। दोनों भाई अतुलनीय बलवान् और मनुष्योंमें सिंहके समान हैं। प्रभु विरहीकी तरह विषाद करते हुए अनेकों कथाएँ और संवाद कहते हैं—॥ १॥

लछिमन देखु बिपिन कइ सोभा। देखत केहि कर मन नहिं छोभा॥
नारि सहित सब खग मृग बृंदा। मानहुँ मोरि करत हहिं निंदा॥ २॥

हे लक्ष्मण ! जरा वनकी शोभा तो देखो। इसे देखकर किसका मन क्षुब्ध नहीं होगा ? पक्षी और पशुओंके समूह सभी स्त्रीसहित हैं। मानो वे मेरी निन्दा कर रहे हैं॥ २॥

हमहि देखि मृग निकर पराहीं। मृगीं कहहिं तुम्ह कहँ भय नाहीं॥
तुम्ह आनंद करहु मृग जाए। कंचन मृग खोजन ए आए॥ ३॥

हमें देखकर [जब डरके मारे] हिरनोंके झुंड भागने लगते हैं, तब हिरनियाँ उनसे कहती हैं—तुमको भय नहीं है। तुम तो साधारण हिरनोंसे पैदा हुए हो, अतः तुम आनन्द करो। ये तो सोनेका हिरन खोजने आये हैं॥ ३॥

संग लाइ करिनीं करि लेहीं। मानहुँ मोहि सिखावनु देहीं॥
सास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देखिअ। भूप सुसेवित बस नहिं लेखिअ॥ ४॥

हाथी हथिनियोंको साथ लगा लेते हैं। वे मानो मुझे शिक्षा देते हैं [कि स्त्रीको कभी अकेली नहीं छोड़ना चाहिये]। भलीभाँति चिन्तन किये हुए शास्त्रको भी बार-बार देखते रहना चाहिये। अच्छी तरह सेवा किये हुए भी राजाको वशमें नहीं समझना चाहिये॥ ४॥

राखिअ नारि जदपि उर माहीं। जुबती सास्त्र नृपति बस नाहीं॥
देखहु तात बसंत सुहावा। प्रिया हीन मोहि भय उपजावा॥ ५॥

और स्त्रीको चाहे हृदयमें ही क्यों न रक्खा जाय; परंतु युवती स्त्री, शास्त्र और राजा किसीके वशमें नहीं रहते। हे तात ! इस सुन्दर वसन्तको तो देखो। प्रियाके बिना मुझको यह भय उत्पन्न कर रहा है॥ ५॥

दो०—बिरह बिकल बलहीन मोहि जानेसि निपट अकेल।
सहित बिपिन मधुकर खग मदन कीन्ह बगमेल॥ ३७ क॥

मुझे विरहसे व्याकुल, बलहीन और बिल्कुल अकेला जानकर कामदेवने वन, भौंरों और

पक्षियोंको साथ लेकर मुझपर धावा बोल दिया ॥ ३७ (क) ॥

देखि गयउ भ्राता सहित तासु दूत सुनि बात।
डेरा कीन्हेउ मनहुँ तब कटकु हटकि मनजात ॥ ३७ ख ॥

परंतु जब उसका दूत यह देख गया कि मैं भाईके साथ हूँ (अकेला नहीं हूँ), तब उसकी बात सुनकर कामदेवने मानो सेनाको रोककर डेरा डाल दिया है ॥ ३७ (ख) ॥

चौ०—बिटप बिसाल लता अरुझानी। बिबिध बितान दिए जनु तानी ॥
कदलि ताल बर धुजा पताका। देखि न मोह धीर मन जाका ॥ १ ॥

विशाल वृक्षोंमें लताएँ उलझी हुई ऐसी मालूम होती हैं मानो नाना प्रकारके तंबू तान दिये गये हैं। केला और ताड़ सुन्दर ध्वजा-पताकाके समान हैं। इन्हें देखकर वही नहीं मोहित होता, जिसका मन धीर है ॥ १ ॥

बिबिध भाँति फूले तरु नाना। जनु बानैत बने बहु बाना ॥
कहुँ कहुँ सुंदर बिटप सुहाए। जनु भट बिलग बिलग होइ छाए ॥ २ ॥

अनेकों वृक्ष नाना प्रकारसे फूले हुए हैं। मानो अलग-अलग बाना (वर्दी) धारण किये हुए बहुत-से तीरंदाज हों। कहीं-कहीं सुन्दर वृक्ष शोभा दे रहे हैं। मानो योद्धालोग अलग-अलग होकर छावनी डाले हों ॥ २ ॥

कूजत पिक मानहुँ गज माते। ढेक महोख ऊँट बिसराते ॥
मोर चकोर कीर बर बाजी। पारावत मराल सब ताजी ॥ ३ ॥

कोयलें कूज रही हैं, वही मानो मतवाले हाथी [चिग्घाड़ रहे] हैं। ढेक और महोख पक्षी मानो ऊँट और खच्चर हैं। मोर, चकोर, तोते, कबूतर और हंस मानो सब सुन्दर ताजी (अरबी) घोड़े हैं ॥ ३ ॥

तीतिर लावक पदचर जूथा। बरनि न जाइ मनोज बरूथा ॥
रथ गिरि सिला दुंदुभीं झरना। चातक बंदी गुन गन बरना ॥ ४ ॥

तीतर और बटेर पैदल सिपाहियोंके झुंड हैं। कामदेवकी सेनाका वर्णन नहीं हो सकता। पर्वतोंकी शिलाएँ रथ और जलके झरने नगाड़े हैं। पपीहे भाट हैं, जो गुणसमूह (विरदावली) का वर्णन करते हैं ॥ ४ ॥

मधुकर मुखर भेरि सहनाई। त्रिबिध बयारि बसीठीं आई ॥
चतुरंगिनी सेन सँग लीन्हें। बिचरत सबहि चुनौती दीन्हें ॥ ५ ॥

भौंरोंकी गुंजार भेरी और शहनाई है। शीतल, मन्द और सुगन्धित हवा मानो दूतका काम लेकर आयी है। इस प्रकार चतुरङ्गिणी सेना साथ लिये कामदेव मानो सबको चुनौती देता हुआ विचर रहा है ॥ ५ ॥

लछिमन देखत काम अनीका। रहहिं धीर तिन्ह कै जग लीका ॥
एहि कें एक परम बल नारी। तेहि तें उबर सुभट सोइ भारी ॥ ६ ॥

हे लक्ष्मण! कामदेवकी इस सेनाको देखकर जो धीर बने रहते हैं, जगत्‌में उन्हींकी [वीरोंमें] प्रतिष्ठा होती है। इस कामदेवके एक स्त्रीका बड़ा भारी बल है। उससे जो बच जाय, वही श्रेष्ठ योद्धा है ॥ ६ ॥

दो०—तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ।
मुनि बिग्यान धाम मन करहिं निमिष महुँ छोभ॥ ३८ क॥

हे तात! काम, क्रोध और लोभ—ये तीन अत्यन्त प्रबल दुष्ट हैं। ये विज्ञानके धाम मुनियोंके भी मनोंको पलभरमें क्षुब्ध कर देते हैं॥ ३८(क)॥

लोभ कें इच्छा दंभ बल काम कें केवल नारि।
क्रोध कें परुष बचन बल मुनिबर कहहिं बिचारि॥ ३८ ख॥

लोभको इच्छा और दम्भका बल है, कामको केवल स्त्रीका बल है और क्रोधको कठोर वचनोंका बल है; श्रेष्ठ मुनि विचारकर ऐसा कहते हैं॥ ३८ (ख)॥

चौ०—गुनातीत सचराचर स्वामी। राम उमा सब अंतरजामी॥
कामिन्ह कै दीनता देखाई। धीरन्ह कें मन बिरति दृढ़ाई॥ १॥

[शिवजी कहते हैं—] हे पार्वती! श्रीरामचन्द्रजी गुणातीत (तीनों गुणोंसे परे), चराचर जगत्‌के स्वामी और सबके अन्तरकी जाननेवाले हैं। [उपर्युक्त बातें कहकर] उन्होंने कामी लोगोंकी दीनता (बेबसी) दिखलायी है और धीर (विवेकी) पुरुषोंके मनमें वैराग्यको दृढ़ किया है॥ १॥

क्रोध मनोज लोभ मद माया। छूटहिं सकल राम कीं दाया॥
सो नर इंद्रजाल नहिं भूला। जा पर होइ सो नट अनुकूला॥ २॥

क्रोध, काम, लोभ, मद और माया—ये सभी श्रीरामजीकी दयासे छूट जाते हैं। वह नट (नटराजभगवान्) जिसपर प्रसन्न होता है, वह मनुष्य इन्द्रजाल (माया) में नहीं भूलता॥ 2॥

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना। सत हरि भजनु जगत सब सपना॥
पुनि प्रभु गए सरोबर तीरा। पंपा नाम सुभग गंभीरा॥ ३॥

हे उमा! मैं तुम्हें अपना अनुभव कहता हूँ—हरिका भजन ही सत्य है, यह सारा जगत् तो स्वप्न [की भाँति झूठा] है। फिर प्रभु श्रीरामजी पंपा नामक सुन्दर और गहरे सरोवरके तीरपर गये॥ ३॥

संत हृदय जस निर्मल बारी। बाँधे घाट मनोहर चारी॥
जहँ तहँ पिअहिं बिबिध मृग नीरा। जनु उदार गृह जाचक भीरा॥ ४॥

उसका जल संतोंके हृदय-जैसा निर्मल है। मनको हरनेवाले सुन्दर चार घाट बँधे हुए हैं। भाँति-भाँतिके पशु जहाँ-तहाँ जल पी रहे हैं। मानो उदार दानी पुरुषोंके घर याचकोंकी भीड़ लगी हो!॥ ४॥

दो०—पुरइनि सघन ओट जल बेगि न पाइअ मर्म।
मायाछन्न न देखिऐ जैसें निर्गुन ब्रह्म॥ ३९ क॥

घनी पुरइनों (कमलके पत्तों) की आड़में जलका जल्दी पता नहीं मिलता। जैसे मायासे ढके रहनेके कारण निर्गुण ब्रह्म नहीं दीखता॥ ३९ (क)॥

सुखी मीन सब एकरस अति अगाध जल माहिं।
जथा धर्मसीलन्ह के दिन सुख संजुत जाहिं॥ ३९ ख॥

उस सरोवरके अत्यन्त अथाह जलमें सब मछलियाँ सदा एकरस (एक समान) सुखी रहती हैं। जैसे धर्मशील पुरुषोंके सब दिन सुखपूर्वक बीतते हैं॥ ३९ (ख)॥

चौ०—बिकसे सरसिज नाना रंगा। मधुर मुखर गुंजत बहु भृंगा॥
बोलत जलकुक्कुट कलहंसा। प्रभु बिलोकि जनु करत प्रसंसा॥ १॥

उसमें रंग-बिरंगे कमल खिले हुए हैं। बहुत-से भौंरे मधुर स्वरसे गुंजार कर रहे हैं। जलके मुर्गे और राजहंस बोल रहे हैं, मानो प्रभुको देखकर उनकी प्रशंसा कर रहे हों॥ १॥

चक्रबाक बक खग समुदाई। देखत बनइ बरनि नहिं जाई॥
सुंदर खग गन गिरा सुहाई। जात पथिक जनु लेत बोलाई॥ २॥

चक्रवाक, बगुले आदि पक्षियोंका समुदाय देखते ही बनता है, उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। सुन्दर पक्षियोंकी बोली बड़ी सुहावनी लगती है, मानो [रास्तेमें] जाते हुए पथिकको बुलाये लेती हो॥ २॥

ताल समीप मुनिन्ह गृह छाए। चहु दिसि कानन बिटप सुहाए॥
चंपक बकुल कदंब तमाला। पाटल पनस परास रसाला॥ ३॥

उस झील (पंपासरोवर) के समीप मुनियोंने आश्रम बना रक्खे हैं। उसके चारों ओर वनके सुन्दर वृक्ष हैं। चम्पा, मौलसिरी, कदम्ब, तमाल, पाटल, कटहल, ढाक और आम आदि— ॥ ३॥

नव पल्लव कुसुमित तरु नाना। चंचरीक पटली कर गाना॥
सीतल मंद सुगंध सुभाऊ। संतत बहइ मनोहर बाऊ॥ ४॥

बहुत प्रकारके वृक्ष नये-नये पत्तों और [सुगन्धित] पुष्पोंसे युक्त हैं, [जिनपर] भौंरोंके समूह गुंजार कर रहे हैं। स्वभावसे ही शीतल, मन्द, सुगन्धित एवं मनको हरनेवाली हवा सदा बहती रहती है॥ ४॥

कुहू कुहू कोकिल धुनि करहीं। सुनि रव सरस ध्यान मुनि टरहीं॥ ५॥

कोयलें 'कुहू' 'कुहू' का शब्द कर रही हैं। उनकी रसीली बोली सुनकर मुनियोंका भी ध्यान टूट जाता है॥ ५॥

दो०—फल भारन नमि बिटप सब रहे भूमि निअराइ।
पर उपकारी पुरुष जिमि नवहिं सुसंपति पाइ॥ ४०॥

फलोंके बोझसे झुककर सारे वृक्ष पृथ्वीके पास आ लगे हैं, जैसे परोपकारी पुरुष बड़ी सम्पत्ति पाकर [विनयसे] झुक जाते हैं॥ ४०॥

चौ०—देखि राम अति रुचिर तलावा। मज्जनु कीन्ह परम सुख पावा॥
देखी सुंदर तरुबर छाया। बैठे अनुज सहित रघुराया॥ १॥

श्रीरामजीने अत्यन्त सुन्दर तालाब देखकर स्नान किया और परम सुख पाया। एक सुन्दर उत्तम वृक्षकी छाया देखकर श्रीरघुनाथजी छोटे भाई लक्ष्मणजीसहित बैठ गये॥ १॥

तहँ पुनि सकल देव मुनि आए। अस्तुति करि निज धाम सिधाए॥
बैठे परम प्रसन्न कृपाला। कहत अनुज सन कथा रसाला॥ २॥

फिर वहाँ सब देवता और मुनि आये और स्तुति करके अपने-अपने धामको चले गये। कृपालु श्रीरामजी परम प्रसन्न बैठे हुए छोटे भाई लक्ष्मणजीसे रसीली कथाएँ कह रहे हैं॥ २॥

बिरहवंत भगवंतहि देखी। नारद मन भा सोच बिसेषी॥
मोर साप करि अंगीकारा। सहत राम नाना दुख भारा॥ ३॥

भगवान्‌को विरहयुक्त देखकर नारदजीके मनमें विशेषरूपसे सोच हुआ। [उन्होंने विचार किया कि] मेरे ही शापको स्वीकार करके श्रीरामजी नाना प्रकारके दुःखोंका भार सह रहे हैं (दुःख उठा रहे हैं) ॥ ३ ॥

ऐसे प्रभुहि बिलोकउँ जाई। पुनि न बनिहि अस अवसरु आई ॥
यह बिचारि नारद कर बीना। गए जहाँ प्रभु सुख आसीना ॥ ४ ॥

ऐसे (भक्तवत्सल) प्रभुको जाकर देखूँ। फिर ऐसा अवसर न बन आवेगा। यह विचारकर नारदजी हाथमें वीणा लिये हुए वहाँ गये, जहाँ प्रभु सुखपूर्वक बैठे हुए थे ॥ ४ ॥

गावत राम चरित मृदु बानी। प्रेम सहित बहु भाँति बखानी ॥
करत दंडवत लिए उठाई। राखे बहुत बार उर लाई ॥ ५ ॥

वे कोमल वाणीसे प्रेमके साथ बहुत प्रकारसे बखान-बखानकर रामचरितका गान कर [ते हुए चले आ] रहे थे। दण्डवत् करते देखकर श्रीरामचन्द्रजीने नारदजीको उठा लिया और बहुत देरतक हृदयसे लगाये रक्खा ॥ ५ ॥

स्वागत पूँछि निकट बैठारे। लछिमन सादर चरन पखारे ॥ ६ ॥

फिर स्वागत (कुशल) पूछकर पास बैठा लिया। लक्ष्मणजीने आदरके साथ उनके चरण धोये ॥ ६ ॥

दो०—नाना बिधि बिनती करि प्रभु प्रसन्न जियँ जानि।
नारद बोले बचन तब जोरि सरोरुह पानि ॥ ४१ ॥

बहुत प्रकारसे विनती करके और प्रभुको मनमें प्रसन्न जानकर तब नारदजी कमलके समान हाथोंको जोड़कर वचन बोले— ॥ ४१ ॥

चौ०—सुनहु उदार सहज रघुनायक। सुंदर अगम सुगम बर दायक ॥
देहु एक बर मागउँ स्वामी। जद्यपि जानत अंतरजामी ॥ १ ॥

हे स्वभावसे ही उदार श्रीरघुनाथजी ! सुनिये। आप सुन्दर अगम और सुगम वरके देनेवाले हैं। हे स्वामी ! मैं एक वर माँगता हूँ, वह मुझे दीजिये, यद्यपि आप अन्तर्यामी होनेके नाते सब जानते ही हैं ॥ १ ॥

जानहु मुनि तुम्ह मोर सुभाऊ। जन सन कबहुँ कि करउँ दुराऊ ॥
कवन बस्तु असि प्रिय मोहि लागी। जो मुनिबर न सकहु तुम्ह मागी ॥ २ ॥

[श्रीरामजीने कहा—] हे मुनि ! तुम मेरा स्वभाव जानते ही हो। क्या मैं अपने भक्तोंसे कभी कुछ छिपाव करता हूँ ? मुझे ऐसी कौन-सी वस्तु प्रिय लगती है, जिसे हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम नहीं माँग सकते ? ॥ २ ॥

जन कहुँ कछु अदेय नहिं मोरें। अस बिस्वास तजहु जनि भोरें ॥
तब नारद बोले हरषाई। अस बर मागउँ करउँ ढिठाई ॥ ३ ॥

मुझे भक्तके लिये कुछ भी अदेय नहीं है। ऐसा विश्वास भूलकर भी मत छोड़ो। तब नारदजी हर्षित होकर बोले—मैं ऐसा वर माँगता हूँ, यह धृष्टता करता हूँ— ॥ ३ ॥

जद्यपि प्रभु के नाम अनेका। श्रुति कह अधिक एक तें एका॥
राम सकल नामन्ह ते अधिका। होउ नाथ अघ खग गन बधिका॥ ४॥

यद्यपि प्रभुके अनेकों नाम हैं और वेद कहते हैं कि वे सब एक-से-एक बढ़कर हैं, तो भी हे नाथ! रामनाम सब नामोंसे बढ़कर हो और पापरूपी पक्षियोंके समूहके लिये यह वधिकके समान हो॥ ४॥

दो०—राका रजनी भगति तव राम नाम सोइ सोम।
अपर नाम उडगन बिमल बसहुँ भगत उर ब्योम॥ ४२ क॥

आपकी भक्ति पूर्णिमाकी रात्रि है; उसमें 'राम' नाम यही पूर्ण चन्द्रमा होकर और अन्य सब नाम तारागण होकर भक्तोंके हृदयरूपी निर्मल आकाशमें निवास करें॥ ४२ (क)॥

एवमस्तु मुनि सन कहेउ कृपासिंधु रघुनाथ।
तब नारद मन हरष अति प्रभु पद नायउ माथ॥ ४२ ख॥

कृपासागर श्रीरघुनाथजीने मुनिसे 'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) कहा। तब नारदजीने मनमें अत्यन्त हर्षित होकर प्रभुके चरणोंमें मस्तक नवाया॥ ४२ (ख)॥

चौ०—अति प्रसन्न रघुनाथहि जानी। पुनि नारद बोले मृदु बानी॥
राम जबहिं प्रेरेउ निज माया। मोहेहु मोहि सुनहु रघुराया॥ १॥

श्रीरघुनाथजीको अत्यन्त प्रसन्न जानकर नारदजी फिर कोमल वाणी बोले—हे रामजी! हे रघुनाथजी! सुनिये, जब आपने अपनी मायाको प्रेरित करके मुझे मोहित किया था,॥ १॥

तब बिबाह मैं चाहउँ कीन्हा। प्रभु केहि कारन करै न दीन्हा॥
सुनु मुनि तोहि कहउँ सहरोसा। भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा॥ २॥

तब मैं विवाह करना चाहता था। हे प्रभु! आपने मुझे किस कारण विवाह नहीं करने दिया? [प्रभु बोले—] हे मुनि! सुनो, मैं तुम्हें हर्षके साथ कहता हूँ कि जो समस्त आशा-भरोसा छोड़कर केवल मुझको ही भजते हैं,॥ २॥

करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी॥
गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई। तहँ राखइ जननी अरगाई॥ ३॥

मैं सदा उनकी वैसे ही रखवाली करता हूँ जैसे माता बालककी रक्षा करती है। छोटा बच्चा जब दौड़कर आग और साँपको पकड़ने जाता है, तो वहाँ माता उसे [अपने हाथों] अलग करके बचा लेती है॥ ३॥

प्रौढ़ भएँ तेहि सुत पर माता। प्रीति करइ नहिं पाछिलि बाता॥
मोरें प्रौढ़ तनय सम ग्यानी। बालक सुत सम दास अमानी॥ ४॥

सयाना हो जानेपर उस पुत्रपर माता प्रेम तो करती है, परंतु पिछली बात नहीं रहती (अर्थात् मातृपरायण शिशुकी तरह फिर उसको बचानेकी चिन्ता नहीं करती, क्योंकि वह मातापर निर्भर न कर अपनी रक्षा आप करने लगता है)। ज्ञानी मेरे प्रौढ़ (सयाने) पुत्रके समान है और [तुम्हारे-जैसा] अपने बलका मान न करनेवाला सेवक मेरे शिशु पुत्रके समान है॥ ४॥

जनहि मोर बल निज बल ताही। दुहु कहँ काम क्रोध रिपु आही॥
यह बिचारि पंडित मोहि भजहीं। पाएहुँ ग्यान भगति नहि तजहीं॥ ५॥

मेरे सेवकको केवल मेरा ही बल रहता है और उसे (ज्ञानीको) अपना बल होता है। पर

काम-क्रोधरूपी शत्रु तो दोनोंके लिये हैं। [भक्तके शत्रुओंको मारनेकी जिम्मेवारी मुझपर रहती है, क्योंकि वह मेरे परायण होकर मेरा ही बल मानता है; परंतु अपने बलको माननेवाले ज्ञानीके शत्रुओंका नाश करनेकी जिम्मेवारी मुझपर नहीं है।] ऐसा विचारकर पण्डितजन (बुद्धिमान् लोग) मुझको ही भजते हैं। वे ज्ञान प्राप्त होनेपर भी भक्तिको नहीं छोड़ते॥ ५॥

दो०—काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह कै धारि।
तिन्ह महँ अति दारुन दुखद मायारूपी नारि॥ ४३॥

काम, क्रोध, लोभ और मद आदि मोह (अज्ञान) की प्रबल सेना है। इनमें मायारूपिणी (मायाकी साक्षात् मूर्ति) स्त्री तो अत्यन्त दारुण दुःख देनेवाली है॥ ४३॥

चौ०—सुनु मुनि कह पुरान श्रुति संता। मोह बिपिन कहुँ नारि बसंता॥
जप तप नेम जलाश्रय झारी। होइ ग्रीषम सोषइ सब नारी॥ १॥

हे मुनि! सुनो, पुराण, वेद और संत कहते हैं कि मोहरूपी वन [को विकसित करने] के लिये स्त्री वसन्त ऋतुके समान है। जप, तप, नियमरूपी सम्पूर्ण जलके स्थानोंको स्त्री ग्रीष्मरूप होकर सर्वथा सोख लेती है॥ १॥

काम क्रोध मद मत्सर भेका। इन्हहि हरषप्रद बरषा एका॥
दुर्बासना कुमुद समुदाई। तिन्ह कहँ सरद सदा सुखदाई॥ २॥

काम, क्रोध, मद और मत्सर (डाह) आदि मेढक हैं। इनको वर्षाऋतु होकर हर्ष प्रदान करनेवाली एकमात्र यही (स्त्री) है। बुरी वासनाएँ कुमुदोंके समूह हैं। उनको सदैव सुख देनेवाली यह शरद् ऋतु है॥ २॥

धर्म सकल सरसीरुह बृंदा। होइ हिम तिन्हहि दहइ सुख मंदा॥
पुनि ममता जवास बहुताई। पलुहइ नारि सिसिर रितु पाई॥ ३॥

समस्त धर्म कमलोंके झुंड हैं। यह नीच (विषयजन्य) सुख देनेवाली स्त्री हिमऋतु होकर उन्हें जला डालती है। फिर ममतारूपी जवासका समूह (वन) स्त्रीरूपी शिशिर ऋतुको पाकर हरा-भरा हो जाता है॥ ३॥

पाप उलूक निकर सुखकारी। नारि निबिड़ रजनी अँधिआरी॥
बुधि बल सील सत्य सब मीना। बनसी सम त्रिय कहहिं प्रबीना॥ ४॥

पापरूपी उल्लुओंके समूहके लिये यह स्त्री सुख देनेवाली घोर अन्धकारमयी रात्रि है। बुद्धि, बल, शील और सत्य—ये सब मछलियाँ हैं और उन [को फँसाकर नष्ट करने] के लिये स्त्री बंसीके समान है, चतुर पुरुष ऐसा कहते हैं॥ ४॥

दो०—अवगुन मूल सूलप्रद प्रमदा सब दुख खानि।
ताते कीन्ह निवारन मुनि मैं यह जियँ जानि॥ ४४॥

युवती स्त्री अवगुणोंकी मूल, पीड़ा देनेवाली और सब दुःखोंकी खान है। इसलिये हे मुनि! मैंने जीमें ऐसा जानकर तुमको विवाह करनेसे रोका था॥ ४४॥

चौ०—सुनि रघुपति के बचन सुहाए। मुनि तन पुलक नयन भरि आए॥
कहहु कवन प्रभु कै असि रीती। सेवक पर ममता अरु प्रीती॥ १॥

श्रीरघुनाथजीके सुन्दर वचन सुनकर मुनिका शरीर पुलकित हो गया और नेत्र [प्रेमाश्रुओंके जलसे] भर आये। [वे मन-ही-मन कहने लगे—] कहो तो किस प्रभुकी ऐसी रीति है, जिसका सेवकपर इतना ममत्व और प्रेम हो ॥ १ ॥

जे न भजहिं अस प्रभु भ्रम त्यागी। ग्यान रंक नर मंद अभागी ॥
पुनि सादर बोले मुनि नारद। सुनहु राम बिग्यान बिसारद ॥ २ ॥

जो मनुष्य भ्रमको त्यागकर ऐसे प्रभुको नहीं भजते, वे ज्ञानके कंगाल, दुर्बुद्धि और अभागे हैं। फिर नारद मुनि आदरसहित बोले—हे विज्ञान-विशारद श्रीरामजी ! सुनिये— ॥ २ ॥

संतन्ह के लच्छन रघुबीरा। कहहु नाथ भव भंजन भीरा ॥
सुनु मुनि संतन्ह के गुन कहऊँ। जिन्ह ते मैं उन्ह कें बस रहऊँ ॥ ३ ॥

हे रघुवीर ! हे भव-भय (जन्म-मरणके भय) का नाश करनेवाले मेरे नाथ ! अब कृपा कर संतोंके लक्षण कहिये। [श्रीरामजीने कहा—] हे मुनि ! सुनो, मैं संतोंके गुणोंको कहता हूँ, जिनके कारण मैं उनके वशमें रहता हूँ ॥ ३ ॥

षट बिकार जित अनघ अकामा। अचल अकिंचन सुचि सुखधामा ॥
अमित बोध अनीह मितभोगी। सत्यसार कबि कोबिद जोगी ॥ ४ ॥

वे संत [काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर—इन] छः विकारों (दोषों) को जीते हुए, पापरहित, कामनारहित, निश्चल (स्थिरबुद्धि), अकिञ्चन (सर्वत्यागी), बाहर-भीतरसे पवित्र, सुखके धाम, असीम ज्ञानवान्, इच्छारहित, मिताहारी, सत्यनिष्ठ, कवि, विद्वान्, योगी, ॥ ४ ॥

सावधान मानद मदहीना। धीर धर्म गति परम प्रबीना ॥ ५ ॥

सावधान, दूसरोंको मान देनेवाले, अभिमानरहित, धैर्यवान्, धर्मके ज्ञान और आचरणमें अत्यन्त निपुण, ॥ ५ ॥

दो०—गुनागार संसार दुख रहित बिगत संदेह।
तजि मम चरन सरोज प्रिय तिन्ह कहुँ देह न गेह ॥ ४५ ॥

गुणोंके घर, संसारके दुःखोंसे रहित और संदेहोंसे सर्वथा छूटे हुए होते हैं। मेरे चरणकमलोंको छोड़कर उनको न देह ही प्रिय होती है, न घर ही ॥ ४५ ॥

चौ०—निज गुन श्रवन सुनत सकुचाहीं। पर गुन सुनत अधिक हरषाहीं ॥
सम सीतल नहिं त्यागहिं नीती। सरल सुभाउ सबहि सन प्रीती ॥ १ ॥

कानोंसे अपने गुण सुननेमें सकुचाते हैं, दूसरोंके गुण सुननेसे विशेष हर्षित होते हैं। सम और शीतल हैं, न्यायका कभी त्याग नहीं करते। सरलस्वभाव होते हैं और सभीसे प्रेम रखते हैं ॥ १ ॥

जप तप ब्रत दम संजम नेमा। गुरु गोबिंद बिप्र पद प्रेमा ॥
श्रद्धा छमा मयत्री दाया। मुदिता मम पद प्रीति अमाया ॥ २ ॥

वे जप, तप, व्रत, दम, संयम और नियममें रत रहते हैं और गुरु, गोविन्द तथा ब्राह्मणोंके चरणोंमें प्रेम रखते हैं। उनमें श्रद्धा, क्षमा, मैत्री, दया, मुदिता (प्रसन्नता) और मेरे चरणोंमें निष्कपट प्रेम होता है ॥ २ ॥

बिरति बिबेक बिनय बिग्याना। बोध जथारथ बेद पुराना ॥
दंभ मान मद करहिं न काऊ। भूलि न देहिं कुमारग पाऊ ॥ ३ ॥

तथा वैराग्य, विवेक, विनय, विज्ञान (परमात्माके तत्त्वका ज्ञान) और वेद-पुराणका यथार्थ ज्ञान रहता है। वे दम्भ, अभिमान और मद कभी नहीं करते और भूलकर भी कुमार्गपर पैर नहीं रखते ॥ ३ ॥

गावहिं सुनहिं सदा मम लीला। हेतु रहित परहित रत सीला ॥
मुनि सुनु साधुन्ह के गुन जेते। कहि न सकहिं सारद श्रुति तेते ॥ ४ ॥

सदा मेरी लीलाओंको गाते-सुनते हैं और बिना ही कारण दूसरोंके हितमें लगे रहनेवाले होते हैं। हे मुनि ! सुनो, संतोंके जितने गुण हैं, उनको सरस्वती और वेद भी नहीं कह सकते ॥ ४ ॥

छं०—कहि सक न सारद सेष नारद सुनत पद पंकज गहे।
अस दीनबंधु कृपाल अपने भगत गुन निज मुख कहे ॥
सिरु नाइ बारहिं बार चरनन्हि ब्रह्मपुर नारद गए।
ते धन्य तुलसीदास आस बिहाइ जे हरि रँग रँए ॥

'शेष और शारदा भी नहीं कह सकते' यह सुनते ही नारदजीने श्रीरामजीके चरणकमल पकड़ लिये। दीनबन्धु कृपालु प्रभुने इस प्रकार अपने श्रीमुखसे अपने भक्तोंके गुण कहे। भगवान्‌के चरणोंमें बार-बार सिर नवाकर नारदजी ब्रह्मलोकको चले गये। तुलसीदासजी कहते हैं कि वे पुरुष धन्य हैं, जो सब आशा छोड़कर केवल श्रीहरिके रंगमें रँग गये हैं।

दो०—रावनारि जसु पावन गावहिं सुनहिं जे लोग।
राम भगति दृढ़ पावहिं बिनु बिराग जप जोग ॥ ४६ क ॥

जो लोग रावणके शत्रु श्रीरामजीका पवित्र यश गावेंगे और सुनेंगे, वे वैराग्य, जप और योगके बिना ही श्रीरामजीकी दृढ़ भक्ति पावेंगे ॥ ४६ (क) ॥

दीप सिखा सम जुबति तन मन जनि होसि पतंग।
भजहि राम तजि काम मद करहि सदा सतसंग ॥ ४६ ख ॥

युवती स्त्रियोंका शरीर दीपककी लौके समान है, हे मन ! तू उसका पतिंगा न बन। काम और मदको छोड़कर श्रीरामचन्द्रजीका भजन कर और सदा सत्सङ्ग कर ॥ ४६ (ख) ॥

मासपारायण, बाईसवाँ विश्राम

इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने तृतीयः

सोपानः समाप्तः ।

कलियुगके सम्पूर्ण पापोंको विध्वंस करनेवाले श्रीरामचरितमानसका
यह तीसरा सोपान समाप्त हुआ।

(अरण्यकाण्ड समाप्त)

भगवान् रामकी सुग्रीवसे मैत्री

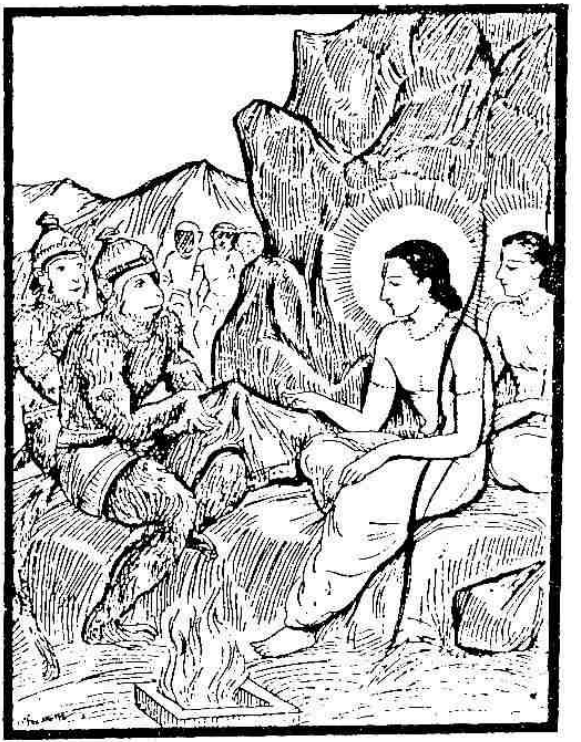

सखा सोच त्यागहु बल मोरें। सब बिधि घटब काज मैं तोरें॥

श्रीगणेशाय नमः

श्रीजानकीवल्लभो विजयते

श्रीरामचरितमानस

चतुर्थ सोपान

किष्किन्धाकाण्ड

श्लोक

कुन्देन्दीवरसुन्दरावतिबलौ विज्ञानधामावुभौ
शोभाढ्यौ वरधन्विनौ श्रुतिनुतौ गोविप्रवृन्दप्रियौ।
मायामानुषरूपिणौ रघुवरौ सद्धर्मवर्मौ हितौ
सीतान्वेषणतत्परौ पथिगतौ भक्तिप्रदौ तौ हि नः॥ १॥

कुन्दपुष्प और नील कमलके समान सुन्दर गौर एवं श्यामवर्ण, अत्यन्त बलवान्, विज्ञानके धाम, शोभासम्पन्न, श्रेष्ठ धनुर्धर, वेदोंके द्वारा वन्दित, गौ एवं ब्राह्मणोंके समूहके प्रिय [अथवा प्रेमी], मायासे मनुष्यरूप धारण किये हुए, श्रेष्ठ धर्मके लिये कवचस्वरूप, सबके हितकारी, श्रीसीताजीकी खोजमें लगे हुए, पथिकरूप रघुकुलके श्रेष्ठ श्रीरामजी और श्रीलक्ष्मणजी दोनों भाई निश्चय ही हमें भक्तिप्रद हों॥ १॥

ब्रह्माम्भोधिसमुद्भवं कलिमलप्रध्वंसनं चाव्ययं
श्रीमच्छम्भुमुखेन्दुसुन्दरवरे संशोभितं सर्वदा।
संसारामयभेषजं सुखकरं श्रीजानकीजीवनं
धन्यास्ते कृतिनः पिबन्ति सततं श्रीरामनामामृतम्॥ २॥

वे सुकृती (पुण्यात्मा पुरुष) धन्य हैं जो वेदरूपी समुद्र [के मथने] से उत्पन्न हुए कलियुगके मलको सर्वथा नष्ट कर देनेवाले, अविनाशी, भगवान् श्रीशम्भुके सुन्दर एवं श्रेष्ठ मुखरूपी चन्द्रमामें सदा शोभायमान, जन्म-मरणरूपी रोगके औषध, सबको सुख देनेवाले और श्रीजानकीजीके जीवनस्वरूप श्रीरामनामरूपी अमृतका निरन्तर पान करते रहते हैं॥ २॥

सो०—मुक्ति जन्म महि जानि ग्यान खानि अघ हानि कर।
जहँ बस संभु भवानि सो कासी सेइअ कस न॥

जहाँ श्रीशिव-पार्वती बसते हैं, उस काशीको मुक्तिकी जन्मभूमि, ज्ञानकी खान और पापोंका

नाश करनेवाली जानकर उसका सेवन क्यों न किया जाय ?

जरत सकल सुर बृंद बिषम गरल जेहिं पान किय।
तेहि न भजसि मन मंद को कृपाल संकर सरिस॥

जिस भीषण हलाहल विषसे सब देवतागण जल रहे थे उसको जिन्होंने स्वयं पान कर लिया, रे मन्द मन ! तू उन शंकरजीको क्यों नहीं भजता ? उनके समान कृपालु [और] कौन है ?

चौ०—आगें चले बहुरि रघुराया। रिष्यमूक पर्बत निअराया॥
तहँ रह सचिव सहित सुग्रीवा। आवत देखि अतुल बल सींवा॥ १॥

श्रीरघुनाथजी फिर आगे चले। ऋष्यमूक पर्वत निकट आ गया। वहाँ (ऋष्यमूक पर्वतपर) मन्त्रियोंसहित सुग्रीव रहते थे। अतुलनीय बलकी सीमा श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजीको आते देखकर— ॥ १॥

अति सभीत कह सुनु हनुमाना। पुरुष जुगल बल रूप निधाना॥
धरि बटु रूप देखु तैं जाई। कहेसु जानि जियँ सयन बुझाई॥ २॥

सुग्रीव अत्यन्त भयभीत होकर बोले—हे हनुमान् ! सुनो, ये दोनों पुरुष बल और रूपके निधान हैं। तुम ब्रह्मचारीका रूप धारण करके जाकर देखो। अपने हृदयमें उनकी यथार्थ बात जानकर मुझे इशारेसे समझाकर कह देना॥ २॥

पठए बालि होहिं मन मैला। भागौं तुरत तजौं यह सैला॥
बिप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ। माथ नाइ पूछत अस भयऊ॥ ३॥

यदि वे मनके मलिन बालिके भेजे हुए हों तो मैं तुरंत ही इस पर्वतको छोड़कर भाग जाऊँ। [यह सुनकर] हनुमान्‌जी ब्राह्मणका रूप धरकर वहाँ गये और मस्तक नवाकर इस प्रकार पूछने लगे— ॥ ३॥

को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा। छत्री रूप फिरहु बन बीरा॥
कठिन भूमि कोमल पद गामी। कवन हेतु बिचरहु बन स्वामी॥ ४॥

हे वीर ! साँवले और गोरे शरीरवाले आप कौन हैं, जो क्षत्रियके रूपमें वनमें फिर रहे हैं ? हे स्वामी ! कठोर भूमिपर कोमल चरणोंसे चलनेवाले आप किस कारण वनमें विचर रहे हैं ?॥ ४॥

मृदुल मनोहर सुंदर गाता। सहत दुसह बन आतप बाता॥
की तुम्ह तीनि देव महँ कोऊ। नर नारायन की तुम्ह दोऊ॥ ५॥

मनको हरण करनेवाले आपके सुन्दर, कोमल अङ्ग हैं और आप वनके दुःसह धूप और वायुको सह रहे हैं। क्या आप ब्रह्मा, विष्णु, महेश—इन तीन देवताओंमेंसे कोई हैं, या आप दोनों नर और नारायण हैं॥ ५॥

दो०—जग कारन तारन भव भंजन धरनी भार।
की तुम्ह अखिल भुवन पति लीन्ह मनुज अवतार॥ १॥

अथवा आप जगत्‌के मूल कारण और सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी स्वयं भगवान् हैं, जिन्होंने लोगोंको भवसागरसे पार उतारने तथा पृथ्वीका भार नष्ट करनेके लिये मनुष्य-रूपमें अवतार लिया है ?॥ १॥

चौ०—कोसलेस दसरथ के जाए। हम पितु बचन मानि बन आए॥
नाम राम लछिमन दोउ भाई। संग नारि सुकुमारि सुहाई॥ १॥

[श्रीरामचन्द्रजीने कहा—] हम कोसलराज दशरथजीके पुत्र हैं और पिताका वचन मानकर वन आये हैं। हमारे राम-लक्ष्मण नाम हैं, हम दोनों भाई हैं। हमारे साथ सुन्दर सुकुमारी स्त्री थी ॥ १ ॥

इहाँ हरी निसिचर बैदेही। बिप्र फिरहिं हम खोजत तेही ॥
आपन चरित कहा हम गाई। कहहु बिप्र निज कथा बुझाई ॥ २ ॥

यहाँ (वनमें) राक्षसने [मेरी पत्नी] जानकीको हर लिया। हे ब्राह्मण ! हम उसे ही खोजते फिरते हैं। हमने तो अपना चरित्र कह सुनाया। अब हे ब्राह्मण ! अपनी कथा समझाकर कहिये ॥ २ ॥

प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना। सो सुख उमा जाइ नहिं बरना ॥
पुलकित तन मुख आव न बचना। देखत रुचिर बेष कै रचना ॥ ३ ॥

प्रभुको पहचानकर हनुमान्‌जी उनके चरण पकड़कर पृथ्वीपर गिर पड़े (उन्होंने साष्टाङ्ग दण्डवत्-प्रणाम किया)। [शिवजी कहते हैं—] हे पार्वती ! वह सुख वर्णन नहीं किया जा सकता। शरीर पुलकित है, मुखसे वचन नहीं निकलता। वे प्रभुके सुन्दर वेषकी रचना देख रहे हैं ! ॥ ३ ॥

पुनि धीरजु धरि अस्तुति कीन्ही। हरष हृदयँ निज नाथहि चीन्ही ॥
मोर न्याउ मैं पूछा साईं। तुम्ह पूछहु कस नर की नाईं ॥ ४ ॥

फिर धीरज धरकर स्तुति की। अपने नाथको पहचान लेनेसे हृदयमें हर्ष हो रहा है। [फिर हनुमान्‌जीने कहा—] हे स्वामी ! मैंने जो पूछा वह मेरा पूछना तो न्याय था, [वर्षोंके बाद आपको देखा, वह भी तपस्वीके वेषमें और मेरी वानरी बुद्धि, इससे मैं तो आपको पहचान न सका और अपनी परिस्थितिके अनुसार मैंने आपसे पूछा।] परन्तु आप मनुष्यकी तरह कैसे पूछ रहे हैं ? ॥ ४ ॥

तव माया बस फिरउँ भुलाना। ताते मैं नहिं प्रभु पहिचाना ॥ ५ ॥

मैं तो आपकी मायाके वश भूला फिरता हूँ; इसीसे मैंने अपने स्वामी (आप) को नहीं पहचाना ॥ ५ ॥

दो०—एकु मैं मंद मोहबस कुटिल हृदय अग्यान।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ दीनबंधु भगवान ॥ २ ॥

एक तो मैं यों ही मन्द हूँ, दूसरे मोहके वशमें हूँ, तीसरे हृदयका कुटिल और अज्ञान हूँ, फिर हे दीनबन्धु भगवान् ! प्रभु (आप) ने भी मुझे भुला दिया ! ॥ २ ॥

चौ०—जदपि नाथ बहु अवगुन मोरें। सेवक प्रभुहि परै जनि भोरें ॥
नाथ जीव तव मायाँ मोहा। सो निस्तरइ तुम्हारेहिं छोहा ॥ १ ॥

हे नाथ ! यद्यपि मुझमें बहुत-से अवगुण हैं, तथापि सेवक स्वामीकी विस्मृतिमें न पड़े (आप उसे न भूल जायँ)। हे नाथ ! जीव आपकी मायासे मोहित है। वह आपहीकी कृपासे निस्तार पा सकता है ॥ १ ॥

ता पर मैं रघुबीर दोहाई। जानउँ नहिं कछु भजन उपाई ॥
सेवक सुत पति मातु भरोसें। रहइ असोच बनइ प्रभु पोसें ॥ २ ॥

उसपर हे रघुवीर ! मैं आपकी दुहाई (शपथ) करके कहता हूँ कि मैं भजन-साधन कुछ नहीं जानता। सेवक स्वामीके और पुत्र माताके भरोसे निश्चिन्त रहता है। प्रभुको सेवकका पालन-पोषण करते ही बनता है (करना ही पड़ता है) ॥ २ ॥

अस कहि परेउ चरन अकुलाई। निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई ॥
तब रघुपति उठाइ उर लावा। निज लोचन जल सींचि जुड़ावा ॥ ३ ॥

ऐसा कहकर हनुमान्‌जी अकुलाकर प्रभुके चरणोंपर गिर पड़े, उन्होंने अपना असली शरीर प्रकट कर दिया। उनके हृदयमें प्रेम छा गया। तब श्रीरघुनाथजीने उन्हें उठाकर हृदयसे लगा लिया और अपने नेत्रोंके जलसे सींचकर शीतल किया॥ ३॥

सुनु कपि जियँ मानसि जनि ऊना। तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना॥
समदरसी मोहि कह सब कोऊ। सेवक प्रिय अनन्य गति सोऊ॥ ४॥

[फिर कहा—] हे कपि! सुनो, मनमें ग्लानि मत मानना (मन छोटा न करना)। तुम मुझे लक्ष्मणसे भी दूने प्रिय हो। सब कोई मुझे समदर्शी कहते हैं (मेरे लिये न कोई प्रिय है न अप्रिय) पर मुझको सेवक प्रिय है, क्योंकि वह अनन्यगति होता है (मुझे छोड़कर उसको कोई दूसरा सहारा नहीं होता)॥ ४॥

दो०—सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥ ३॥

और हे हनुमान्‌! अनन्य वही है जिसकी ऐसी बुद्धि कभी नहीं टलती कि मैं सेवक हूँ और यह चराचर (जड़-चेतन) जगत् मेरे स्वामी भगवान्‌का रूप है॥ ३॥

चौ०—देखि पवनसुत पति अनुकूला। हृदयँ हरष बीती सब सूला॥
नाथ सैल पर कपिपति रहई। सो सुग्रीव दास तव अहई॥ १॥

स्वामीको अनुकूल (प्रसन्न) देखकर पवनकुमार हनुमान्‌जीके हृदयमें हर्ष छा गया और उनके सब दुःख जाते रहे। [उन्होंने कहा—] हे नाथ! इस पर्वतपर वानरराज सुग्रीव रहता है, वह आपका दास है॥ १॥

तेहि सन नाथ मयत्री कीजे। दीन जानि तेहि अभय करीजे॥
सो सीता कर खोज कराइहि। जहँ तहँ मरकट कोटि पठाइहि॥ २॥

हे नाथ! उससे मित्रता कीजिये और उसे दीन जानकर निर्भय कर दीजिये। वह सीताजीकी खोज करावेगा और जहाँ-तहाँ करोड़ों वानरोंको भेजेगा॥ २॥

एहि बिधि सकल कथा समुझाई। लिए दुऔ जन पीठि चढ़ाई॥
जब सुग्रीवँ राम कहुँ देखा। अतिसय जन्म धन्य करि लेखा॥ ३॥

इस प्रकार सब बातें समझाकर हनुमान्‌जीने (श्रीराम-लक्ष्मण) दोनों जनोंको पीठपर चढ़ा लिया। जब सुग्रीवने श्रीरामचन्द्रजीको देखा तो अपने जन्मको अत्यन्त धन्य समझा॥ ३॥

सादर मिलेउ नाइ पद माथा। भेंटेउ अनुज सहित रघुनाथा॥
कपि कर मन बिचार एहि रीती। करिहहिं बिधि मो सन ए प्रीती॥ ४॥

सुग्रीव चरणोंमें मस्तक नवाकर आदरसहित मिले। श्रीरघुनाथजी भी छोटे भाईसहित उनसे गले लगकर मिले। सुग्रीव मनमें इस प्रकार सोच रहे हैं कि हे विधाता! क्या ये मुझसे प्रीति करेंगे?॥ ४॥

दो०—तब हनुमंत उभय दिसि की सब कथा सुनाइ।
पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति दृढ़ाइ॥ ४॥

तब हनुमान्‌जीने दोनों ओरकी सब कथा सुनाकर अग्निको साक्षी देकर परस्पर दृढ़ करके प्रीति जोड़ दी (अर्थात् अग्निकी साक्षी देकर प्रतिज्ञापूर्वक उनकी मैत्री करवा दी)॥ ४॥

चौ०—कीन्हि प्रीति कछु बीच न राखा। लछिमन राम चरित सब भाषा॥
कह सुग्रीव नयन भरि बारी। मिलिहि नाथ मिथिलेसकुमारी॥ १॥

दोनोंने [हृदयसे] प्रीति की, कुछ भी अन्तर नहीं रक्खा। तब लक्ष्मणजीने श्रीरामचन्द्रजीका सारा इतिहास कहा। सुग्रीवने नेत्रोंमें जल भरकर कहा—हे नाथ! मिथिलेशकुमारी जानकीजी मिल जायँगी॥ १॥

मंत्रिन्ह सहित इहाँ एक बारा। बैठ रहेउँ मैं करत बिचारा॥
गगन पंथ देखी मैं जाता। परबस परी बहुत बिलपाता॥ २॥

मैं एक बार यहाँ मन्त्रियोंके साथ बैठा हुआ कुछ विचार कर रहा था। तब मैंने पराये (शत्रु) के वशमें पड़ी बहुत विलाप करती हुई सीताजीको आकाशमार्गसे जाते देखा था॥ २॥

राम राम हा राम पुकारी। हमहि देखि दीन्हेउ पट डारी॥
मागा राम तुरत तेहिं दीन्हा। पट उर लाइ सोच अति कीन्हा॥ ३॥

हमें देखकर उन्होंने 'राम! राम! हा राम!' पुकारकर वस्त्र गिरा दिया था। श्रीरामजीने उसे माँगा, तब सुग्रीवने तुरंत ही दे दिया। वस्त्रको हृदयसे लगाकर रामचन्द्रजीने बहुत ही सोच किया॥ ३॥

कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। तजहु सोच मन आनहु धीरा॥
सब प्रकार करिहउँ सेवकाई। जेहि बिधि मिलिहि जानकी आई॥ ४॥

सुग्रीवने कहा—हे रघुवीर! सुनिये। सोच छोड़ दीजिये और मनमें धीरज लाइये। मैं सब प्रकारसे आपकी सेवा करूँगा, जिस उपायसे जानकीजी आकर आपको मिलें॥ ४॥

दो०—सखा बचन सुनि हरषे कृपासिंधु बलसींव।
कारन कवन बसहु बन मोहि कहहु सुग्रीव॥ ५॥

कृपाके समुद्र और बलकी सीमा श्रीरामजी सखा सुग्रीवके वचन सुनकर हर्षित हुए। [और बोले—] हे सुग्रीव! मुझे बताओ, तुम वनमें किस कारण रहते हो?॥ ५॥

चौ०—नाथ बालि अरु मैं द्वौ भाई। प्रीति रही कछु बरनि न जाई॥
मयसुत मायावी तेहि नाऊँ। आवा सो प्रभु हमरें गाऊँ॥ १॥

[सुग्रीवने कहा—] हे नाथ! बालि और मैं दो भाई हैं। हम दोनोंमें ऐसी प्रीति थी कि वर्णन नहीं की जा सकती। हे प्रभो! मय दानवका एक पुत्र था, उसका नाम मायावी था। एक बार वह हमारे गाँवमें आया॥ १॥

अर्ध राति पुर द्वार पुकारा। बाली रिपु बल सहै न पारा॥
धावा बालि देखि सो भागा। मैं पुनि गयउँ बंधु सँग लागा॥ २॥

उसने आधी रातको नगरके फाटकपर आकर पुकारा (ललकारा)। बालि शत्रुके बल (ललकार) को सह नहीं सका। वह दौड़ा, उसे देखकर मायावी भागा। मैं भी भाईके संग लगा चला गया॥ २॥

गिरिबर गुहाँ पैठ सो जाई। तब बालीं मोहि कहा बुझाई॥
परिखेसु मोहि एक पखवारा। नहिं आवौं तब जानेसु मारा॥ ३॥

वह मायावी एक पर्वतकी गुफामें जा घुसा। तब बालिने मुझे समझाकर कहा—तुम एक पखवाड़े (पंद्रह दिन) तक मेरी बाट देखना। यदि मैं उतने दिनोंमें न आऊँ तो जान लेना कि मैं मारा गया॥ ३॥

मास दिवस तहँ रहेउँ खरारी। निसरी रुधिर धार तहँ भारी॥
बालि हतेसि मोहि मारिहि आई। सिला देइ तहँ चलेउँ पराई॥ ४॥

हे खरारि! मैं वहाँ महीनेभरतक रहा। वहाँ (उस गुफामेंसे) रक्तकी बड़ी भारी धारा निकली। तब [मैंने समझा कि] उसने बालिको मार डाला, अब आकर मुझे मारेगा। इसलिये मैं वहाँ (गुफाके द्वारपर) एक शिला लगाकर भाग आया॥ ४॥

मंत्रिन्ह पुर देखा बिनु साईं। दीन्हेउ मोहि राज बरिआईं॥
बाली ताहि मारि गृह आवा। देखि मोहि जियँ भेद बढ़ावा॥ ५॥

मन्त्रियोंने नगरको बिना स्वामी (राजा) का देखा, तो मुझको जबर्दस्ती राज्य दे दिया। बालि उसे मारकर घर आ गया। मुझे [राजसिंहासनपर] देखकर उसने जीमें भेद बढ़ाया (बहुत ही विरोध माना)। [उसने समझा कि यह राज्यके लोभसे ही गुफाके द्वारपर शिला दे आया था, जिससे मैं बाहर न निकल सकूँ; और यहाँ आकर राजा बन बैठा]॥ ५॥

रिपु सम मोहि मारेसि अति भारी। हरि लीन्हेसि सर्बसु अरु नारी॥
ताकें भय रघुबीर कृपाला। सकल भुवन मैं फिरेउँ बिहाला॥ ६॥

उसने मुझे शत्रुके समान बहुत अधिक मारा और मेरा सर्वस्व तथा मेरी स्त्रीको भी छीन लिया। हे कृपालु रघुवीर! मैं उसके भयसे समस्त लोकोंमें बेहाल होकर फिरता रहा॥ ६॥

इहाँ साप बस आवत नाहीं। तदपि सभीत रहउँ मन माहीं॥
सुनि सेवक दुख दीनदयाला। फरकि उठीं द्वै भुजा बिसाला॥ ७॥

वह शापके कारण यहाँ नहीं आता, तो भी मैं मनमें भयभीत रहता हूँ। सेवकका दुःख सुनकर दीनोंपर दया करनेवाले श्रीरघुनाथजीकी दोनों विशाल भुजाएँ फड़क उठीं॥ ७॥

दो०—सुनु सुग्रीव मारिहउँ बालिहि एकहिं बान।
ब्रह्म रुद्र सरनागत गएँ न उबरिहिं प्रान॥ ६॥

[उन्होंने कहा—] हे सुग्रीव! सुनो, मैं एक ही बाणसे बालिको मार डालूँगा। ब्रह्मा और रुद्रकी शरणमें जानेपर भी उसके प्राण न बचेंगे॥ ६॥

चौ०—जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहि बिलोकत पातक भारी॥
निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्रक दुख रज मेरु समाना॥ १॥

जो लोग मित्रके दुःखसे दुखी नहीं होते, उन्हें देखनेसे ही बड़ा पाप लगता है। अपने पर्वतके समान दुःखको धूलके समान और मित्रके धूलके समान दुःखको सुमेरु (बड़े भारी पर्वत) के समान जाने॥ १॥

जिन्ह कें असि मति सहज न आई। ते सठ कत हठि करत मिताई॥
कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। गुन प्रगटै अवगुनन्हि दुरावा॥ २॥

जिन्हें स्वभावसे ही ऐसी बुद्धि प्राप्त नहीं है, वे मूर्ख हठ करके क्यों किसीसे मित्रता करते हैं? मित्रका धर्म है कि वह मित्रको बुरे मार्गसे रोककर अच्छे मार्गपर चलावे। उसके गुण प्रकट करे और अवगुणोंको छिपावे॥ २॥

देत लेत मन संक न धरई। बल अनुमान सदा हित करई॥
बिपति काल कर सतगुन नेहा। श्रुति कह संत मित्र गुन एहा॥ ३॥

देने-लेनेमें मनमें शंका न रक्खे। अपने बलके अनुसार सदा हित ही करता रहे। विपत्तिके समयमें तो सदा सौगुना स्नेह करे। वेद कहते हैं कि संत (श्रेष्ठ) मित्रके गुण (लक्षण) ये हैं॥ ३॥

आगें कह मृदु बचन बनाई। पाछें अनहित मन कुटिलाई॥
जा कर चित अहि गति सम भाई। अस कुमित्र परिहरेहिं भलाई॥ ४॥

जो सामने तो बना-बनाकर कोमल वचन कहता है और पीठ-पीछे बुराई करता है तथा मनमें कुटिलता रखता है—हे भाई! [इस तरह] जिसका मन साँपकी चालके समान टेढ़ा है, ऐसे कुमित्रको तो त्यागनेमें ही भलाई है॥ ४॥

सेवक सठ नृप कृपन कुनारी। कपटी मित्र सूल सम चारी॥
सखा सोच त्यागहु बल मोरें। सब बिधि घटब काज मैं तोरें॥ ५॥

मूर्ख सेवक, कंजूस राजा, कुलटा स्त्री और कपटी मित्र—ये चारों शूलके समान [पीड़ा देनेवाले] हैं। हे सखा! मेरे बलपर अब तुम चिन्ता छोड़ दो। मैं सब प्रकारसे तुम्हारे काम आऊँगा (तुम्हारी सहायता करूँगा)॥ ५॥

कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। बालि महाबल अति रनधीरा॥
दुंदुभि अस्थि ताल देखराए। बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाए॥ ६॥

सुग्रीवने कहा—हे रघुवीर! सुनिये, बालि महान् बलवान् और अत्यन्त रणधीर है। फिर सुग्रीवने श्रीरामजीको दुन्दुभि राक्षसकी हड्डियाँ और तालके वृक्ष दिखलाये। श्रीरघुनाथजीने उन्हें बिना ही परिश्रमके (आसानीसे) ढहा दिया॥ ६॥

देखि अमित बल बाढ़ी प्रीती। बालि बधब इन्ह भइ परतीती॥
बार बार नावइ पद सीसा। प्रभुहि जानि मन हरष कपीसा॥ ७॥

श्रीरामजीका अपरिमित बल देखकर सुग्रीवकी प्रीति बढ़ गयी और उन्हें विश्वास हो गया कि ये बालिका वध अवश्य करेंगे। वे बार-बार चरणोंमें सिर नवाने लगे। प्रभुको पहचानकर सुग्रीव मनमें हर्षित हो रहे थे॥ ७॥

उपजा ग्यान बचन तब बोला। नाथ कृपाँ मन भयउ अलोला॥
सुख संपति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहउँ सेवकाई॥ ८॥

जब ज्ञान उत्पन्न हुआ तब वे ये वचन बोले कि हे नाथ! आपकी कृपासे अब मेरा मन स्थिर हो गया। सुख, सम्पत्ति, परिवार और बड़ाई (बड़प्पन) सबको त्यागकर मैं आपकी सेवा ही करूँगा॥ ८॥

ए सब राम भगति के बाधक। कहहिं संत तव पद अवराधक॥
सत्रु मित्र सुख दुख जग माहीं। मायाकृत परमारथ नाहीं॥ ९॥

क्योंकि आपके चरणोंकी आराधना करनेवाले संत कहते हैं कि ये सब (सुख-सम्पत्ति आदि) रामभक्तिके विरोधी हैं। जगत्‌में जितने भी शत्रु-मित्र और सुख-दुःख [आदि द्वन्द्व] हैं, सब-के-सब मायारचित हैं, परमार्थतः (वास्तवमें) नहीं हैं॥ ९॥

बालि परम हित जासु प्रसादा। मिलेहु राम तुम्ह समन बिषादा॥
सपनें जेहि सन होइ लराई। जागें समुझत मन सकुचाई॥ १०॥

हे श्रीरामजी ! बालि तो मेरा परम हितकारी है, जिसकी कृपासे शोकका नाश करनेवाले आप मुझे मिले; और जिसके साथ अब स्वप्नमें भी लड़ाई हो तो जागनेपर उसे समझकर मनमें संकोच होगा [कि स्वप्नमें भी मैं उससे क्यों लड़ा] ॥ १० ॥

अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती। सब तजि भजनु करौं दिन राती ॥
सुनि बिराग संजुत कपि बानी। बोले बिहँसि रामु धनुपानी ॥ ११ ॥

हे प्रभो ! अब तो इस प्रकार कृपा कीजिये कि सब छोड़कर दिन-रात मैं आपका भजन ही करूँ। सुग्रीवकी वैराग्ययुक्त वाणी सुनकर (उसके क्षणिक वैराग्यको देखकर) हाथमें धनुष धारण करनेवाले श्रीरामजी मुस्कराकर बोले— ॥ ११ ॥

जो कछु कहेहु सत्य सब सोई। सखा बचन मम मृषा न होई ॥
नट मरकट इव सबहि नचावत। रामु खगेस बेद अस गावत ॥ १२ ॥

तुमने जो कुछ कहा है, वह सभी सत्य है; परन्तु हे सखा ! मेरा वचन मिथ्या नहीं होता (अर्थात् बालि मारा जायगा और तुम्हें राज्य मिलेगा) । [काकभुशुण्डिजी कहते हैं कि—] हे पक्षियोंके राजा गरुड़ ! नट (मदारी) के बंदरकी तरह श्रीरामजी सबको नचाते हैं, वेद ऐसा कहते हैं ॥ १२ ॥

लै सुग्रीव संग रघुनाथा। चले चाप सायक गहि हाथा ॥
तब रघुपति सुग्रीव पठावा। गर्जेसि जाइ निकट बल पावा ॥ १३ ॥

तदनन्तर सुग्रीवको साथ लेकर और हाथोंमें धनुष-बाण धारण करके श्रीरघुनाथजी चले। तब श्रीरघुनाथजीने सुग्रीवको बालिके पास भेजा। वह श्रीरामजीका बल पाकर बालिके निकट जाकर गरजा ॥ १३ ॥

सुनत बालि क्रोधातुर धावा। गहि कर चरन नारि समुझावा ॥
सुनु पति जिन्हहि मिलेउ सुग्रीवा। ते द्वौ बंधु तेज बल सींवा ॥ १४ ॥

बालि सुनते ही क्रोधमें भरकर वेगसे दौड़ा। उसकी स्त्री ताराने चरण पकड़कर उसे समझाया कि हे नाथ ! सुनिये, सुग्रीव जिनसे मिले हैं वे दोनों भाई तेज और बलकी सीमा हैं ॥ १४ ॥

कोसलेस सुत लछिमन रामा। कालहु जीति सकहिं संग्रामा ॥ १५ ॥

वे कोसलाधीश दशरथजीके पुत्र राम और लक्ष्मण संग्राममें कालको भी जीत सकते हैं ॥ १५ ॥

दो०—कह बाली सुनु भीरु प्रिय समदरसी रघुनाथ।
जौं कदाचि मोहि मारहिं तौ पुनि होउँ सनाथ ॥ ७ ॥

बालिने कहा—हे भीरु ! (डरपोक) प्रिये ! सुनो, श्रीरघुनाथजी समदर्शी हैं। जो कदाचित् वे मुझे मारेंगे ही तो मैं सनाथ हो जाऊँगा (परमपद पा जाऊँगा) ॥ ७ ॥

चौ०—अस कहि चला महा अभिमानी। तृन समान सुग्रीवहि जानी ॥
भिरे उभौ बाली अति तर्जा। मुठिका मारि महाधुनि गर्जा ॥ १ ॥

ऐसा कहकर वह महान् अभिमानी बालि सुग्रीवको तिनकेके समान जानकर चला। दोनों भिड़ गये। बालिने सुग्रीवको बहुत धमकाया और घूँसा मारकर बड़े जोरसे गरजा ॥ १ ॥

तब सुग्रीव बिकल होइ भागा। मुष्टि प्रहार बज्र सम लागा ॥
मैं जो कहा रघुबीर कृपाला। बंधु न होइ मोर यह काला ॥ २ ॥

तब सुग्रीव व्याकुल होकर भागा। घूँसेकी चोट उसे वज्रके समान लगी। [सुग्रीवने आकर कहा—] हे कृपालु रघुवीर! मैंने आपसे पहले ही कहा था कि बालि मेरा भाई नहीं है, काल है॥ २॥

एकरूप तुम्ह भ्राता दोऊ। तेहि भ्रम तें नहिं मारेउँ सोऊ॥
कर परसा सुग्रीव सरीरा। तनु भा कुलिस गई सब पीरा॥ ३॥

[श्रीरामजीने कहा—] तुम दोनों भाइयोंका एक-सा ही रूप है। इसी भ्रमसे मैंने उसको नहीं मारा। फिर श्रीरामजीने सुग्रीवके शरीरको हाथसे स्पर्श किया, जिससे उसका शरीर वज्रके समान हो गया और सारी पीड़ा जाती रही॥ ३॥

मेली कंठ सुमन कै माला। पठवा पुनि बल देइ बिसाला॥
पुनि नाना बिधि भई लराई। बिटप ओट देखहिं रघुराई॥ ४॥

तब श्रीरामजीने सुग्रीवके गलेमें फूलोंकी माला डाल दी और फिर उसे बड़ा भारी बल देकर भेजा। दोनोंमें पुनः अनेक प्रकारसे युद्ध हुआ। श्रीरघुनाथजी वृक्षकी आड़से देख रहे थे॥ ४॥

दो०—बहु छल बल सुग्रीव कर हियँ हारा भय मानि।
मारा बालि राम तब हृदय माझ सर तानि॥ ८॥

सुग्रीवने बहुत-से छल-बल किये, किन्तु [अन्तमें] भय मानकर हृदयसे हार गया। तब श्रीरामजीने तानकर बालिके हृदयमें बाण मारा॥ ८॥

चौ०—परा बिकल महि सर के लागें। पुनि उठि बैठ देखि प्रभु आगें॥
स्याम गात सिर जटा बनाएँ। अरुन नयन सर चाप चढ़ाएँ॥ १॥

बाणके लगते ही बालि व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। किन्तु प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको आगे देखकर वह फिर उठ बैठा। भगवान्‌का श्याम शरीर है, सिरपर जटा बनाये हैं, लाल नेत्र हैं, बाण लिये हैं और धनुष चढ़ाये हैं॥ १॥

पुनि पुनि चितइ चरन चित दीन्हा। सुफल जन्म माना प्रभु चीन्हा॥
हृदयँ प्रीति मुख बचन कठोरा। बोला चितइ राम की ओरा॥ २॥

बालिने बार-बार भगवान्‌की ओर देखकर चित्तको उनके चरणोंमें लगा दिया। प्रभुको पहचानकर उसने अपना जन्म सफल माना। उसके हृदयमें प्रीति थी, पर मुखमें कठोर वचन थे। वह श्रीरामजीकी ओर देखकर बोला— ॥ २॥

धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं। मारेहु मोहि ब्याध की नाईं॥
मैं बैरी सुग्रीव पिआरा। अवगुन कवन नाथ मोहि मारा॥ ३॥

हे गोसाईं! आपने धर्मकी रक्षाके लिये अवतार लिया है और मुझे व्याधकी तरह (छिपकर) मारा? मैं वैरी और सुग्रीव प्यारा? हे नाथ! किस दोषसे आपने मुझे मारा?॥ ३॥

अनुज बधू भगिनी सुत नारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी॥
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई। ताहि बधें कछु पाप न होई॥ ४॥

[श्रीरामजीने कहा—] हे मूर्ख! सुन, छोटे भाईकी स्त्री, बहिन, पुत्रकी स्त्री और कन्या—ये चारों समान हैं। इनको जो कोई बुरी दृष्टिसे देखता है, उसे मारनेमें कुछ भी पाप नहीं होता॥ ४॥

मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना। नारि सिखावन करसि न काना॥
मम भुज बल आश्रित तेहि जानी। मारा चहसि अधम अभिमानी॥ ५॥

हे मूढ़! तुझे अत्यन्त अभिमान है। तूने अपनी स्त्रीकी सीखपर भी कान (ध्यान) नहीं दिया। सुग्रीवको मेरी भुजाओंके बलका आश्रित जानकर भी अरे अधम अभिमानी! तूने उसको मारना चाहा॥ ५॥

दो०—सुनहु राम स्वामी सन चल न चातुरी मोरि।
प्रभु अजहूँ मैं पापी अंतकाल गति तोरि॥ ९॥

[बालिने कहा—] हे श्रीरामजी! सुनिये, स्वामी (आप) से मेरी चतुराई नहीं चल सकती। हे प्रभो! अन्तकालमें आपकी गति (शरण) पाकर मैं अब भी पापी ही रहा?॥ ९॥

चौ०—सुनत राम अति कोमल बानी। बालि सीस परसेउ निज पानी॥
अचल करौं तनु राखहु प्राना। बालि कहा सुनु कृपानिधाना॥ १॥

बालिकी अत्यन्त कोमल वाणी सुनकर श्रीरामजीने उसके सिरको अपने हाथसे स्पर्श किया [और कहा—] मैं तुम्हारे शरीरको अचल कर दूँ, तुम प्राणोंको रक्खो। बालिने कहा—हे कृपानिधान! सुनिये॥ १॥

जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं॥
जासु नाम बल संकर कासी। देत सबहि सम गति अबिनासी॥ २॥

मुनिगण जन्म-जन्ममें (प्रत्येक जन्ममें) [अनेकों प्रकारका] साधन करते रहते हैं। फिर भी अन्तकालमें उन्हें 'राम' नहीं कह आता (उनके मुखसे रामनाम नहीं निकलता)। जिनके नामके बलसे शंकरजी काशीमें सबको समानरूपसे अविनाशिनी गति (मुक्ति) देते हैं॥ २॥

मम लोचन गोचर सोइ आवा। बहुरि कि प्रभु अस बनिहि बनावा॥ ३॥

वह श्रीरामजी स्वयं मेरे नेत्रोंके सामने आ गये हैं। हे प्रभो! ऐसा संयोग क्या फिर कभी बन पड़ेगा॥ ३॥

छं०—सो नयन गोचर जासु गुन नित नेति कहि श्रुति गावहीं।
जिति पवन मन गो निरस करि मुनि ध्यान कबहुँक पावहीं॥
मोहि जानि अति अभिमान बस प्रभु कहेउ राखु सरीरही।
अस कवन सठ हठि काटि सुरतरु बारि करिहि बबूरही॥ १॥

श्रुतियाँ 'नेति-नेति' कहकर निरन्तर जिनका गुणगान करती रहती हैं, तथा प्राण और मनको जीतकर एवं इन्द्रियोंको [विषयोंके रससे सर्वथा] नीरस बनाकर मुनिगण ध्यानमें जिनकी कभी कचित् ही झलक पाते हैं, वे ही प्रभु (आप) साक्षात् मेरे सामने प्रकट हैं। आपने मुझे अत्यन्त अभिमानवश जानकर यह कहा कि तुम शरीर रख लो। परन्तु ऐसा मूर्ख कौन होगा जो हठपूर्वक कल्पवृक्षको काटकर उससे बबूरके बाड़ लगावेगा (अर्थात् पूर्णकाम बना देनेवाले आपको छोड़कर आपसे इस नश्वर शरीरकी रक्षा चाहेगा?)॥ १॥

अब नाथ करि करुना बिलोकहु देहु जो बर मागऊँ।
जेहिं जोनि जन्मौं कर्म बस तहँ राम पद अनुरागऊँ॥
यह तनय मम सम बिनय बल कल्यानप्रद प्रभु लीजिऐ।
गहि बाँह सुर नर नाह आपन दास अंगद कीजिऐ॥२॥

हे नाथ ! अब मुझपर दयादृष्टि कीजिये और मैं जो वर माँगता हूँ उसे दीजिये। मैं कर्मवश जिस योनिमें जन्म लूँ वहीं श्रीरामजी (आप) के चरणोंमें प्रेम करूँ ! हे कल्याणप्रद प्रभो ! यह मेरा पुत्र अंगद विनय और बलमें मेरे ही समान है, इसे स्वीकार कीजिये। और हे देवता और मनुष्योंके नाथ ! बाँह पकड़कर इसे अपना दास बनाइये ॥ २ ॥

दो०—राम चरन दृढ़ प्रीति करि बालि कीन्ह तनु त्याग।
सुमन माल जिमि कंठ ते गिरत न जानइ नाग ॥ १० ॥

श्रीरामजीके चरणोंमें दृढ़ प्रीति करके बालिने शरीरको वैसे ही (आसानीसे) त्याग दिया जैसे हाथी अपने गलेसे फूलोंकी मालाका गिरना न जाने ॥ १० ॥

चौ०—राम बालि निज धाम पठावा। नगर लोग सब ब्याकुल धावा ॥
नाना बिधि बिलाप कर तारा। छूटे केस न देह सँभारा ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने बालिको अपने परम धाम भेज दिया। नगरके सब लोग व्याकुल होकर दौड़े। बालिकी स्त्री तारा अनेकों प्रकारसे विलाप करने लगी। उसके बाल बिखरे हुए हैं और देहकी सँभाल नहीं है ॥ १ ॥

तारा बिकल देखि रघुराया। दीन्ह ग्यान हरि लीन्ही माया ॥
छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा ॥ २ ॥

ताराको व्याकुल देखकर श्रीरघुनाथजीने उसे ज्ञान दिया और उसकी माया (अज्ञान) हर ली। [उन्होंने कहा—] पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु—इन पाँच तत्त्वोंसे यह अत्यन्त अधम शरीर रचा गया है ॥ २ ॥

प्रगट सो तनु तव आगें सोवा। जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा ॥
उपजा ग्यान चरन तब लागी। लीन्हेसि परम भगति बर मागी ॥ ३ ॥

वह शरीर तो प्रत्यक्ष तुम्हारे सामने सोया हुआ है, और जीव नित्य है। फिर तुम किसके लिये रो रही हो ? जब ज्ञान उत्पन्न हो गया, तब वह भगवान्‌के चरणों लगी और उसने परम भक्तिका वर माँग लिया ॥ ३ ॥

उमा दारु जोषित की नाईं। सबहि नचावत रामु गोसाईं ॥
तब सुग्रीवहि आयसु दीन्हा। मृतक कर्म बिधिवत सब कीन्हा ॥ ४ ॥

[शिवजी कहते हैं—] हे उमा ! स्वामी श्रीरामजी सबको कठपुतलीकी तरह नचाते हैं। तदनन्तर श्रीरामजीने सुग्रीवको आज्ञा दी और सुग्रीवने विधिपूर्वक बालिका सब मृतक-कर्म किया ॥ ४ ॥

राम कहा अनुजहि समुझाई। राज देहु सुग्रीवहि जाई ॥
रघुपति चरन नाइ करि माथा। चले सकल प्रेरित रघुनाथा ॥ ५ ॥

तब श्रीरामचन्द्रजीने छोटे भाई लक्ष्मणको समझाकर कहा कि तुम जाकर सुग्रीवको राज्य दे दो। श्रीरघुनाथजीकी प्रेरणा (आज्ञा) से सब लोग श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें मस्तक नवाकर चले ॥ ५ ॥

दो०—लछिमन तुरत बोलाए पुरजन बिप्र समाज।
राजु दीन्ह सुग्रीव कहँ अंगद कहँ जुबराज ॥ ११ ॥

लक्ष्मणजीने तुरंत ही सब नगरनिवासियोंको और ब्राह्मणोंके समाजको बुला लिया और [उनके सामने] सुग्रीवको राज्य और अंगदको युवराज-पद दिया ॥ ११ ॥

चौ०—उमा राम सम हित जग माहीं। गुरु पितु मातु बंधु प्रभु नाहीं ॥
सुर नर मुनि सब कै यह रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती ॥ १ ॥

हे पार्वती ! जगत्‌में श्रीरामजीके समान हित करनेवाला गुरु, पिता, माता, बन्धु और स्वामी कोई नहीं है। देवता, मनुष्य और मुनि सबकी यह रीति है कि स्वार्थके लिये ही सब प्रीति करते हैं ॥ १ ॥

बालि त्रास ब्याकुल दिन राती। तन बहु ब्रन चिंताँ जर छाती ॥
सोइ सुग्रीव कीन्ह कपि राऊ। अति कृपाल रघुबीर सुभाऊ ॥ २ ॥

जो सुग्रीव दिन-रात बालिके भयसे व्याकुल रहता था, जिसके शरीरमें बहुत-से घाव हो गये थे और जिसकी छाती चिन्ताके मारे जला करती थी, उसी सुग्रीवको उन्होंने वानरोंका राजा बना दिया। श्रीरामचन्द्रजीका स्वभाव अत्यन्त ही कृपालु है ॥ २ ॥

जानतहूँ अस प्रभु परिहरहीं। काहे न बिपति जाल नर परहीं ॥
पुनि सुग्रीवहि लीन्ह बोलाई। बहु प्रकार नृपनीति सिखाई ॥ ३ ॥

जो लोग जानते हुए भी ऐसे प्रभुको त्याग देते हैं, वे क्यों न विपत्तिके जालमें फँसें ? फिर श्रीरामजीने सुग्रीवको बुला लिया और बहुत प्रकारसे उन्हें राजनीतिकी शिक्षा दी ॥ ३ ॥

कह प्रभु सुनु सुग्रीव हरीसा। पुर न जाउँ दस चारि बरीसा ॥
गत ग्रीषम बरषा रितु आई। रहिहउँ निकट सैल पर छाई ॥ ४ ॥

फिर प्रभुने कहा—हे वानरपति सुग्रीव ! सुनो, मैं चौदह वर्षतक गाँव (बस्ती) में नहीं जाऊँगा। ग्रीष्मऋतु बीतकर वर्षाऋतु आ गयी। अतः मैं यहाँ पास ही पर्वतपर टिक रहूँगा ॥ ४ ॥

अंगद सहित करहु तुम्ह राजू। संतत हृदयँ धरेहु मम काजू ॥
जब सुग्रीव भवन फिरि आए। रामु प्रबरषन गिरि पर छाए ॥ ५ ॥

तुम अंगदसहित राज्य करो। मेरे कामका हृदयमें सदा ध्यान रखना। तदनन्तर जब सुग्रीवजी घर लौट आये, तब श्रीरामजी प्रवर्षण पर्वतपर जा टिके ॥ ५ ॥

दो०—प्रथमहिं देवन्ह गिरि गुहा राखेउ रुचिर बनाइ।
राम कृपानिधि कछु दिन बास करहिंगे आइ ॥ १२ ॥

देवताओंने पहलेसे ही उस पर्वतकी एक गुफाको सुन्दर बना (सजा) रक्खा था। उन्होंने सोच रक्खा था कि कृपाकी खान श्रीरामजी कुछ दिन यहाँ आकर निवास करेंगे ॥ १२ ॥

चौ०—सुंदर बन कुसुमित अति सोभा। गुंजत मधुप निकर मधु लोभा ॥
कंद मूल फल पत्र सुहाए। भए बहुत जब ते प्रभु आए ॥ १ ॥

सुन्दर वन फूला हुआ अत्यन्त सुशोभित है। मधुके लोभसे भौंरोंके समूह गुंजार कर रहे हैं। जबसे प्रभु आये, तबसे वनमें सुन्दर कन्द, मूल, फल और पत्तोंकी बहुतायत हो गयी ॥ १ ॥

देखि मनोहर सैल अनूपा। रहे तहँ अनुज सहित सुरभूपा ॥
मधुकर खग मृग तनु धरि देवा। करहिं सिद्ध मुनि प्रभु कै सेवा ॥ २ ॥

मनोहर और अनुपम पर्वतको देखकर देवताओंके सम्राट् श्रीरामजी छोटे भाईसहित वहाँ रह

गये। देवता, सिद्ध और मुनि भौंरों, पक्षियों और पशुओंके शरीर धारण करके प्रभुकी सेवा करने लगे॥ २॥

मंगलरूप भयउ बन तब ते। कीन्ह निवास रमापति जब ते॥
फटिक सिला अति सुभ्र सुहाई। सुख आसीन तहाँ द्वौ भाई॥ ३॥

जबसे रमापति श्रीरामजीने वहाँ निवास किया तबसे वन मङ्गलस्वरूप हो गया। सुन्दर स्फटिकमणिकी एक अत्यन्त उज्ज्वल शिला है, उसपर दोनों भाई सुखपूर्वक विराजमान हैं॥ ३॥

कहत अनुज सन कथा अनेका। भगति बिरति नृपनीति बिबेका॥
बरषा काल मेघ नभ छाए। गरजत लागत परम सुहाए॥ ४॥

श्रीरामजी छोटे भाई लक्ष्मणजीसे भक्ति, वैराग्य, राजनीति और ज्ञानकी अनेकों कथाएँ कहते हैं। वर्षाकालमें आकाशमें छाये हुए बादल गरजते हुए बहुत ही सुहावने लगते हैं॥ ४॥

दो०—लछिमन देखु मोर गन नाचत बारिद पेखि।
गृही बिरति रत हरष जस बिष्नुभगत कहुँ देखि॥ १३॥

[श्रीरामजी कहने लगे—] हे लक्ष्मण! देखो, मोरोंके झुंड बादलोंको देखकर नाच रहे हैं। जैसे वैराग्यमें अनुरक्त गृहस्थ किसी विष्णुभक्तको देखकर हर्षित होते हैं॥ १३॥

चौ०—घन घमंड नभ गरजत घोरा। प्रिया हीन डरपत मन मोरा॥
दामिनि दमक रह न घन माहीं। खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं॥ १॥

आकाशमें बादल घुमड़-घुमड़कर घोर गर्जना कर रहे हैं, प्रिया (सीताजी) के बिना मेरा मन डर रहा है। बिजलीकी चमक बादलोंमें ठहरती नहीं, जैसे दुष्टकी प्रीति स्थिर नहीं रहती॥ १॥

बरषहिं जलद भूमि निअराएँ। जथा नवहिं बुध बिद्या पाएँ॥
बूँद अघात सहहिं गिरि कैसें। खल के बचन संत सह जैसें॥ २॥

बादल पृथ्वीके समीप आकर (नीचे उतरकर) बरस रहे हैं, जैसे विद्या पाकर विद्वान् नम्र हो जाते हैं। बूँदोंकी चोट पर्वत कैसे सहते हैं, जैसे दुष्टोंके वचन संत सहते हैं॥ २॥

छुद्र नदीं भरि चलीं तोराई। जस थोरेहुँ धन खल इतराई॥
भूमि परत भा ढाबर पानी। जनु जीवहि माया लपटानी॥ ३॥

छोटी नदियाँ भरकर [किनारोंको] तुड़ाती हुई चलीं, जैसे थोड़े धनसे भी दुष्ट इतरा जाते हैं (मर्यादा का त्याग कर देते हैं)। पृथ्वीपर पड़ते ही पानी गँदला हो गया है, जैसे शुद्ध जीवके माया लिपट गयी हो॥ ३॥

समिटि समिटि जल भरहिं तलावा। जिमि सदगुन सज्जन पहिं आवा॥
सरिता जल जलनिधि महुँ जाई। होइ अचल जिमि जिव हरि पाई॥ ४॥

जल एकत्र हो-होकर तालाबोंमें भर रहा है, जैसे सद्गुण [एक-एककर] सज्जनके पास चले आते हैं। नदीका जल समुद्रमें जाकर वैसे ही स्थिर हो जाता है, जैसे जीव श्रीहरिको पाकर अचल (आवागमनसे मुक्त) हो जाता है॥ ४॥

दो०—हरित भूमि तृन संकुल समुझि परहिं नहिं पंथ।
जिमि पाखंड बाद तें गुप्त होहिं सदग्रंथ॥ १४॥

पृथ्वी घाससे परिपूर्ण होकर हरी हो गयी है, जिससे रास्ते समझ नहीं पड़ते। जैसे पाखण्ड-मतके प्रचारसे सद्ग्रन्थ गुप्त (लुप्त) हो जाते हैं॥ १४॥

चौ०—दादुर धुनि चहु दिसा सुहाई। बेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई॥
नव पल्लव भए बिटप अनेका। साधक मन जस मिलें बिबेका॥ १॥

चारों दिशाओंमें मेढकोंकी ध्वनि ऐसी सुहावनी लगती है, मानो विद्यार्थियोंके समुदाय वेद पढ़ रहे हों। अनेकों वृक्षोंमें नये पत्ते आ गये हैं, जिससे वे ऐसे हरे-भरे एवं सुशोभित हो गये हैं जैसे साधकका मन विवेक (ज्ञान) प्राप्त होनेपर हो जाता है॥ १॥

अर्क जवास पात बिनु भयऊ। जस सुराज खल उद्यम गयऊ॥
खोजत कतहुँ मिलइ नहिं धूरी। करइ क्रोध जिमि धरमहि दूरी॥ २॥

मदार और जवासा बिना पत्तेके हो गये (उनके पत्ते झड़ गये)। जैसे श्रेष्ठ राज्यमें दुष्टोंका उद्यम जाता रहा (उनकी एक भी नहीं चलती)। धूल कहीं खोजनेपर भी नहीं मिलती, जैसे क्रोध धर्मको दूर कर देता है (अर्थात् क्रोधका आवेश होनेपर धर्मका ज्ञान नहीं रह जाता)॥ २॥

ससि संपन्न सोह महि कैसी। उपकारी कै संपति जैसी॥
निसि तम घन खद्योत बिराजा। जनु दंभिन्ह कर मिला समाजा॥ ३॥

अन्नसे युक्त (लहराती हुई खेतीसे हरी-भरी) पृथ्वी कैसी शोभित हो रही है, जैसी उपकारी पुरुषकी सम्पत्ति। रातके घने अन्धकारमें जुगनू शोभा पा रहे हैं, मानो दम्भियोंका समाज आ जुटा हो॥ ३॥

महाबृष्टि चलि फूटि किआरीं। जिमि सुतंत्र भएँ बिगरहिं नारीं॥
कृषी निरावहिं चतुर किसाना। जिमि बुध तजहिं मोह मद माना॥ ४॥

भारी वर्षासे खेतोंकी क्यारियाँ फूट चली हैं, जैसे स्वतन्त्र होनेसे स्त्रियाँ बिगड़ जाती हैं। चतुर किसान खेतोंको निरा रहे हैं (उनमेंसे घास आदिको निकालकर फेंक रहे हैं)। जैसे विद्वान् लोग मोह, मद और मानका त्याग कर देते हैं॥ ४॥

देखिअत चक्रबाक खग नाहीं। कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीं॥
ऊषर बरषइ तृन नहिं जामा। जिमि हरिजन हियँ उपज न कामा॥ ५॥

चक्रवाक पक्षी दिखायी नहीं दे रहे हैं; जैसे कलियुगको पाकर धर्म भाग जाते हैं। ऊसरमें वर्षा होती है, पर वहाँ घासतक नहीं उगती। जैसे हरिभक्तके हृदयमें काम नहीं उत्पन्न होता॥ ५॥

बिबिध जंतु संकुल महि भ्राजा। प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा॥
जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना। जिमि इंद्रिय गन उपजें ग्याना॥ ६॥

पृथ्वी अनेक तरहके जीवोंसे भरी हुई उसी तरह शोभायमान है, जैसे सुराज्य पाकर प्रजाकी वृद्धि होती है। जहाँ-तहाँ अनेक पथिक थककर ठहरे हुए हैं, जैसे ज्ञान उत्पन्न होनेपर इन्द्रियाँ [शिथिल होकर विषयोंकी ओर जाना छोड़ देती हैं]॥ ६॥

दो०—कबहुँ प्रबल बह मारुत जहँ तहँ मेघ बिलाहिं।
जिमि कपूत के उपजें कुल सद्धर्म नसाहिं॥ १५ क॥

कभी-कभी वायु बड़े जोरसे चलने लगती है, जिससे बादल जहाँ-तहाँ गायब हो जाते हैं।

जैसे कुपुत्रके उत्पन्न होनेसे कुलके उत्तम धर्म (श्रेष्ठ आचरण) नष्ट हो जाते हैं॥ १५ (क)॥

कबहुँ दिवस महँ निबिड़ तम कबहुँक प्रगट पतंग।
बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि पाइ कुसंग सुसंग॥ १५ ख॥

कभी [बादलोंके कारण] दिनमें घोर अन्धकार छा जाता है और कभी सूर्य प्रकट हो जाते हैं। जैसे कुसंग पाकर ज्ञान नष्ट हो जाता है और सुसंग पाकर उत्पन्न हो जाता है॥ १५ (ख)॥

चौ०—बरषा बिगत सरद रितु आई। लछिमन देखहु परम सुहाई॥
फूलें कास सकल महि छाई। जनु बरषाँ कृत प्रगट बुढ़ाई॥ १॥

हे लक्ष्मण! देखो, वर्षा बीत गयी और परम सुन्दर शरद्ऋतु आ गयी। फूले हुए काससे सारी पृथ्वी छा गयी। मानो वर्षा ऋतुने [कासरूपी सफेद बालोंके रूपमें] अपना बुढ़ापा प्रकट किया है॥ १॥

उदित अगस्ति पंथ जल सोषा। जिमि लोभहि सोषइ संतोषा॥
सरिता सर निर्मल जल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा॥ २॥

अगस्त्यके तारेने उदय होकर मार्गके जलको सोख लिया, जैसे सन्तोष लोभको सोख लेता है। नदियों और तालाबोंका निर्मल जल ऐसी शोभा पा रहा है जैसे मद और मोहसे रहित संतोंका हृदय!॥ २॥

रस रस सूख सरित सर पानी। ममता त्याग करहिं जिमि ग्यानी॥
जानि सरद रितु खंजन आए। पाइ समय जिमि सुकृत सुहाए॥ ३॥

नदी और तालाबोंका जल धीरे-धीरे सूख रहा है। जैसे ज्ञानी (विवेकी) पुरुष ममताका त्याग करते हैं। शरद्ऋतु जानकर खंजन पक्षी आ गये। जैसे समय पाकर सुन्दर सुकृत आ जाते हैं (पुण्य प्रकट हो जाते हैं)॥ ३॥

पंक न रेनु सोह असि धरनी। नीति निपुन नृप कै जसि करनी॥
जल संकोच बिकल भइँ मीना। अबुध कुटुंबी जिमि धनहीना॥ ४॥

न कीचड़ है न धूल; इससे धरती [निर्मल होकर] ऐसी शोभा दे रही है जैसे नीतिनिपुण राजाकी करनी! जलके कम हो जानेसे मछलियाँ व्याकुल हो रही हैं, जैसे मूर्ख (विवेकशून्य) कुटुम्बी (गृहस्थ) धनके बिना व्याकुल होता है॥ ४॥

बिनु घन निर्मल सोह अकासा। हरिजन इव परिहरि सब आसा॥
कहुँ कहुँ बृष्टि सारदी थोरी। कोउ एक पाव भगति जिमि मोरी॥ ५॥

बिना बादलोंका निर्मल आकाश ऐसा शोभित हो रहा है जैसे भगवद्भक्त सब आशाओंको छोड़कर सुशोभित होते हैं। कहीं-कहीं (विरले ही स्थानोंमें) शरद्ऋतुकी थोड़ी-थोड़ी वर्षा हो रही है। जैसे कोई विरले ही मेरी भक्ति पाते हैं॥ ५॥

दो०—चले हरषि तजि नगर नृप तापस बनिक भिखारि।
जिमि हरिभगति पाइ श्रम तजहिं आश्रमी चारि॥ १६॥

[शरदृतु पाकर] राजा, तपस्वी, व्यापारी और भिखारी [क्रमशः विजय, तप, व्यापार और भिक्षाके लिये] हर्षित होकर नगर छोड़कर चले। जैसे श्रीहरिकी भक्ति पाकर चारों आश्रमवाले [नाना प्रकारके साधनरूपी] श्रमोंको त्याग देते हैं॥ १६॥

चौ०—सुखी मीन जे नीर अगाधा। जिमि हरि सरन न एकउ बाधा॥
फूलें कमल सोह सर कैसा। निर्गुन ब्रह्म सगुन भएँ जैसा॥ १॥

जो मछलियाँ अथाह जलमें हैं, वे सुखी हैं, जैसे श्रीहरिके शरणमें चले जानेपर एक भी बाधा नहीं रहती। कमलोंके फूलनेसे तालाब कैसी शोभा दे रहा है, जैसे निर्गुण ब्रह्म सगुण होनेपर शोभित होता है॥ १॥

गुंजत मधुकर मुखर अनूपा। सुंदर खग रव नाना रूपा॥
चक्रबाक मन दुख निसि पेखी। जिमि दुर्जन पर संपति देखी॥ २॥

भौंरे अनुपम शब्द करते हुए गूँज रहे हैं, तथा पक्षियोंके नाना प्रकारके सुन्दर शब्द हो रहे हैं। रात्रि देखकर चकवेके मनमें वैसे ही दुःख हो रहा है, जैसे दूसरेकी सम्पत्ति देखकर दुष्टको होता है॥ २॥

चातक रटत तृषा अति ओही। जिमि सुख लहइ न संकर द्रोही॥
सरदातप निसि ससि अपहरई। संत दरस जिमि पातक टरई॥ ३॥

पपीहा रट लगाये है, उसको बड़ी प्यास है, जैसे श्रीशङ्करजीका द्रोही सुख नहीं पाता (सुखके लिये झीखता रहता है) शरदृऋतुके तापको रातके समय चन्द्रमा हर लेता है, जैसे संतोंके दर्शनसे पाप दूर हो जाते हैं॥ ३॥

देखि इंदु चकोर समुदाई। चितवहिं जिमि हरिजन हरि पाई॥
मसक दंस बीते हिम त्रासा। जिमि द्विज द्रोह किएँ कुल नासा॥ ४॥

चकोरोंके समुदाय चन्द्रमाको देखकर इस प्रकार टकटकी लगाये हैं जैसे भगवद्भक्त भगवान्‌को पाकर उनके [निर्निमेष नेत्रोंसे] दर्शन करते हैं। मच्छर और डाँस जाड़ेके डरसे इस प्रकार नष्ट हो गये जैसे ब्राह्मणके साथ वैर करनेसे कुलका नाश हो जाता है॥ ४॥

दो०—भूमि जीव संकुल रहे गए सरद रितु पाइ।
सदगुर मिलें जाहिं जिमि संसय भ्रम समुदाइ॥ १७॥

[वर्षाऋतुके कारण] पृथ्वीपर जो जीव भर गये थे, वे शरदृऋतुको पाकर वैसे ही नष्ट हो गये जैसे सद्गुरुके मिल जानेपर सन्देह और भ्रमके समूह नष्ट हो जाते हैं॥ १७॥

चौ०—बरषा गत निर्मल रितु आई। सुधि न तात सीता कै पाई॥
एक बार कैसेहुँ सुधि जानौं। कालहु जीति निमिष महुँ आनौं॥ १॥

वर्षा बीत गयी, निर्मल शरदृऋतु आ गयी। परन्तु हे तात! सीताकी कोई खबर नहीं मिली। एक बार कैसे भी पता पाऊँ तो कालको भी जीतकर पलभरमें जानकीको ले आऊँ॥ १॥

कतहुँ रहउ जौं जीवति होई। तात जतन करि आनउँ सोई॥
सुग्रीवहुँ सुधि मोरि बिसारी। पावा राज कोस पुर नारी॥ २॥

कहीं भी रहे, यदि जीती होगी तो हे तात! यत्न करके मैं उसे अवश्य लाऊँगा। राज्य, खजाना, नगर और स्त्री पा गया, इसलिये सुग्रीवने भी मेरी सुध भुला दी॥ २॥

जेहिं सायक मारा मैं बाली। तेहिं सर हतौं मूढ़ कहँ काली॥
जासु कृपाँ छूटहिं मद मोहा। ता कहुँ उमा कि सपनेहुँ कोहा॥ ३॥

जिस बाणसे मैंने बालिको मारा था, उसी बाणसे कल उस मूढ़को मारूँ ! [शिवजी कहते हैं—] हे उमा ! जिनकी कृपासे मद और मोह छूट जाते हैं उनको कहीं स्वप्नमें भी क्रोध हो सकता है ? [यह तो लीलामात्र है] ॥ ३ ॥

जानहिं यह चरित्र मुनि ग्यानी। जिन्ह रघुबीर चरन रति मानी ॥
लछिमन क्रोधवंत प्रभु जाना। धनुष चढ़ाइ गहे कर बाना ॥ ४ ॥

ज्ञानी मुनि जिन्होंने श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें प्रीति मान ली है (जोड़ ली है), वे ही इस चरित्र (लीलारहस्य) को जानते हैं। लक्ष्मणजीने जब प्रभुको क्रोधयुक्त जाना, तब उन्होंने धनुष चढ़ाकर बाण हाथमें ले लिये ॥ ४ ॥

दो०—तब अनुजहि समुझावा रघुपति करुना सींव।
भय देखाइ लै आवहु तात सखा सुग्रीव ॥ १८ ॥

तब दयाकी सीमा श्रीरघुनाथजीने छोटे भाई लक्ष्मणजीको समझाया कि हे तात ! सखा सुग्रीवको केवल भय दिखलाकर ले आओ [उसे मारनेकी बात नहीं है] ॥ १८ ॥

चौ०—इहाँ पवनसुत हृदयँ बिचारा। राम काजु सुग्रीवँ बिसारा ॥
निकट जाइ चरनन्हि सिरु नावा। चारिहु बिधि तेहि कहि समुझावा ॥ १ ॥

यहाँ (किष्किन्धा नगरीमें) पवनकुमार श्रीहनुमान्‌जीने विचार किया कि सुग्रीवने श्रीरामजीके कार्यको भुला दिया। उन्होंने सुग्रीवके पास जाकर चरणोंमें सिर नवाया। [साम, दान, दण्ड, भेद] चारों प्रकारकी नीति कहकर उन्हें समझाया ॥ १ ॥

सुनि सुग्रीवँ परम भय माना। बिषयँ मोर हरि लीन्हेउ ग्याना ॥
अब मारुतसुत दूत समूहा। पठवहु जहँ तहँ बानर जूहा ॥ २ ॥

हनुमान्‌जीके वचन सुनकर सुग्रीवने बहुत ही भय माना। [और कहा—] विषयोंने मेरे ज्ञानको हर लिया। अब हे पवनसुत ! जहाँ-तहाँ वानरोंके यूथ रहते हैं, वहाँ दूतोंके समूहोंको भेजो ॥ २ ॥

कहहु पाख महुँ आव न जोई। मोरें कर ता कर बध होई ॥
तब हनुमंत बोलाए दूता। सब कर करि सनमान बहूता ॥ ३ ॥

और कहला दो कि एक पखवाड़ेमें (पंद्रह दिनोंमें) जो न आ जायगा, उसका मेरे हाथों वध होगा। तब हनुमान्‌जीने दूतोंको बुलाया और सबका बहुत सम्मान करके— ॥ ३ ॥

भय अरु प्रीति नीति देखराई। चले सकल चरनन्हि सिर नाई ॥
एहि अवसर लछिमन पुर आए। क्रोध देखि जहँ तहँ कपि धाए ॥ ४ ॥

सबको भय, प्रीति और नीति दिखलायी। सब बंदर चरणोंमें सिर नवाकर चले। इसी समय लक्ष्मणजी नगरमें आये। उनका क्रोध देखकर बंदर जहाँ-तहाँ भागे ॥ ४ ॥

दो०—धनुष चढ़ाइ कहा तब जारि करउँ पुर छार।
ब्याकुल नगर देखि तब आयउ बालिकुमार ॥ १९ ॥

तदनन्तर लक्ष्मणजीने धनुष चढ़ाकर कहा कि नगरको जलाकर अभी राख कर दूँगा। तब नगरभरको व्याकुल देखकर बालिपुत्र अंगदजी उनके पास आये ॥ १९ ॥

चौ०—चरन नाइ सिरु बिनती कीन्ही। लछिमन अभय बाँह तेहि दीन्ही॥
क्रोधवंत लछिमन सुनि काना। कह कपीस अति भयँ अकुलाना॥ १॥

अंगदने उनके चरणोंमें सिर नवाकर विनती की (क्षमायाचना की)। तब लक्ष्मणजीने उनको अभय बाँह दी (भुजा उठाकर कहा कि डरो मत)। सुग्रीवने अपने कानोंसे लक्ष्मणजीको क्रोधयुक्त सुनकर भयसे अत्यन्त व्याकुल होकर कहा— ॥ १॥

सुनु हनुमंत संग लै तारा। करि बिनती समुझाउ कुमारा॥
तारा सहित जाइ हनुमाना। चरन बंदि प्रभु सुजस बखाना॥ २॥

हे हनुमान्! सुनो, तुम ताराको साथ ले जाकर विनती करके राजकुमारको समझाओ (समझा-बुझाकर शान्त करो)। हनुमान्‌जीने तारासहित जाकर लक्ष्मणजीके चरणोंकी वन्दना की और प्रभुके सुन्दर यशका बखान किया॥ २॥

करि बिनती मंदिर लै आए। चरन पखारि पलँग बैठाए॥
तब कपीस चरननन्हि सिरु नावा। गहि भुज लछिमन कंठ लगावा॥ ३॥

वे विनती करके उन्हें महलमें ले आये तथा चरणोंको धोकर उन्हें पलँगपर बैठाया। तब वानरराज सुग्रीवने उनके चरणोंमें सिर नवाया और लक्ष्मणजीने हाथ पकड़कर उनको गलेसे लगा लिया॥ ३॥

नाथ बिषय सम मद कछु नाहीं। मुनि मन मोह करइ छन माहीं॥
सुनत बिनीत बचन सुख पावा। लछिमन तेहि बहुबिधि समुझावा॥ ४॥

[सुग्रीवने कहा—] हे नाथ! विषयके समान और कोई मद नहीं है। यह मुनियोंके मनमें भी क्षणमात्रमें मोह उत्पन्न कर देता है [फिर मैं तो विषयी जीव ही ठहरा]। सुग्रीवके विनययुक्त वचन सुनकर लक्ष्मणजीने सुख पाया और उनको बहुत प्रकारसे समझाया॥ ४॥

पवन तनय सब कथा सुनाई। जेहि बिधि गए दूत समुदाई॥ ५॥

तब पवनसुत हनुमान्‌जीने जिस प्रकार सब दिशाओंमें दूतोंके समूह गये थे वह सब हाल सुनाया॥ ५॥

दो०—हरषि चले सुग्रीव तब अंगदादि कपि साथ।
रामानुज आगें करि आए जहँ रघुनाथ॥ २०॥

तब अंगद आदि वानरोंको साथ लेकर और श्रीरामजीके छोटे भाई लक्ष्मणजीको आगे करके (अर्थात् उनके पीछे-पीछे) सुग्रीव हर्षित होकर चले और जहाँ रघुनाथजी थे वहाँ आये॥ २०॥

चौ०—नाइ चरन सिरु कह कर जोरी। नाथ मोहि कछु नाहिन खोरी॥
अतिसय प्रबल देव तव माया। छूटइ राम करहु जौं दाया॥ १॥

श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें सिर नवाकर हाथ जोड़कर सुग्रीवने कहा—हे नाथ! मुझे कुछ भी दोष नहीं है। हे देव! आपकी माया अत्यन्त ही प्रबल है। आप जब दया करते हैं, हे राम! तभी यह छूटती है॥ १॥

बिषय बस्य सुर नर मुनि स्वामी। मैं पावँर पसु कपि अति कामी॥
नारि नयन सर जाहि न लागा। घोर क्रोध तम निसि जो जागा॥ २॥

हे स्वामी ! देवता, मनुष्य और मुनि सभी विषयोंके वशमें हैं। फिर मैं तो पामर पशु और पशुओंमें भी अत्यन्त कामी बंदर हूँ। स्त्रीका नयन-बाण जिसको नहीं लगा, जो भयङ्कर क्रोधरूपी अँधेरी रातमें भी जागता रहता है (क्रोधान्ध नहीं होता) ॥ २ ॥

लोभ पाँस जेहिं गर न बँधाया। सो नर तुम्ह समान रघुराया ॥
यह गुन साधन तें नहिं होई। तुम्हरी कृपाँ पाव कोइ कोई ॥ ३ ॥

और लोभकी फाँसीसे जिसने अपना गला नहीं बँधाया, हे रघुनाथजी ! वह मनुष्य आपहीके समान है। ये गुण साधनसे नहीं प्राप्त होते। आपकी कृपासे ही कोई-कोई इन्हें पाते हैं ॥ ३ ॥

तब रघुपति बोले मुसुकाई। तुम्ह प्रिय मोहि भरत जिमि भाई ॥
अब सोइ जतनु करहु मन लाई। जेहि बिधि सीता कै सुधि पाई ॥ ४ ॥

तब श्रीरघुनाथजी मुसकराकर बोले—हे भाई ! तुम मुझे भरतके समान प्यारे हो। अब मन लगाकर वही उपाय करो जिस उपायसे सीताकी खबर मिले ॥ ४ ॥

दो०—एहि बिधि होत बतकही आए बानर जूथ।
नाना बरन सकल दिसि देखिअ कीस बरूथ ॥ २१ ॥

इस प्रकार बातचीत हो रही थी कि वानरोंके यूथ (झुंड) आ गये। अनेक रंगोंके वानरोंके दल सब दिशाओंमें दिखायी देने लगे ॥ २१ ॥

चौ०—बानर कटक उमा मैं देखा। सो मूरुख जो करन चह लेखा ॥
आइ राम पद नावहिं माथा। निरखि बदनु सब होहिं सनाथा ॥ १ ॥

[शिवजी कहते हैं—] हे उमा ! वानरोंकी वह सेना मैंने देखी थी। उसकी जो गिनती करना चाहे वह महान् मूर्ख है। सब वानर आ-आकर श्रीरामजीके चरणोंमें मस्तक नवाते हैं और [सौन्दर्य-माधुर्यनिधि] श्रीमुखके दर्शन करके कृतार्थ होते हैं ॥ १ ॥

अस कपि एक न सेना माहीं। राम कुसल जेहि पूछी नाहीं ॥
यह कछु नहिं प्रभु कइ अधिकाई। बिस्वरूप ब्यापक रघुराई ॥ २ ॥

सेनामें एक भी वानर ऐसा नहीं था जिससे श्रीरामजीने कुशल न पूछी हो, प्रभुके लिये यह कोई बड़ी बात नहीं है। क्योंकि श्रीरघुनाथजी विश्वरूप तथा सर्वव्यापक हैं (सारे रूपों और सब स्थानोंमें हैं) ॥ २ ॥

ठाढ़े जहँ तहँ आयसु पाई। कह सुग्रीव सबहि समुझाई ॥
राम काजु अरु मोर निहोरा। बानर जूथ जाहु चहुँ ओरा ॥ ३ ॥

आज्ञा पाकर सब जहाँ-तहाँ खड़े हो गये। तब सुग्रीवने सबको समझाकर कहा कि हे वानरोंके समूहो ! यह श्रीरामचन्द्रजीका कार्य है, और मेरा निहोरा (अनुरोध) है; तुम चारों ओर जाओ ॥ ३ ॥

जनकसुता कहुँ खोजहु जाई। मास दिवस महँ आएहु भाई ॥
अवधि मेटि जो बिनु सुधि पाएँ। आवइ बनिहि सो मोहि मराएँ ॥ ४ ॥

और जाकर जानकीजीको खोजो। हे भाई ! महीनेभरमें वापस आ जाना। जो [महीनेभरकी] अवधि बिताकर बिना पता लगाये ही लौट आवेगा उसे मेरे द्वारा मरवाते ही बनेगा (अर्थात् मुझे उसका वध करवाना ही पड़ेगा) ॥ ४ ॥

दो०—बचन सुनत सब बानर जहँ तहँ चले तुरंत।
तब सुग्रीवँ बोलाए अंगद नल हनुमंत॥ २२॥

सुग्रीवके वचन सुनते ही सब वानर तुरंत जहाँ-तहाँ (भिन्न-भिन्न दिशाओंमें) चल दिये। तब सुग्रीवने अंगद, नल, हनुमान् आदि प्रधान-प्रधान योद्धाओंको बुलाया [और कहा—]॥ २२॥

चौ०—सुनहु नील अंगद हनुमाना। जामवंत मतिधीर सुजाना॥
सकल सुभट मिलि दच्छिन जाहू। सीता सुधि पूँछेहु सब काहू॥ १॥

हे धीरबुद्धि और चतुर नील, अंगद, जाम्बवान् और हनुमान्! तुम सब श्रेष्ठ योद्धा मिलकर दक्षिण दिशाको जाओ और सब किसीसे सीताजीका पता पूछना॥ १॥

मन क्रम बचन सो जतन बिचारेहु। रामचंद्र कर काजु सँवारेहु॥
भानु पीठि सेइअ उर आगी। स्वामिहि सर्ब भाव छल त्यागी॥ २॥

मन, वचन तथा कर्मसे उसीका (सीताजीका पता लगानेका) उपाय सोचना। श्रीरामचन्द्रजीका कार्य सम्पन्न (सफल) करना। सूर्यको पीठसे और अग्निको हृदयसे (सामनेसे) सेवन करना चाहिये। परन्तु स्वामीकी सेवा तो छल छोड़कर सर्वभावसे (मन, वचन, कर्मसे) करनी चाहिये॥ २॥

तजि माया सेइअ परलोका। मिटहिं सकल भवसंभव सोका॥
देह धरे कर यह फलु भाई। भजिअ राम सब काम बिहाई॥ ३॥

माया (विषयोंकी ममता-आसक्ति) को छोड़कर परलोकका सेवन (भगवान्‌के दिव्य धामकी प्राप्तिके लिये भगवत्सेवारूप साधन) करना चाहिये, जिससे भव (जन्म-मरण) से उत्पन्न सारे शोक मिट जायँ। हे भाई! देह धारण करनेका यही फल है कि सब कामों (कामनाओं) को छोड़कर श्रीरामजीका भजन ही किया जाय॥ ३॥

सोइ गुनग्य सोई बड़भागी। जो रघुबीर चरन अनुरागी॥
आयसु मागि चरन सिरु नाई। चले हरषि सुमिरत रघुराई॥ ४॥

सद्‌गुणोंको पहचाननेवाला (गुणवान्) तथा बड़भागी वही है जो श्रीरघुनाथजीके चरणोंका प्रेमी है। आज्ञा माँगकर और चरणोंमें फिर सिर नवाकर श्रीरघुनाथजीका स्मरण करते हुए सब हर्षित होकर चले॥ ४॥

पाछें पवन तनय सिरु नावा। जानि काज प्रभु निकट बोलावा॥
परसा सीस सरोरुह पानी। करमुद्रिका दीन्हि जन जानी॥ ५॥

सबके पीछे पवनसुत श्रीहनुमान्‌जीने सिर नवाया। कार्यका विचार करके प्रभुने उन्हें अपने पास बुलाया। उन्होंने अपने कर-कमलसे उनके सिरका स्पर्श किया तथा अपना सेवक जानकर उन्हें अपने हाथकी अंगूठी उतारकर दी॥ ५॥

बहु प्रकार सीतहि समुझाएहु। कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आएहु॥
हनुमत जन्म सुफल करि माना। चलेउ हृदयँ धरि कृपानिधाना॥ ६॥

[और कहा—] बहुत प्रकारसे सीताको समझाना और मेरा बल तथा विरह (प्रेम) कहकर तुम शीघ्र लौट आना। हनुमान्‌जीने अपना जन्म सफल समझा और कृपानिधान प्रभुको हृदयमें धारण करके वे चले॥ ६॥

जद्यपि प्रभु जानत सब बाता। राजनीति राखत सुरत्राता॥ ७॥

यद्यपि देवताओंकी रक्षा करनेवाले प्रभु सब बात जानते हैं, तो भी वे राजनीतिकी रक्षा कर रहे हैं (नीतिकी मर्यादा रखनेके लिये सीताजीका पता लगानेको जहाँ-तहाँ वानरोंको भेज रहे हैं)॥ ७॥

दो०—चले सकल बन खोजत सरिता सर गिरि खोह।
राम काज लयलीन मन बिसरा तन कर छोह॥ २३॥

सब वानर वन, नदी, तालाब, पर्वत और पर्वतोंकी कन्दराओंमें खोजते हुए चले जा रहे हैं। मन श्रीरामजीके कार्यमें लवलीन है। शरीरतकका प्रेम (ममत्व) भूल गया है॥ २३॥

चौ०—कतहुँ होइ निसिचर सैं भेटा। प्रान लेहिं एक एक चपेटा॥
बहु प्रकार गिरि कानन हेरहिं। कोउ मुनि मिलइ ताहि सब घेरहिं॥ १॥

कहीं किसी राक्षससे भेंट हो जाती है, तो एक-एक चपतमें ही उसके प्राण ले लेते हैं। पर्वतों और वनोंको बहुत प्रकारसे खोज रहे हैं। कोई मुनि मिल जाता है तो पता पूछनेके लिये उसे सब घेर लेते हैं॥ १॥

लागि तृषा अतिसय अकुलाने। मिलइ न जल घन गहन भुलाने॥
मन हनुमान कीन्ह अनुमाना। मरन चहत सब बिनु जल पाना॥ २॥

इतनेमें ही सबको अत्यन्त प्यास लगी, जिससे सब अत्यन्त ही व्याकुल हो गये। किन्तु जल कहीं नहीं मिला। घने जंगलमें सब भुला गये। हनुमान्‌जीने मनमें अनुमान किया कि जल पिये बिना सब लोग मरना ही चाहते हैं॥ २॥

चढ़ि गिरि सिखर चहूँ दिसि देखा। भूमि बिबर एक कौतुक पेखा॥
चक्रबाक बक हंस उड़ाहीं। बहुतक खग प्रबिसहिं तेहि माहीं॥ ३॥

उन्होंने पहाड़की चोटीपर चढ़कर चारों ओर देखा तो पृथ्वीके अंदर एक गुफामें उन्हें एक कौतुक (आश्चर्य) दिखायी दिया। उसके ऊपर चकवे, बगुले और हंस उड़ रहे हैं और बहुत-से पक्षी उसमें प्रवेश कर रहे हैं॥ ३॥

गिरि ते उतरि पवनसुत आवा। सब कहुँ लै सोइ बिबर देखावा॥
आगें कै हनुमंतहि लीन्हा। पैठे बिबर बिलंबु न कीन्हा॥ ४॥

पवनकुमार हनुमान्‌जी पर्वतसे उतर आये और सबको ले जाकर उन्होंने वह गुफा दिखलायी। सबने हनुमान्‌जीको आगे कर लिया और वे गुफामें घुस गये, देर नहीं की॥ ४॥

दो०—दीख जाइ उपबन बर सर बिगसित बहु कंज।
मंदिर एक रुचिर तहँ बैठि नारि तप पुंज॥ २४॥

अंदर जाकर उन्होंने एक उत्तम उपवन (बगीचा) और तालाब देखा, जिसमें बहुत-से कमल खिले हुए हैं। वहीं एक सुन्दर मन्दिर है, जिसमें एक तपोमूर्ति स्त्री बैठी है॥ २४॥

चौ०—दूरि ते ताहि सबन्हि सिरु नावा। पूछें निज बृत्तांत सुनावा॥
तेहिं तब कहा करहु जल पाना। खाहु सुरस सुंदर फल नाना॥ १॥

दूरसे ही सबने उसे सिर नवाया और पूछनेपर अपना सब वृत्तान्त कह सुनाया। तब उसने कहा—जलपान करो और भाँति-भाँतिके रसीले सुन्दर फल खाओ॥ १॥

मज्जनु कीन्ह मधुर फल खाए। तासु निकट पुनि सब चलि आए॥
तेहिं सब आपनि कथा सुनाई। मैं अब जाब जहाँ रघुराई॥ २॥

[आज्ञा पाकर] सबने स्नान किया, मीठे फल खाये और फिर सब उसके पास चले आये। तब उसने अपनी सब कथा कह सुनायी [और कहा—] मैं अब वहाँ जाऊँगी जहाँ श्रीरघुनाथजी हैं॥ २॥

मूदहु नयन बिबर तजि जाहू। पैहहु सीतहि जनि पछिताहू॥
नयन मूदि पुनि देखहिं बीरा। ठाढ़े सकल सिंधु कें तीरा॥ ३॥

तुमलोग आँखें मूँद लो और गुफाको छोड़कर बाहर जाओ। तुम सीताजीको पा जाओगे, पछताओ नहीं (निराश न होओ)। आँखें मूँदकर फिर जब आँखें खोलीं तो सब वीर क्या देखते हैं कि सब समुद्रके तीरपर खड़े हैं॥ ३॥

सो पुनि गई जहाँ रघुनाथा। जाइ कमल पद नाएसि माथा॥
नाना भाँति बिनय तेहिं कीन्हीं। अनपायनी भगति प्रभु दीन्हीं॥ ४॥

और वह स्वयं वहाँ गयी जहाँ श्रीरघुनाथजी थे। उसने जाकर प्रभुके चरणकमलोंमें मस्तक नवाया और बहुत प्रकारसे विनती की। प्रभुने उसे अपनी अनपायिनी (अचल) भक्ति दी॥ ४॥

दो०—बदरीबन कहुँ सो गई प्रभु अग्या धरि सीस।
उर धरि राम चरन जुग जे बंदत अज ईस॥ २५॥

प्रभुकी आज्ञा सिरपर धारणकर और श्रीरामजीके युगल चरणोंको, जिनकी ब्रह्मा और महेश भी वन्दना करते हैं, हृदयमें धारणकर वह (स्वयंप्रभा) बदरिकाश्रमको चली गयी॥ २५॥

चौ०—इहाँ बिचारहिं कपि मन माहीं। बीती अवधि काज कछु नाहीं॥
सब मिलि कहहिं परस्पर बाता। बिनु सुधि लएँ करब का भ्राता॥ १॥

यहाँ वानरगण मनमें विचार कर रहे हैं कि अवधि तो बीत गयी; पर काम कुछ न हुआ। सब मिलकर आपसमें बात करने लगे कि हे भाई! अब तो सीताजीकी खबर लिये बिना लौटकर भी क्या करेंगे!॥ १॥

कह अंगद लोचन भरि बारी। दुहुँ प्रकार भइ मृत्यु हमारी॥
इहाँ न सुधि सीता कै पाई। उहाँ गएँ मारिहि कपिराई॥ २॥

अंगदने नेत्रोंमें जल भरकर कहा कि दोनों ही प्रकारसे हमारी मृत्यु हुई। यहाँ तो सीताजीकी सुध नहीं मिली और वहाँ जानेपर वानरराज सुग्रीव मार डालेंगे॥ २॥

पिता बधे पर मारत मोही। राखा राम निहोर न ओही॥
पुनि पुनि अंगद कह सब पाहीं। मरन भयउ कछु संसय नाहीं॥ ३॥

वे तो पिताके वध होनेपर ही मुझे मार डालते। श्रीरामजीने ही मेरी रक्षा की, इसमें सुग्रीवका कोई एहसान नहीं है। अंगद बार-बार सबसे कह रहे हैं कि अब मरण हुआ, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है॥ ३॥

अंगद बचन सुनत कपि बीरा। बोलि न सकहिं नयन बह नीरा॥
छन एक सोच मगन होइ रहे। पुनि अस बचन कहत सब भए॥ ४॥

वानर वीर अंगदके वचन सुनते हैं; किन्तु कुछ बोल नहीं सकते। उनके नेत्रोंसे जल बह रहा

है। एक क्षणके लिये सब सोचमें मग्न हो रहे। फिर सब ऐसा वचन कहने लगे— ॥ ४ ॥

हम सीता कै सुधि लीन्हें बिना। नहिं जैहैं जुबराज प्रबीना ॥
अस कहि लवन सिंधु तट जाई। बैठे कपि सब दर्भ डसाई ॥ ५ ॥

हे सुयोग्य युवराज! हमलोग सीताजीकी खोज लिये बिना नहीं लौटेंगे। ऐसा कहकर लवणसागरके तटपर जाकर सब वानर कुश बिछाकर बैठ गये ॥ ५ ॥

जामवंत अंगद दुख देखी। कहीं कथा उपदेस बिसेषी ॥
तात राम कहुँ नर जनि मानहु। निर्गुन ब्रह्म अजित अज जानहु ॥ ६ ॥

जाम्बवान्‌ने अंगदका दुःख देखकर विशेष उपदेशकी कथाएँ कहीं। [वे बोले—] हे तात! श्रीरामजीको मनुष्य न मानो, उन्हें निर्गुण ब्रह्म, अजेय और अजन्मा समझो ॥ ६ ॥

हम सब सेवक अति बड़भागी। संतत सगुन ब्रह्म अनुरागी ॥ ७ ॥

हम सब सेवक अत्यन्त बड़भागी हैं, जो निरन्तर सगुण ब्रह्म (श्रीरामजी) में प्रीति रखते हैं ॥ ७ ॥

दो०—निज इच्छाँ प्रभु अवतरइ सुर महि गो द्विज लागि।
सगुन उपासक संग तहँ रहहिं मोच्छ सब त्यागि ॥ २६ ॥

देवता, पृथ्वी, गौ और ब्राह्मणोंके लिये प्रभु अपनी इच्छासे [किसी कर्मबन्धनसे नहीं] अवतार लेते हैं। वहाँ सगुणोपासक [भक्तगण सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सार्ष्टि और सायुज्य] सब प्रकारके मोक्षोंको त्यागकर उनकी सेवामें साथ रहते हैं ॥ २६ ॥

चौ०—एहि बिधि कथा कहहिं बहु भाँती। गिरि कंदराँ सुनी संपाती ॥
बाहेर होइ देखि बहु कीसा। मोहि अहार दीन्ह जगदीसा ॥ १ ॥

इस प्रकार जाम्बवान् बहुत प्रकारसे कथाएँ कह रहे हैं। इनकी बातें पर्वतकी कन्दरामें सम्पातीने सुनीं। बाहर निकलकर उसने बहुत-से वानर देखे। [तब वह बोला—] जगदीश्वरने मुझको घर बैठे बहुत-सा आहार भेज दिया! ॥ १ ॥

आजु सबहि कहँ भच्छन करऊँ। दिन बहु चले अहार बिनु मरऊँ ॥
कबहुँ न मिल भरि उदर अहारा। आजु दीन्ह बिधि एकहिं बारा ॥ २ ॥

आज इन सबको खा जाऊँगा। बहुत दिन बीत गये, भोजनके बिना मर रहा था। पेटभर भोजन कभी नहीं मिलता। आज विधाताने एक ही बारमें बहुत-सा भोजन दे दिया ॥ २ ॥

डरपे गीध बचन सुनि काना। अब भा मरन सत्य हम जाना ॥
कपि सब उठे गीध कहँ देखी। जामवंत मन सोच बिसेषी ॥ ३ ॥

गीधके वचन कानोंसे सुनते ही सब डर गये कि अब सचमुच ही मरना हो गया। यह हमने जान लिया। फिर उस गीध (सम्पाती) को देखकर सब वानर उठ खड़े हुए। जाम्बवान्‌के मनमें विशेष सोच हुआ ॥ ३ ॥

कह अंगद बिचारि मन माहीं। धन्य जटायू सम कोउ नाहीं ॥
राम काज कारन तनु त्यागी। हरि पुर गयउ परम बड़भागी ॥ ४ ॥

अंगदने मनमें विचारकर कहा—अहा! जटायुके समान धन्य कोई नहीं है। श्रीरामजीके कार्यके लिये शरीर छोड़कर वह परम बड़भागी भगवान्‌के परमधामको चला गया ॥ ४ ॥

सुनि खग हरष सोक जुत बानी। आवा निकट कपिन्ह भय मानी॥
तिन्हहि अभय करि पूछेसि जाई। कथा सकल तिन्ह ताहि सुनाई॥ ५॥

हर्ष और शोकसे युक्त वाणी (समाचार) सुनकर वह पक्षी (सम्पाती) वानरोंके पास आया। वानर डर गये। उनको अभय करके (अभय-वचन देकर) उसने पास जाकर जटायुका वृत्तान्त पूछा, तब उन्होंने सारी कथा उसे कह सुनायी॥ ५॥

सुनि संपाति बंधु कै करनी। रघुपति महिमा बहुबिधि बरनी॥ ६॥

भाई जटायुकी करनी सुनकर सम्पातीने बहुत प्रकारसे श्रीरघुनाथजीकी महिमा वर्णन की॥ ६॥

दो०—मोहि लै जाहु सिंधुतट देउँ तिलांजलि ताहि।
बचन सहाइ करबि मैं पैहहु खोजहु जाहि॥ २७॥

[उसने कहा—] मुझे समुद्रके किनारे ले चलो, मैं जटायुको तिलाञ्जलि दे दूँ। इस सेवाके बदले मैं तुम्हारी वचनसे सहायता करूँगा (अर्थात् सीताजी कहाँ है सो बतला दूँगा) जिसे तुम खोज रहे हो उसे पा जाओगे॥ २७॥

चौ०—अनुज क्रिया करि सागर तीरा। कहि निज कथा सुनहु कपि बीरा॥
हम द्वौ बंधु प्रथम तरुनाई। गगन गए रबि निकट उड़ाई॥ १॥

समुद्रके तीरपर छोटे भाई जटायुकी क्रिया (श्राद्ध आदि) करके सम्पाती अपनी कथा कहने लगा—हे वीर वानरो! सुनो, हम दोनों भाई उठती जवानीमें एक बार आकाशमें उड़कर सूर्यके निकट चले गये॥ १॥

तेज न सहि सक सो फिरि आवा। मैं अभिमानी रबि निअरावा॥
जरे पंख अति तेज अपारा। परेउँ भूमि करि घोर चिकारा॥ २॥

वह (जटायु) तेज नहीं सह सका, इससे लौट आया। (किन्तु) मैं अभिमानी था इसलिये सूर्यके पास चला गया। अत्यन्त अपार तेजसे मेरे पंख जल गये। मैं बड़े जोरसे चीख मारकर जमीनपर गिर पड़ा॥ २॥

मुनि एक नाम चंद्रमा ओही। लागी दया देखि करि मोही॥
बहु प्रकार तेहिं ग्यान सुनावा। देहजनित अभिमान छड़ावा॥ ३॥

वहाँ चन्द्रमा नामके एक मुनि थे। मुझे देखकर उन्हें बड़ी दया लगी। उन्होंने बहुत प्रकारसे मुझे ज्ञान सुनाया और मेरे देहजनित (देहसम्बन्धी) अभिमानको छुड़ा दिया॥ ३॥

त्रेताँ ब्रह्म मनुज तनु धरिही। तासु नारि निसिचर पति हरिही॥
तासु खोज पठइहि प्रभु दूता। तिन्हहि मिलें तैं होब पुनीता॥ ४॥

[उन्होंने कहा—] त्रेतायुगमें साक्षात् परब्रह्म मनुष्यशरीर धारण करेंगे। उनकी स्त्रीको राक्षसोंका राजा हर ले जायगा। उसकी खोजमें प्रभु दूत भेजेंगे। उनसे मिलनेपर तू पवित्र हो जायगा॥ ४॥

जमिहहिं पंख करसि जनि चिंता। तिन्हहि देखाइ देहेसु तैं सीता॥
मुनि कइ गिरा सत्य भइ आजू। सुनि मम बचन करहु प्रभु काजू॥ ५॥

और तेरे पंख उग आयेंगे; चिन्ता न कर। उन्हें तू सीताजीको दिखा देना। मुनिकी वह वाणी

आज सत्य हुई। अब मेरे वचन सुनकर तुम प्रभुका कार्य करो॥ ५॥

गिरि त्रिकूट ऊपर बस लंका। तहँ रह रावन सहज असंका॥
तहँ असोक उपबन जहँ रहई। सीता बैठि सोच रत अहई॥ ६॥

त्रिकूट पर्वतपर लङ्का बसी हुई है। वहाँ स्वभावहीसे निडर रावण रहता है। वहाँ अशोक नामका उपवन (बगीचा) है, जहाँ सीताजी रहती हैं। [इस समय भी] वे सोचमें मग्न बैठी हैं॥ ६॥

दो०—मैं देखउँ तुम्ह नाहीं गीधहि दृष्टि अपार।
बूढ़ भयउँ न त करतेउँ कछुक सहाय तुम्हार॥ २८॥

मैं उन्हें देख रहा हूँ, तुम नहीं देख सकते; क्योंकि गीधकी दृष्टि अपार होती है (बहुत दूरतक जाती है)। क्या करूँ ? मैं बूढ़ा हो गया, नहीं तो तुम्हारी कुछ तो सहायता अवश्य करता॥ २८॥

चौ०—जो नाघइ सत जोजन सागर। करइ सो राम काज मति आगर॥
मोहि बिलोकि धरहु मन धीरा। राम कृपाँ कस भयउ सरीरा॥ १॥

जो सौ योजन (चार सौ कोस) समुद्र लाँघ सकेगा और बुद्धिनिधान होगा वही श्रीरामजीका कार्य कर सकेगा। [निराश होकर घबराओ मत] मुझे देखकर मनमें धीरज धरो। देखो, श्रीरामजीकी कृपासे [देखते-ही-देखते] मेरा शरीर कैसा हो गया (बिना पाँखका बेहाल था, पाँख उगनेसे सुन्दर हो गया)!॥ १॥

पापिउ जा कर नाम सुमिरहीं। अति अपार भवसागर तरहीं॥
तासु दूत तुम्ह तजि कदराई। राम हृदयँ धरि करहु उपाई॥ २॥

पापी भी जिनका नाम स्मरण करके अत्यन्त अपार भवसागरसे तर जाते हैं, तुम उनके दूत हो, अतः कायरता छोड़कर श्रीरामजीको हृदयमें धारण करके उपाय करो॥ २॥

अस कहि गरुड़ गीध जब गयऊ। तिन्ह कें मन अति बिसमय भयऊ॥
निज निज बल सब काहूँ भाषा। पार जाइ कर संसय राखा॥ ३॥

[काकभुशुण्डिजी कहते हैं—] हे गरुड़जी ! इस प्रकार कहकर जब गीध चला गया, तब उन (वानरों) के मनमें अत्यन्त विस्मय हुआ। सब किसीने अपना-अपना बल कहा ! पर समुद्रके पार जानेमें सभीने सन्देह प्रकट किया॥ ३॥

जरठ भयउँ अब कहइ रिछेसा। नहिं तन रहा प्रथम बल लेसा॥
जबहिं त्रिबिक्रम भए खरारी। तब मैं तरुन रहेउँ बल भारी॥ ४॥

ऋक्षराज जाम्बवान् कहने लगे—मैं बूढ़ा हो गया। शरीरमें पहलेवाले बलका लेश भी नहीं रहा। जब खरारि (खरके शत्रु श्रीराम) वामन बने थे, तब मैं जवान था और मुझमें बड़ा बल था॥ ४॥

दो०—बलि बाँधत प्रभु बाढ़ेउ सो तनु बरनि न जाइ।
उभय घरी महँ दीन्हीं सात प्रदच्छिन धाइ॥ २९॥

बलिके बाँधते समय प्रभु इतने बढ़े कि उस शरीरका वर्णन नहीं हो सकता, किंतु मैंने दो ही घड़ीमें दौड़कर [उस शरीरकी] सात प्रदक्षिणाएँ कर लीं॥ २९॥

चौ०—अंगद कहइ जाउँ मैं पारा। जियँ संसय कछु फिरती बारा॥
जामवंत कह तुम्ह सब लायक। पठइअ किमि सबही कर नायक॥ १॥

अंगदने कहा—मैं पार तो चला जाऊँगा। परन्तु लौटते समयके लिये हृदयमें कुछ सन्देह है। जाम्बवान्‌ने कहा—तुम सब प्रकारसे योग्य हो। परन्तु तुम सबके नेता हो, तुम्हें कैसे भेजा जाय ? ॥ १ ॥

कहइ रीछपति सुनु हनुमाना। का चुप साधि रहेहु बलवाना ॥
पवन तनय बल पवन समाना। बुधि बिबेक बिग्यान निधाना ॥ २ ॥

ऋक्षराज जाम्बवान्‌ने श्रीहनुमान्‌जीसे कहा—हे हनुमान् ! हे बलवान् ! सुनो, तुमने यह क्या चुप साध रक्खी है ? तुम पवनके पुत्र हो और बलमें पवनके समान हो। तुम बुद्धि-विवेक और विज्ञानकी खान हो ॥ २ ॥

कवन सो काज कठिन जग माहीं। जो नहिं होइ तात तुम्ह पाहीं ॥
राम काज लगि तव अवतारा। सुनतहिं भयउ पर्बताकारा ॥ ३ ॥

जगत्‌में कौन-सा ऐसा कठिन काम है जो हे तात ! तुमसे न हो सके। श्रीरामजीके कार्यके लिये ही तो तुम्हारा अवतार हुआ है। यह सुनते ही हनुमान्‌जी पर्वतके आकारके (अत्यन्त विशालकाय) हो गये ॥ ३ ॥

कनक बरन तन तेज बिराजा। मानहुँ अपर गिरिन्ह कर राजा ॥
सिंहनाद करि बारहि बारा। लीलहिं नाघउँ जलनिधि खारा ॥ ४ ॥

उनका सोनेका-सा रंग है, शरीरपर तेज सुशोभित है, मानो दूसरा पर्वतोंका राजा सुमेरु हो। हनुमान्‌जीने बार-बार सिंहनाद करके कहा—मैं इस खारे समुद्रको खेलमें ही लाँघ सकता हूँ ॥ ४ ॥

सहित सहाय रावनहि मारी। आनउँ इहाँ त्रिकूट उपारी ॥
जामवंत मैं पूँछउँ तोही। उचित सिखावनु दीजहु मोही ॥ ५ ॥

और सहायकोंसहित रावणको मारकर त्रिकूट पर्वतको उखाड़कर यहाँ ला सकता हूँ। हे जाम्बवान् ! मैं तुमसे पूछता हूँ, तुम मुझे उचित सीख देना [कि मुझे क्या करना चाहिये] ॥ ५ ॥

एतना करहु तात तुम्ह जाई। सीतहि देखि कहहु सुधि आई ॥
तब निज भुज बल राजिवनैना। कौतुक लागि संग कपि सेना ॥ ६ ॥

[जाम्बवान्‌ने कहा—] हे तात ! तुम जाकर इतना ही करो कि सीताजीको देखकर लौट आओ। और उनकी खबर कह दो। फिर कमलनयन श्रीरामजी अपने बाहुबलसे [ही राक्षसोंका संहार कर सीताजीको ले आयेंगे, केवल] खेलके लिये ही वे वानरोंकी सेना साथ लेंगे ॥ ६ ॥

छं०—कपि सेन संग सँघारि निसिचर रामु सीतहि आनि हैं।
त्रैलोक पावन सुजसु सुर मुनि नारदादि बखानिहैं ॥
जो सुनत गावत कहत समुझत परमपद नर पावई।
रघुबीर पद पाथोज मधुकर दास तुलसी गावई ॥

वानरोंकी सेना साथ लेकर राक्षसोंका संहार करके श्रीरामजी सीताजीको ले आयेंगे। तब देवता और नारदादि मुनि भगवान्‌के तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाले सुन्दर यशका बखान करेंगे, जिसे सुनने, गाने, कहने और समझनेसे मनुष्य परमपद पाते हैं और जिसे श्रीरघुवीरके चरणकमलका मधुकर (भ्रमर) तुलसीदास गाता है।

दो०—भव भेषज रघुनाथ जसु सुनहिं जे नर अरु नारि।
तिन्ह कर सकल मनोरथ सिद्ध करहिं त्रिसिरारि॥ ३० क॥

श्रीरघुवीरका यश भव (जन्म-मरण) रूपी रोगकी [अचूक] दवा है। जो पुरुष और स्त्री इसे सुनेंगे, त्रिशिराके शत्रु श्रीरामजी उनके सब मनोरथोंको सिद्ध करेंगे॥ ३०(क)॥

सो०—नीलोत्पल तन स्याम काम कोटि सोभा अधिक।
सुनिअ तासु गुन ग्राम जासु नाम अघ खग बधिक॥ ३० ख॥

जिनका नीले कमलके समान श्याम शरीर है, जिनकी शोभा करोड़ों कामदेवोंसे भी अधिक है और जिनका नाम पापरूपी पक्षियोंको मारनेके लिये बधिक (व्याधा) के समान है, उन श्रीरामके गुणोंके समूह (लीला) को अवश्य सुनना चाहिये॥ ३० (ख)॥

मासपारायण, तेईसवाँ विश्राम

इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने चतुर्थः सोपानः समाप्तः।

कलियुगके समस्त पापोंके नाश करनेवाले श्रीरामचरितमानसका यह चौथा सोपान समाप्त हुआ।

(किष्किन्धाकाण्ड समाप्त)

लङ्कादहन

अट्टहास करि गर्जा कपि बढ़ि लाग अकास ॥

श्रीगणेशाय नमः

श्रीजानकीवल्लभो विजयते

श्रीरामचरितमानस

पञ्चम सोपान

सुन्दरकाण्ड

श्लोक

शान्तं शाश्वतमप्रमेयमनघं निर्वाणशान्तिप्रदं
ब्रह्माशम्भुफणीन्द्रसेव्यमनिशं वेदान्तवेद्यं विभुम्।
रामाख्यं जगदीश्वरं सुरगुरुं मायामनुष्यं हरिं
वन्देऽहं करुणाकरं रघुवरं भूपालचूडामणिम्॥ १॥

शान्त, सनातन, अप्रमेय (प्रमाणोंसे परे), निष्पाप, मोक्षरूप, परमशान्ति देनेवाले, ब्रह्मा, शम्भु और शेषजीसे निरन्तर सेवित, वेदान्तके द्वारा जाननेयोग्य, सर्वव्यापक, देवताओंमें सबसे बड़े, मायासे मनुष्यरूपमें दीखनेवाले, समस्त पापोंको हरनेवाले, करुणाकी खान, रघुकुलमें श्रेष्ठ तथा राजाओंके शिरोमणि राम कहलानेवाले जगदीश्वरकी मैं वन्दना करता हूँ॥ १॥

नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये
सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा।
भक्तिं प्रयच्छ रघुपुङ्गव निर्भरां मे
कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च॥ २॥

हे रघुनाथजी! मैं सत्य कहता हूँ और फिर आप सबके अन्तरात्मा ही हैं (सब जानते ही हैं) कि मेरे हृदयमें दूसरी कोई इच्छा नहीं है। हे रघुकुलश्रेष्ठ! मुझे अपनी निर्भरा (पूर्ण) भक्ति दीजिये और मेरे मनको काम आदि दोषोंसे रहित कीजिये॥ २॥

अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि॥ ३॥

अतुल बलके धाम, सोनेके पर्वत (सुमेरु) के समान कान्तियुक्त शरीरवाले, दैत्यरूपी वन [को ध्वंस करने] के लिये अग्निरूप, ज्ञानियोंमें अग्रगण्य, सम्पूर्ण गुणोंके निधान, वानरोंके स्वामी,

श्रीरघुनाथजीके प्रिय भक्त पवनपुत्र श्रीहनुमान्‌जीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३ ॥

चौ०—जामवंत के बचन सुहाए। सुनि हनुमंत हृदय अति भाए॥
तब लगि मोहि परिखेहु तुम्ह भाई। सहि दुख कंद मूल फल खाई॥ १॥

जाम्बवान्‌के सुन्दर वचन सुनकर हनुमान्‌जीके हृदयको बहुत ही भाये। [वे बोले—] हे भाई! तुमलोग दुःख सहकर, कन्द-मूल-फल खाकर तबतक मेरी राह देखना॥ १॥

जब लगि आवौं सीतहि देखी। होइहि काजु मोहि हरष बिसेषी॥
यह कहि नाइ सबन्हि कहुँ माथा। चलेउ हरषि हियँ धरि रघुनाथा॥ २॥

जबतक मैं सीताजीको देखकर [लौट] न आऊँ। काम अवश्य होगा, क्योंकि मुझे बहुत ही हर्ष हो रहा है। यह कहकर और सबको मस्तक नवाकर तथा हृदयमें श्रीरघुनाथजीको धारण करके हनुमान्‌जी हर्षित होकर चले॥ २॥

सिंधु तीर एक भूधर सुंदर। कौतुक कूदि चढ़ेउ ता ऊपर॥
बार बार रघुबीर सँभारी। तरकेउ पवनतनय बल भारी॥ ३॥

समुद्रके तीरपर एक सुन्दर पर्वत था। हनुमान्‌जी खेलसे ही (अनायास ही) कूदकर उसके ऊपर जा चढ़े और बार-बार श्रीरघुवीरका स्मरण करके अत्यन्त बलवान् हनुमान्‌जी उसपरसे बड़े वेगसे उछले॥ ३॥

जेहिं गिरि चरन देइ हनुमंता। चलेउ सो गा पाताल तुरंता॥
जिमि अमोघ रघुपति कर बाना। एही भाँति चलेउ हनुमाना॥ ४॥

जिस पर्वतपर हनुमान्‌जी पैर रखकर चले (जिसपरसे वे उछले), वह तुरंत ही पातालमें धँस गया। जैसे श्रीरघुनाथजीका अमोघ बाण चलता है, उसी तरह हनुमान्‌जी चले॥ ४॥

जलनिधि रघुपति दूत बिचारी। तैं मैनाक होहि श्रम हारी॥ ५॥

समुद्रने उन्हें श्रीरघुनाथजीका दूत समझकर मैनाक पर्वतसे कहा कि हे मैनाक! तू इनकी थकावट दूर करनेवाला हो (अर्थात् अपने ऊपर इन्हें विश्राम दे)॥ ५॥

दो०—हनूमान तेहि परसा कर पुनि कीन्ह प्रनाम।
राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम॥ १॥

हनुमान्‌जीने उसे हाथसे छू दिया, फिर प्रणाम करके कहा—भाई! श्रीरामचन्द्रजीका काम किये बिना मुझे विश्राम कहाँ?॥ १॥

चौ०—जात पवनसुत देवन्ह देखा। जानैं कहुँ बल बुद्धि बिसेषा॥
सुरसा नाम अहिन्ह कै माता। पठइन्हि आइ कही तेहिं बाता॥ १॥

देवताओंने पवनपुत्र हनुमान्‌जीको जाते हुए देखा। उनकी विशेष बल-बुद्धिको जाननेके लिये (परीक्षार्थ) उन्होंने सुरसा नामक सर्पोंकी माताको भेजा, उसने आकर हनुमान्‌जीसे यह बात कही—॥ १॥

आजु सुरन्ह मोहि दीन्हि अहारा। सुनत बचन कह पवनकुमारा॥
राम काजु करि फिरि मैं आवौं। सीता कइ सुधि प्रभुहि सुनावौं॥ २॥

आज देवताओंने मुझे भोजन दिया है। यह वचन सुनकर पवनकुमार हनुमान्‌जीने कहा—श्रीरामजीका कार्य करके मैं लौट आऊँ और सीताजीकी खबर प्रभुको सुना दूँ॥ २॥

तब तव बदन पैठिहउँ आई। सत्य कहउँ मोहि जान दे माई॥
कवनेहुँ जतन देइ नहिं जाना। ग्रससि न मोहि कहेउ हनुमाना॥ ३॥

तब मैं आकर तुम्हारे मुँहमें घुस जाऊँगा [तुम मुझे खा लेना]। हे माता! मैं सत्य कहता हूँ, अभी मुझे जाने दे। जब किसी भी उपायसे उसने जाने नहीं दिया, तब हनुमान्‌जीने कहा—तो फिर मुझे खा न ले॥ ३॥

जोजन भरि तेहिं बदनु पसारा। कपि तनु कीन्ह दुगुन बिस्तारा॥
सोरह जोजन मुख तेहिं ठयऊ। तुरत पवनसुत बत्तिस भयऊ॥ ४॥

उसने योजनभर (चार कोसमें) मुँह फैलाया। तब हनुमान्‌जीने अपने शरीरको उससे दूना बढ़ा लिया। उसने सोलह योजनका मुख किया। हनुमान्‌जी तुरंत ही बत्तीस योजनके हो गये॥ ४॥

जस जस सुरसा बदनु बढ़ावा। तासु दून कपि रूप देखावा॥
सत जोजन तेहिं आनन कीन्हा। अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा॥ ५॥

जैसे-जैसे सुरसा मुखका विस्तार बढ़ाती थी, हनुमान्‌जी उसका दूना रूप दिखलाते थे। उसने सौ योजन (चार सौ कोसका) मुख किया। तब हनुमान्‌जीने बहुत ही छोटा रूप धारण कर लिया॥ ५॥

बदन पइठि पुनि बाहेर आवा। मागा बिदा ताहि सिरु नावा॥
मोहि सुरन्ह जेहि लागि पठावा। बुधि बल मरमु तोर मैं पावा॥ ६॥

और वे उसके मुखमें घुसकर [तुरंत] फिर बाहर निकल आये और उसे सिर नवाकर विदा माँगने लगे। [उसने कहा—] मैंने तुम्हारे बुद्धि-बलका भेद पा लिया, जिसके लिये देवताओंने मुझे भेजा था॥ ६॥

दो०—राम काजु सबु करिहहु तुम्ह बल बुद्धि निधान।
आसिष देइ गई सो हरषि चलेउ हनुमान॥ २॥

तुम श्रीरामचन्द्रजीका सब कार्य करोगे, क्योंकि तुम बल-बुद्धिके भण्डार हो। यह आशीर्वाद देकर वह चली गयी, तब हनुमान्‌जी हर्षित होकर चले॥ २॥

चौ०—निसिचरि एक सिंधु महुँ रहई। करि माया नभु के खग गहई॥
जीव जंतु जे गगन उड़ाहीं। जल बिलोकि तिन्ह कै परिछाहीं॥ १॥

समुद्रमें एक राक्षसी रहती थी। वह माया करके आकाशमें उड़ते हुए पक्षियोंको पकड़ लेती थी। आकाशमें जो जीव-जंतु उड़ा करते थे, वह जलमें उनकी परछाई देखकर॥ १॥

गहइ छाहँ सक सो न उड़ाई। एहि बिधि सदा गगनचर खाई॥
सोइ छल हनूमान कहँ कीन्हा। तासु कपटु कपि तुरतहिं चीन्हा॥ २॥

उस परछाईंको पकड़ लेती थी, जिससे वे उड़ नहीं सकते थे [और जलमें गिर पड़ते थे] इस प्रकार वह सदा आकाशमें उड़नेवाले जीवोंको खाया करती थी। उसने वही छल हनुमान्‌जीसे भी किया। हनुमान्‌जीने तुरंत ही उसका कपट पहचान लिया॥ २॥

ताहि मारि मारुतसुत बीरा। बारिधि पार गयउ मतिधीरा॥
तहाँ जाइ देखी बन सोभा। गुंजत चंचरीक मधु लोभा॥ ३॥

पवनपुत्र धीरबुद्धि वीर श्रीहनुमान्‌जी उसको मारकर समुद्रके पार गये। वहाँ जाकर उन्होंने

वनकी शोभा देखी। मधु (पुष्परस) के लोभसे भौंरे गुंजार कर रहे थे॥ ३॥

नाना तरु फल फूल सुहाए। खग मृग बृंद देखि मन भाए॥
सैल बिसाल देखि एक आगें। ता पर धाइ चढ़ेउ भय त्यागें॥ ४॥

अनेकों प्रकारके वृक्ष फल-फूलसे शोभित हैं। पक्षी और पशुओंके समूहको देखकर तो वे मनमें [बहुत ही] प्रसन्न हुए। सामने एक विशाल पर्वत देखकर हनुमान्‌जी भय त्यागकर उसपर दौड़कर जा चढ़े॥ ४॥

उमा न कछु कपि कै अधिकाई। प्रभु प्रताप जो कालहि खाई॥
गिरि पर चढ़ि लंका तेहिं देखी। कहि न जाइ अति दुर्ग बिसेषी॥ ५॥

[शिवजी कहते हैं—] हे उमा! इसमें वानर हनुमान्‌की कुछ बड़ाई नहीं है। यह प्रभुका प्रताप है, जो कालको भी खा जाता है। पर्वतपर चढ़कर उन्होंने लङ्का देखी। बहुत ही बड़ा किला है, कुछ कहा नहीं जाता॥ ५॥

अति उतंग जलनिधि चहुँ पासा। कनक कोट कर परम प्रकासा॥ ६॥

वह अत्यन्त ऊँचा है, उसके चारों ओर समुद्र है। सोनेके परकोटे (चहारदीवारी) का परम प्रकाश हो रहा है॥ ६॥

छं०—कनक कोट बिचित्र मनि कृत सुंदरायतना घना।
चउहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथीं चारु पुर बहु बिधि बना॥
गज बाजि खच्चर निकर पदचर रथ बरूथन्हि को गनै।
बहुरूप निसिचर जूथ अतिबल सेन बरनत नहिं बनै॥ १॥

विचित्र मणियोंसे जड़ा हुआ सोनेका परकोटा है, उसके अंदर बहुत-से सुन्दर-सुन्दर घर हैं। चौराहे, बाजार, सुन्दर मार्ग और गलियाँ हैं; सुन्दर नगर बहुत प्रकारसे सजा हुआ है। हाथी, घोड़े, खच्चरोंके समूह तथा पैदल और रथोंके समूहोंको कौन गिन सकता है! अनेक रूपोंके राक्षसोंके दल हैं, उनकी अत्यन्त बलवती सेना वर्णन करते नहीं बनती॥ १॥

बन बाग उपबन बाटिका सर कूप बापीं सोहहीं।
नर नाग सुर गंधर्ब कन्या रूप मुनि मन मोहहीं॥
कहुँ माल देह बिसाल सैल समान अतिबल गर्जहीं।
नाना अखारेन्ह भिरहिं बहुबिधि एक एकन्ह तर्जहीं॥ २॥

वन, बाग, उपवन (बगीचे), फुलवाड़ी, तालाब, कुएँ और बावलियाँ सुशोभित हैं। मनुष्य, नाग, देवताओं और गन्धर्वोंकी कन्याएँ अपने सौन्दर्यसे मुनियोंके भी मनोंको मोहे लेती हैं। कहीं पर्वतके समान विशाल शरीरवाले बड़े ही बलवान् मल्ल (पहलवान) गरज रहे हैं। वे अनेकों अखाड़ोंमें बहुत प्रकारसे भिड़ते और एक-दूसरेको ललकराते हैं॥ २॥

करि जतन भट कोटिन्ह बिकट तन नगर चहुँ दिसि रच्छहीं।
कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज खल निसाचर भच्छहीं॥
एहि लागि तुलसीदास इन्ह की कथा कछु एक है कही।
रघुबीर सर तीरथ सरीरन्हि त्यागि गति पैहहिं सही॥ ३॥

भयंकर शरीरवाले करोड़ों योद्धा यत्न करके (बड़ी सावधानीसे) नगरकी चारों दिशाओंमें (सब ओरसे) रखवाली करते हैं। कहीं दुष्ट राक्षस भैंसों, मनुष्यों, गायों, गदहों और बकरोंको खा रहे हैं। तुलसीदासने इनकी कथा इसीलिये कुछ थोड़ी-सी कही है कि ये निश्चय ही श्रीरामचन्द्रजीके बाणरूपी तीर्थमें शरीरोंको त्यागकर परमगति पावेंगे॥ ३॥

दो०—पुर रखवारे देखि बहु कपि मन कीन्ह बिचार।
अति लघु रूप धरौं निसि नगर करौं पइसार॥ ३॥

नगरके बहुसंख्यक रखवालोंको देखकर हनुमान्‌जीने मनमें विचार किया कि अत्यन्त छोटा रूप धरूँ और रातके समय नगरमें प्रवेश करूँ॥ ३॥

चौ०—मसक समान रूप कपि धरी। लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी।
नाम लंकिनी एक निसिचरी। सो कह चलेसि मोहि निंदरी॥ १॥

हनुमान्‌जी मच्छड़के समान (छोटा-सा) रूप धारण कर नररूपसे लीला करनेवाले भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करके लङ्काको चले। [लङ्काके द्वारपर] लङ्किनी नामकी एक राक्षसी रहती थी। वह बोली—मेरा निरादर करके (बिना मुझसे पूछे) कहाँ चला जा रहा है?॥ १॥

जानेहि नहीं मरमु सठ मोरा। मोर अहार जहाँ लगि चोरा॥
मुठिका एक महा कपि हनी। रुधिर बमत धरनीं ढनमनी॥ २॥

हे मूर्ख! तूने मेरा भेद नहीं जाना? जहाँतक (जितने) चोर हैं, वे सब मेरे आहार हैं। महाकपि हनुमान्‌जीने उसे एक घूँसा मारा, जिससे वह खूनकी उलटी करती हुई पृथ्वीपर लुढ़क पड़ी॥ २॥

पुनि संभारि उठी सो लंका। जोरि पानि कर बिनय ससंका॥
जब रावनहि ब्रह्म बर दीन्हा। चलत बिरंचि कहा मोहि चीन्हा॥ ३॥

वह लङ्किनी फिर अपनेको सँभालकर उठी और डरके मारे हाथ जोड़कर विनती करने लगी। [वह बोली—] रावणको जब ब्रह्माजीने वर दिया था, तब चलते समय उन्होंने मुझे राक्षसोंके विनाशकी यह पहचान बता दी थी कि—॥ ३॥

बिकल होसि तैं कपि के मारे। तब जानेसु निसिचर संघारे॥
तात मोर अति पुन्य बहूता। देखेउँ नयन राम कर दूता॥ ४॥

जब तू बंदरके मारनेसे व्याकुल हो जाय, तब तू राक्षसोंका संहार हुआ जान लेना। हे तात! मेरे बड़े पुण्य हैं, जो मैं श्रीरामचन्द्रजीके दूत (आप) को नेत्रोंसे देख पायी॥ ४॥

दो०—तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥ ४॥

हे तात! स्वर्ग और मोक्षके सब सुखोंको तराजूके एक पलड़ेमें रक्खा जाय, तो भी वे सब मिलकर [दूसरे पलड़ेपर रक्खे हुए] उस सुखके बराबर नहीं हो सकते, जो लव (क्षण) मात्रके सत्सङ्गसे होता है॥ ४॥

चौ०—प्रबिसि नगर कीजे सब काजा। हृदयँ राखि कोसलपुर राजा॥
गरल सुधा रिपु करहिं मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई॥ १॥

अयोध्यापुरीके राजा श्रीरघुनाथजीको हृदयमें रक्खे हुए नगरमें प्रवेश करके सब काम कीजिये।

उसके लिये विष अमृत हो जाता है, शत्रु मित्रता करने लगते हैं, समुद्र गायके खुरके बराबर हो जाता है, अग्निमें शीतलता आ जाती है॥ १॥

गरुड़ सुमेरु रेनु सम ताही। राम कृपा करि चितवा जाही॥
अति लघु रूप धरेउ हनुमाना। पैठा नगर सुमिरि भगवाना॥ २॥

और हे गरुड़जी! सुमेरु पर्वत उसके लिये रजके समान हो जाता है, जिसे श्रीरामचन्द्रजीने एक बार कृपा करके देख लिया। तब हनुमान्‌जीने बहुत ही छोटा रूप धारण किया और भगवान्‌का स्मरण करके नगरमें प्रवेश किया॥ २॥

मंदिर मंदिर प्रति करि सोधा। देखे जहँ तहँ अगनित जोधा॥
गयउ दसानन मंदिर माहीं। अति बिचित्र कहि जात सो नाहीं॥ ३॥

उन्होंने एक-एक (प्रत्येक) महलकी खोज की। जहाँ तहाँ असंख्य योद्धा देखे। फिर वे रावणके महलमें गये। वह अत्यन्त विचित्र था, जिसका वर्णन नहीं हो सकता॥ ३॥

सयन किएँ देखा कपि तेही। मंदिर महुँ न दीखि बैदेही॥
भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरि मंदिर तहँ भिन्न बनावा॥ ४॥

हनुमान्‌जीने उस (रावण) को शयन किये देखा; परंतु महलमें जानकीजी नहीं दिखायी दीं। फिर एक सुन्दर महल दिखायी दिया। वहाँ (उसमें) भगवान्‌का एक अलग मन्दिर बना हुआ था॥ ४॥

दो०—रामायुध अंकित गृह सोभा बरनि न जाइ।
नव तुलसिका बृंद तहँ देखि हरष कपिराइ॥ ५॥

वह महल श्रीरामजीके आयुध (धनुष-बाण) के चिह्नोंसे अंकित था, उसकी शोभा वर्णन नहीं की जा सकती। वहाँ नवीन-नवीन तुलसीके वृक्ष-समूहोंको देखकर कपिराज श्रीहनुमान्‌जी हर्षित हुए॥ ५॥

चौ०—लंका निसिचर निकर निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा॥
मन महुँ तरक करैं कपि लागा। तेहीं समय बिभीषनु जागा॥ १॥

लङ्का तो राक्षसोंके समूहका निवासस्थान है। यहाँ सज्जन (साधु पुरुष) का निवास कहाँ? हनुमान्‌जी मनमें इस प्रकार तर्क करने लगे। उसी समय विभीषणजी जागे॥ १॥

राम राम तेहिं सुमिरन कीन्हा। हृदयँ हरष कपि सज्जन चीन्हा॥
एहि सन हठि करिहउँ पहिचानी। साधु ते होइ न कारज हानी॥ २॥

उन्होंने (विभीषणने) रामनामका स्मरण (उच्चारण) किया। हनुमान्‌जीने उन्हें सज्जन जाना और हृदयमें हर्षित हुए। [हनुमान्‌जीने विचार किया कि] इनसे हठ करके (अपनी ओरसे ही) परिचय करूँगा, क्योंकि साधुसे कार्यकी हानि नहीं होती [प्रत्युत लाभ ही होता है]॥ २॥

बिप्र रूप धरि बचन सुनाए। सुनत बिभीषन उठि तहँ आए॥
करि प्रनाम पूँछी कुसलाई। बिप्र कहहु निज कथा बुझाई॥ ३॥

ब्राह्मणका रूप धरकर हनुमान्‌जीने उन्हें वचन सुनाये (पुकारा)। सुनते ही विभीषणजी उठकर वहाँ आये। प्रणाम करके कुशल पूछी [और कहा कि] हे ब्राह्मणदेव! अपनी कथा समझाकर कहिये॥ ३॥

की तुम्ह हरि दासन्ह महँ कोई। मोरें हृदय प्रीति अति होई॥
की तुम्ह रामु दीन अनुरागी। आयहु मोहि करन बड़भागी॥ ४॥

क्या आप हरिभक्तोंमेंसे कोई हैं ? क्योंकि आपको देखकर मेरे हृदयमें अत्यन्त प्रेम उमड़ रहा है। अथवा क्या आप दीनोंसे प्रेम करनेवाले स्वयं श्रीरामजी ही हैं, जो मुझे बड़भागी बनाने (घर-बैठे दर्शन देकर कृतार्थ करने) आये हैं ? ॥ ४ ॥

दो०—तब हनुमंत कही सब राम कथा निज नाम।
सुनत जुगल तन पुलक मन मगन सुमिरि गुन ग्राम ॥ ६ ॥

तब हनुमान्‌जीने श्रीरामचन्द्रजीकी सारी कथा कहकर अपना नाम बताया। सुनते ही दोनोंके शरीर पुलकित हो गये और श्रीरामजीके गुणसमूहोंका स्मरण करके दोनोंके मन [प्रेम और आनन्दमें] मग्न हो गये ॥ ६ ॥

चौ०—सुनहु पवनसुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्हि महुँ जीभ बिचारी ॥
तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा। करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा ॥ १ ॥

[विभीषणजीने कहा—] हे पवनपुत्र ! मेरी रहनी सुनो। मैं यहाँ वैसे ही रहता हूँ, जैसे दाँतोंके बीचमें बेचारी जीभ। हे तात ! मुझे अनाथ जानकर सूर्यकुलके नाथ श्रीरामचन्द्रजी क्या कभी मुझपर कृपा करेंगे ? ॥ १ ॥

तामस तनु कछु साधन नाहीं। प्रीति न पद सरोज मन माहीं ॥
अब मोहि भा भरोस हनुमंता। बिनु हरिकृपा मिलहिं नहिं संता ॥ २ ॥

मेरा तामसी (राक्षस) शरीर होनेसे साधन तो कुछ बनता नहीं और न मनमें श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंमें प्रेम ही है। परंतु हे हनुमान् ! अब मुझे विश्वास हो गया कि श्रीरामजीकी मुझपर कृपा है; क्योंकि हरिकी कृपाके बिना संत नहीं मिलते ॥ २ ॥

जौं रघुबीर अनुग्रह कीन्हा। तौ तुम्ह मोहि दरसु हठि दीन्हा ॥
सुनहु बिभीषन प्रभु कै रीती। करहिं सदा सेवक पर प्रीती ॥ ३ ॥

जब श्रीरघुवीरने कृपा की है, तभी तो आपने मुझे हठ करके (अपनी ओरसे) दर्शन दिये हैं। [हनुमान्‌जीने कहा—] हे विभीषणजी ! सुनिये, प्रभुकी यही रीति है कि वे सेवकपर सदा ही प्रेम किया करते हैं ॥ ३ ॥

कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबहीं बिधि हीना ॥
प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा ॥ ४ ॥

भला कहिये, मैं ही कौन बड़ा कुलीन हूँ ? [जातिका] चञ्चल वानर हूँ और सब प्रकारसे नीच हूँ। प्रातःकाल जो हमलोगों (बंदरों) का नाम ले ले तो उस दिन उसे भोजन न मिले ॥ ४ ॥

दो०—अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर ॥ ७ ॥

हे सखा ! सुनिये, मैं ऐसा अधम हूँ; पर श्रीरामचन्द्रजीने तो मुझपर भी कृपा ही की है। भगवान्‌के गुणोंका स्मरण करके हनुमान्‌जीके दोनों नेत्रोंमें [प्रेमाश्रुओंका] जल भर आया ॥ ७ ॥

चौ०—जानतहूँ अस स्वामि बिसारी। फिरहिं ते काहे न होहिं दुखारी ॥
एहि बिधि कहत राम गुन ग्रामा। पावा अनिर्बाच्य बिश्रामा ॥ १ ॥

जो जानते हुए भी ऐसे स्वामी (श्रीरघुनाथजी) को भुलाकर [विषयोंके पीछे] भटकते फिरते

है, वे दुखी क्यों न हों ? इस प्रकार श्रीरामजीके गुणसमूहोंको कहते हुए उन्होंने अनिर्वचनीय (परम) शान्ति प्राप्त की ॥ १ ॥

पुनि सब कथा बिभीषन कही। जेहि बिधि जनकसुता तहँ रही ॥
तब हनुमंत कहा सुनु भ्राता। देखी चहउँ जानकी माता ॥ २ ॥

फिर विभीषणजीने, श्रीजानकीजी जिस प्रकार वहाँ (लङ्कामें) रहती थीं, वह सब कथा कही। तब हनुमान्‌जीने कहा—हे भाई ! सुनो, मैं जानकी माताको देखना चाहता हूँ ॥ २ ॥

जुगुति बिभीषन सकल सुनाई। चलेउ पवनसुत बिदा कराई ॥
करि सोइ रूप गयउ पुनि तहवाँ। बन असोक सीता रह जहवाँ ॥ ३ ॥

विभीषणजीने [माताके दर्शनकी] सब युक्तियाँ (उपाय) कह सुनायीं। तब हनुमान्‌जी विदा लेकर चले। फिर वही (पहलेका मसक-सरीखा) रूप धरकर वहाँ गये, जहाँ अशोकवनमें (वनके जिस भागमें) सीताजी रहती थीं ॥ ३ ॥

देखि मनहि महुँ कीन्ह प्रनामा। बैठेहिं बीति जात निसि जामा ॥
कृस तनु सीस जटा एक बेनी। जपति हृदयँ रघुपति गुन श्रेनी ॥ ४ ॥

सीताजीको देखकर हनुमान्‌जीने उन्हें मनहीमें प्रणाम किया। उन्हें बैठे-ही-बैठे रात्रिके चारों पहर बीत जाते हैं। शरीर दुबला हो गया है, सिरपर जटाओंकी एक वेणी (लट) है। हृदयमें श्रीरघुनाथजीके गुणसमूहोंका जाप (स्मरण) करती रहती हैं ॥ ४ ॥

दो०—निज पद नयन दिएँ मन राम पद कमल लीन।
परम दुखी भा पवनसुत देखि जानकी दीन ॥ ८ ॥

श्रीजानकीजी नेत्रोंको अपने चरणोंमें लगाये हुए हैं (नीचेकी ओर देख रही हैं) और मन श्रीरामजीके चरणकमलोंमें लीन है। जानकीजीको दीन (दुखी) देखकर पवनपुत्र हनुमान्‌जी बहुत ही दुखी हुए ॥ ८ ॥

चौ०—तरु पल्लव महुँ रहा लुकाई। करइ बिचार करौं का भाई ॥
तेहि अवसर रावनु तहँ आवा। संग नारि बहु किएँ बनावा ॥ १ ॥

हनुमान्‌जी वृक्षके पत्तोंमें छिप रहे और विचार करने लगे कि हे भाई ! क्या करूँ (इनका दुःख कैसे दूर करूँ) ? उसी समय बहुत-सी स्त्रियोंको साथ लिये सज-धजकर रावण वहाँ आया ॥ १ ॥

बहु बिधि खल सीतहि समुझावा। साम दान भय भेद देखावा ॥
कह रावनु सुनु सुमुखि सयानी। मंदोदरी आदि सब रानी ॥ २ ॥

उस दुष्टने सीताजीको बहुत प्रकारसे समझाया। साम, दान, भय और भेद दिखलाया। रावणने कहा—हे सुमुखि ! हे सयानी ! सुनो। मंदोदरी आदि सब रानियोंको— ॥ २ ॥

तव अनुचरीं करउँ पन मोरा। एक बार बिलोकु मम ओरा ॥
तृन धरि ओट कहति बैदेही। सुमिरि अवधपति परम सनेही ॥ ३ ॥

मैं तुम्हारी दासी बना दूँगा, यह मेरा प्रण है। तुम एक बार मेरी ओर देखो तो सही ! अपने परम स्नेही कोसलाधीश श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करके जानकीजी तिनकेकी आड़ (परदा) करके कहने लगीं— ॥ ३ ॥

सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा। कबहुँ कि नलिनी करइ बिकासा॥
अस मन समुझु कहति जानकी। खल सुधि नहिं रघुबीर बान की॥ ४॥

हे दशमुख! सुन, जुगनूके प्रकाशसे कभी कमलिनी खिल सकती है? जानकीजी फिर कहती हैं—तू [अपने लिये भी] ऐसा ही मनमें समझ ले। रे दुष्ट! तुझे श्रीरघुवीरके बाणकी खबर नहीं है॥ ४॥

सठ सूनें हरि आनेहि मोही। अधम निलज्ज लाज नहिं तोही॥ ५॥

रे पापी! तू मुझे सूनेमें हर लाया है। रे अधम! निर्लज्ज! तुझे लज्जा नहीं आती?॥ ५॥

दो०—आपुहि सुनि खद्योत सम रामहि भानु समान।
परुष बचन सुनि काढ़ि असि बोला अति खिसिआन॥ ९॥

अपनेको जुगनूके समान और रामचन्द्रजीको सूर्यके समान सुनकर और सीताजीके कठोर वचनोंको सुनकर रावण तलवार निकालकर बड़े गुस्सेमें आकर बोला—॥ ९॥

चौ०—सीता तैं मम कृत अपमाना। कटिहउँ तव सिर कठिन कृपाना॥
नाहिं त सपदि मानु मम बानी। सुमुखि होति न त जीवन हानी॥ १॥

सीता! तूने मेरा अपमान किया है। मैं तेरा सिर इस कठोर कृपाणसे काट डालूँगा। नहीं तो [अब भी] जल्दी मेरी बात मान ले। हे सुमुखि! नहीं तो जीवनसे हाथ धोना पड़ेगा!॥ १॥

स्याम सरोज दाम सम सुंदर। प्रभु भुज करि कर सम दसकंधर॥
सो भुज कंठ कि तव असि घोरा। सुनु सठ अस प्रवान पन मोरा॥ २॥

[सीताजीने कहा—] हे दशग्रीव! प्रभुकी भुजा जो श्याम कमलकी मालाके समान सुन्दर और हाथीकी सूँड़के समान [पुष्ट तथा विशाल] है, या तो वह भुजा ही मेरे कण्ठमें पड़ेगी या तेरी भयानक तलवार ही। रे शठ! सुन, यही मेरा सच्चा प्रण है॥ २॥

चंद्रहास हरु मम परितापं। रघुपति बिरह अनल संजातं॥
सीतल निसित बहसि बर धारा। कह सीता हरु मम दुख भारा॥ ३॥

सीताजी कहती हैं—हे चन्द्रहास (तलवार)! श्रीरघुनाथजीके विरहकी अग्निसे उत्पन्न मेरी बड़ी भारी जलनको तू हर ले, हे तलवार! तू शीतल, तीव्र और श्रेष्ठ धारा बहाती है (अर्थात् तेरी धारा ठंढी और तेज है), तू मेरे दुःखके बोझको हर ले॥ ३॥

सुनत बचन पुनि मारन धावा। मयतनयाँ कहि नीति बुझावा॥
कहेसि सकल निसिचरिन्ह बोलाई। सीतहि बहु बिधि त्रासहु जाई॥ ४॥

सीताजीके ये वचन सुनते ही वह मारने दौड़ा। तब मय दानवकी पुत्री मन्दोदरीने नीति कहकर उसे समझाया। तब रावणने सब राक्षसियोंको बुलाकर कहा कि जाकर सीताको बहुत प्रकारसे भय दिखलाओ॥ ४॥

मास दिवस महुँ कहा न माना। तौ मैं मारबि काढ़ि कृपाना॥ ५॥

यदि महीनेभरमें यह कहा न माने तो मैं इसे तलवार निकालकर मार डालूँगा॥ ५॥

दो०—भवन गयउ दसकंधर इहाँ पिसाचिनि बृंद।
सीतहि त्रास देखावहिं धरहिं रूप बहु मंद॥ १०॥

[यों कहकर] रावण घर चला गया। यहाँ राक्षसियोंके समूह बहुत-से बुरे रूप धरकर

सीताजीको भय दिखलाने लगे ॥ १० ॥

चौ०—त्रिजटा नाम राच्छसी एका। राम चरन रति निपुन बिबेका ॥
सबन्हौ बोलि सुनाएसि सपना। सीतहि सेइ करहु हित अपना ॥ १ ॥

उनमें एक त्रिजटा नामकी राक्षसी थी। उसकी श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें प्रीति थी और वह विवेक (ज्ञान) में निपुण थी। उसने सबोंको बुलाकर अपना स्वप्न सुनाया और कहा—सीताजीकी सेवा करके अपना कल्याण कर लो ॥ १ ॥

सपनें बानर लंका जारी। जातुधान सेना सब मारी ॥
खर आरूढ़ नगन दससीसा। मुंडित सिर खंडित भुज बीसा ॥ २ ॥

स्वप्नमें [मैंने देखा कि] एक बंदरने लङ्का जला दी। राक्षसोंकी सारी सेना मार डाली गयी। रावण नंगा है और गदहेपर सवार है। उसके सिर मुँड़े हुए हैं, बीसों भुजाएँ कटी हुई हैं ॥ २ ॥

एहि बिधि सो दच्छिन दिसि जाई। लंका मनहुँ बिभीषन पाई ॥
नगर फिरी रघुबीर दोहाई। तब प्रभु सीता बोलि पठाई ॥ ३ ॥

इस प्रकारसे वह दक्षिण (यमपुरीकी) दिशाको जा रहा है और मानो लङ्का विभीषणने पायी है। नगरमें श्रीरामचन्द्रजीकी दुहाई फिर गयी। तब प्रभुने सीताजीको बुला भेजा ॥ ३ ॥

यह सपना मैं कहउँ पुकारी। होइहि सत्य गएँ दिन चारी ॥
तासु बचन सुनि ते सब डरीं। जनकसुता के चरनन्हि परीं ॥ ४ ॥

मैं पुकारकर (निश्चयके साथ) कहती हूँ कि यह स्वप्न चार (कुछ ही) दिनों बाद सत्य होकर रहेगा। उसके वचन सुनकर वे सब राक्षसियाँ डर गयीं और जानकीजीके चरणोंपर गिर पड़ीं ॥ ४ ॥

दो०—जहँ तहँ गईं सकल तब सीता कर मन सोच।
मास दिवस बीतें मोहि मारिहि निसिचर पोच ॥ ११ ॥

तब (इसके बाद) वे सब जहाँ-तहाँ चली गयीं। सीताजी मनमें सोच करने लगीं कि एक महीना बीत जानेपर नीच राक्षस रावण मुझे मारेगा ॥ ११ ॥

चौ०—त्रिजटा सन बोलीं कर जोरी। मातु बिपति संगिनि तैं मोरी ॥
तजौं देह करु बेगि उपाई। दुसह बिरहु अब नहिं सहि जाई ॥ १ ॥

सीताजी हाथ जोड़कर त्रिजटासे बोलीं—हे माता ! तू मेरी विपत्तिकी संगिनी है। जल्दी कोई ऐसा उपाय कर जिससे मैं शरीर छोड़ सकूँ। विरह असह्य हो चला है, अब यह सहा नहीं जाता ॥ १ ॥

आनि काठ रचु चिता बनाई। मातु अनल पुनि देहि लगाई ॥
सत्य करहि मम प्रीति सयानी। सुनै को श्रवन सूल सम बानी ॥ २ ॥

काठ लाकर चिता बनाकर सजा दे। हे माता ! फिर उसमें आग लगा दे। हे सयानी ! तू मेरी प्रीतिको सत्य कर दे। रावणकी शूलके समान दुःख देनेवाली वाणी कानोंसे कौन सुने ? ॥ २ ॥

सुनत बचन पद गहि समुझाएसि। प्रभु प्रताप बल सुजसु सुनाएसि ॥
निसि न अनल मिल सुनु सुकुमारी। अस कहि सो निज भवन सिधारी ॥ ३ ॥

सीताजीके वचन सुनकर त्रिजटाने चरण पकड़कर उन्हें समझाया और प्रभुका प्रताप, बल और सुयश सुनाया। [उसने कहा—] हे सुकुमारी ! सुनो, रात्रिके समय आग नहीं मिलेगी। ऐसा

कहकर वह अपने घर चली गयी ॥ ३ ॥

कह सीता बिधि भा प्रतिकूला। मिलिहि न पावक मिटिहि न सूला ॥
देखिअत प्रगट गगन अंगारा। अवनि न आवत एकउ तारा ॥ ४ ॥

सीताजी [मन-ही-मन] कहने लगीं— [क्या करूँ] विधाता ही विपरीत हो गया। न आग मिलेगी, न पीड़ा मिटेगी। आकाशमें अंगारे प्रकट दिखायी दे रहे हैं, पर पृथ्वीपर एक भी तारा नहीं आता ॥ ४ ॥

पावकमय ससि स्रवत न आगी। मानहुँ मोहि जानि हतभागी ॥
सुनहि बिनय मम बिटप असोका। सत्य नाम करु हरु मम सोका ॥ ५ ॥

चन्द्रमा अग्निमय है, किंतु वह भी मानो मुझे हतभागिनी जानकर आग नहीं बरसाता। हे अशोकवृक्ष ! मेरी विनती सुन ! मेरा शोक हर ले और अपना [अशोक] नाम सत्य कर ॥ ५ ॥

नूतन किसलय अनल समाना। देहि अगिनि जनि करहि निदाना ॥
देखि परम बिरहाकुल सीता। सो छन कपिहि कलप सम बीता ॥ ६ ॥

तेरे नये-नये कोमल पत्ते अग्निके समान हैं। अग्नि दे, विरह-रोगका अन्त मत कर (अर्थात् विरह-रोगको बढ़ाकर सीमातक न पहुँचा) सीताजीको विरहसे परम व्याकुल देखकर वह क्षण हनुमान्‌जीको कल्पके समान बीता ॥ ६ ॥

सो०—कपि करि हृदयँ बिचार दीन्हि मुद्रिका डारि तब।
जनु असोक अंगार दीन्ह हरषि उठि कर गहेउ ॥ १२ ॥

तब हनुमान्‌जीने हृदयमें विचारकर [सीताजीके सामने] अँगूठी डाल दी, मानो अशोकने अंगारा दे दिया। [यह समझकर] सीताजीने हर्षित होकर उठकर उसे हाथमें ले लिया ॥ १२ ॥

चौ०—तब देखी मुद्रिका मनोहर। राम नाम अंकित अति सुंदर ॥
चकित चितव मुदरी पहिचानी। हरष बिषाद हृदयँ अकुलानी ॥ १ ॥

तब उन्होंने राम-नामसे अङ्कित अत्यन्त सुन्दर एवं मनोहर अँगूठी देखी। अँगूठीको पहचानकर सीताजी आश्चर्यचकित होकर उसे देखने लगीं और हर्ष तथा विषादसे हृदयमें अकुला उठीं ॥ १ ॥

जीति को सकइ अजय रघुराई। माया तें असि रचि नहिं जाई ॥
सीता मन बिचार कर नाना। मधुर बचन बोलेउ हनुमाना ॥ २ ॥

[वे सोचने लगीं—] श्रीरघुनाथजी तो सर्वथा अजेय हैं, उन्हें कौन जीत सकता है ? और मायासे ऐसी (मायाके उपादानसे सर्वथा रहित दिव्य, चिन्मय) अँगूठी बनायी नहीं जा सकती। सीताजी मनमें अनेक प्रकारके विचार कर रही थीं। इसी समय हनुमान्‌जी मधुर वचन बोले— ॥ २ ॥

रामचंद्र गुन बरनैं लागा। सुनतहिं सीता कर दुख भागा ॥
लागीं सुनैं श्रवन मन लाई। आदिहु तें सब कथा सुनाई ॥ ३ ॥

वे श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंका वर्णन करने लगे, [जिनके] सुनते ही सीताजीका दुःख भाग गया। वे कान और मन लगाकर उन्हें सुनने लगीं। हनुमान्‌जीने आदिसे लेकर सारी कथा कह सुनायी ॥ ३ ॥

श्रवनामृत जेहिं कथा सुहाई। कही सो प्रगट होति किन भाई ॥
तब हनुमंत निकट चलि गयऊ। फिरि बैठीं मन बिसमय भयऊ ॥ ४ ॥

[सीताजी बोलीं—] जिसने कानोंके लिये अमृतरूप यह सुन्दर कथा कही, वह हे भाई ! प्रकट क्यों नहीं होता ? तब हनुमान्‌जी पास चले गये। उन्हें देखकर सीताजी फिरकर (मुख फेरकर) बैठ गयीं; उनके मनमें आश्चर्य हुआ ॥ ४ ॥

राम दूत मैं मातु जानकी। सत्य सपथ करुनानिधान की ॥
यह मुद्रिका मातु मैं आनी। दीन्हि राम तुम्ह कहँ सहिदानी ॥ ५ ॥

[हनुमान्‌जीने कहा—] हे माता जानकी ! मैं श्रीरामजीका दूत हूँ। करुणानिधानकी सच्ची शपथ करता हूँ। हे माता ! यह अँगूठी मैं ही लाया हूँ। श्रीरामजीने मुझे आपके लिये यह सहिदानी (निशानी या पहिचान) दी है ॥ ५ ॥

नर बानरहि संग कहु कैसें। कही कथा भइ संगति जैसें ॥ ६ ॥

[सीताजीने पूछा—] नर और वानरका सङ्ग कहो कैसे हुआ ? तब हनुमान्‌जीने जैसे सङ्ग हुआ था, वह सब कथा कही ॥ ६ ॥

दो०—कपि के बचन सप्रेम सुनि उपजा मन बिस्वास।
जाना मन क्रम बचन यह कृपासिंधु कर दास ॥ १३ ॥

हनुमान्‌जीके प्रेमयुक्त वचन सुनकर सीताजीके मनमें विश्वास उत्पन्न हो गया। उन्होंने जान लिया कि यह मन, वचन और कर्मसे कृपासागर श्रीरघुनाथजीका दास है ॥ १३ ॥

चौ०—हरिजन जानि प्रीति अति गाढ़ी। सजल नयन पुलकावलि बाढ़ी ॥
बूड़त बिरह जलधि हनुमाना। भयहु तात मो कहुँ जलजाना ॥ १ ॥

भगवान्‌का जन (सेवक) जानकर अत्यन्त गाढ़ी प्रीति हो गयी। नेत्रोंमें [प्रेमाश्रुओंका] जल भर आया और शरीर अत्यन्त पुलकित हो गया। [सीताजीने कहा—]हे तात हनुमान्‌! विरहसागरमें डूबती हुई मुझको तुम जहाज हुए ॥ १ ॥

अब कहु कुसल जाउँ बलिहारी। अनुज सहित सुख भवन खरारी ॥
कोमलचित कृपाल रघुराई। कपि केहि हेतु धरी निठुराई ॥ २ ॥

मैं बलिहारी जाती हूँ, अब छोटे भाई लक्ष्मणजीसहित खरके शत्रु सुखधाम प्रभुका कुशल-मङ्गल कहो। श्रीरघुनाथजी तो कोमलहृदय और कृपालु हैं। फिर हे हनुमान्‌ ! उन्होंने किस कारण यह निष्ठुरता धारण कर ली है ? ॥ २ ॥

सहज बानि सेवक सुखदायक। कबहुँक सुरति करत रघुनायक ॥
कबहुँ नयन मम सीतल ताता। होइहहिं निरखि स्याम मृदु गाता ॥ ३ ॥

सेवकको सुख देना उनकी स्वाभाविक बान है। वे श्रीरघुनाथजी क्या कभी मेरी भी याद करते हैं ? हे तात ! क्या कभी उनके कोमल साँवले अङ्गोंको देखकर मेरे नेत्र शीतल होंगे ? ॥ ३ ॥

बचनु न आव नयन भरे बारी। अहह नाथ हौं निपट बिसारी ॥
देखि परम बिरहाकुल सीता। बोला कपि मृदु बचन बिनीता ॥ ४ ॥

[मुँहसे] वचन नहीं निकलता, नेत्रोंमें [विरहके आँसुओंका] जल भर आया। [बड़े दुःखसे वे बोलीं—] हा नाथ ! आपने मुझे बिल्कुल ही भुला दिया ! सीताजीको विरहसे परम व्याकुल देखकर हनुमान्‌जी कोमल और विनीत वचन बोले— ॥ ४ ॥

मातु कुसल प्रभु अनुज समेता। तव दुख दुखी सुकृपा निकेता॥
जनि जननी मानहु जियँ ऊना। तुम्ह ते प्रेमु राम कें दूना॥ ५॥

हे माता! सुन्दर कृपाके धाम प्रभु भाई लक्ष्मणजीके सहित [शरीरसे] कुशल हैं, परंतु आपके दुःखसे दुखी हैं। हे माता! मनमें ग्लानि न मानिये (मन छोटा करके दुःख न कीजिये)। श्रीरामचन्द्रजीके हृदयमें आपसे दूना प्रेम है॥ ५॥

दो०—रघुपति कर संदेसु अब सुनु जननी धरि धीर।
अस कहि कपि गदगद भयउ भरे बिलोचन नीर॥ १४॥

हे माता! अब धीरज धरकर श्रीरघुनाथजीका संदेश सुनिये। ऐसा कहकर हनुमान्‌जी प्रेमसे गद्‌गद हो गये। उनके नेत्रोंमें [प्रेमाश्रुओंका] जल भर आया॥ १४॥

चौ०—कहेउ राम बियोग तव सीता। मो कहुँ सकल भए बिपरीता॥
नव तरु किसलय मनहुँ कृसानू। कालनिसा सम निसि ससि भानू॥ १॥

[हनुमान्‌जी बोले—] श्रीरामचन्द्रजीने कहा है कि हे सीते! तुम्हारे वियोगमें मेरे लिये सभी पदार्थ प्रतिकूल हो गये हैं। वृक्षोंके नये-नये कोमल पत्ते मानो अग्निके समान, रात्रि कालरात्रिके समान, चन्द्रमा सूर्यके समान॥ १॥

कुबलय बिपिन कुंत बन सरिसा। बारिद तपत तेल जनु बरिसा॥
जे हित रहे करत तेइ पीरा। उरग स्वास सम त्रिबिध समीरा॥ २॥

और कमलोंके वन भालोंके वनके समान हो गये हैं। मेघ मानो खौलता हुआ तेल बरसाते हैं। जो हित करनेवाले थे, वे ही अब पीड़ा देने लगे हैं। त्रिविध (शीतल, मन्द, सुगन्ध) वायु साँपके श्वासके समान (जहरीली और गरम) हो गयी है॥ २॥

कहेहू तें कछु दुख घटि होई। काहि कहौं यह जान न कोई॥
तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा॥ ३॥

मनका दुःख कह डालनेसे भी कुछ घट जाता है। पर कहूँ किससे? यह दुःख कोई जानता नहीं। हे प्रिये! मेरे और तेरे प्रेमका तत्त्व (रहस्य) एक मेरा मन ही जानता है॥ ३॥

सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं॥
प्रभु संदेसु सुनत बैदेही। मगन प्रेम तन सुधि नहिं तेही॥ ४॥

और वह मन सदा तेरे ही पास रहता है। बस, मेरे प्रेमका सार इतनेमें ही समझ ले। प्रभुका संदेश सुनते ही जानकीजी प्रेममें मग्न हो गयीं। उन्हें शरीरकी सुध न रही॥ ४॥

कह कपि हृदयँ धीर धरु माता। सुमिरु राम सेवक सुखदाता॥
उर आनहु रघुपति प्रभुताई। सुनि मम बचन तजहु कदराई॥ ५॥

हनुमान्‌जीने कहा—हे माता! हृदयमें धैर्य धारण करो और सेवकोंको सुख देनेवाले श्रीरामजीका स्मरण करो। श्रीरघुनाथजीकी प्रभुताको हृदयमें लाओ और मेरे वचन सुनकर कायरता छोड़ दो॥ ५॥

दो०—निसिचर निकर पतंग सम रघुपति बान कृसानु॥
जननी हृदयँ धीर धरु जरे निसाचर जानु॥ १५॥

राक्षसोंके समूह पतंगोंके समान और श्रीरघुनाथजीके बाण अग्निके समान हैं। हे माता! हृदयमें धैर्य धारण करो और राक्षसोंको जला ही समझो॥ १५॥

चौ०—जौं रघुबीर होति सुधि पाई। करते नहिं बिलंबु रघुराई॥
राम बान रबि उएँ जानकी। तम बरूथ कहँ जातुधान की॥ १॥

श्रीरामचन्द्रजीने यदि खबर पायी होती तो वे विलम्ब न करते। हे जानकीजी! रामबाणरूपी सूर्यके उदय होनेपर राक्षसोंकी सेनारूपी अन्धकार कहाँ रह सकता है?॥ १॥

अबहिं मातु मैं जाउँ लवाई। प्रभु आयसु नहिं राम दोहाई॥
कछुक दिवस जननी धरु धीरा। कपिन्ह सहित अइहहिं रघुबीरा॥ २॥

हे माता! मैं आपको अभी यहाँसे लिवा जाऊँ; पर श्रीरामचन्द्रजीकी शपथ है, मुझे प्रभु (उन) की आज्ञा नहीं है। [अतः] हे माता! कुछ दिन और धीरज धरो। श्रीरामचन्द्रजी वानरोंसहित यहाँ आवेंगे॥ २॥

निसिचर मारि तोहि लै जैहहि। तिहुँ पुर नारदादि जसु गैहहि॥
हैं सुत कपि सब तुम्हहि समाना। जातुधान अति भट बलवाना॥ ३॥

और राक्षसोंको मारकर आपको ले जायँगे। नारद आदि [ऋषि-मुनि] तीनों लोकोंमें उनका यश गावेंगे। [सीताजीने कहा—] हे पुत्र! सब वानर तुम्हारे ही समान (नन्हें-नन्हें-से) होंगे, राक्षस तो बड़े बलवान् योद्धा हैं॥ ३॥

मोरें हृदय परम संदेहा। सुनि कपि प्रगट कीन्हि निज देहा॥
कनक भूधराकार सरीरा। समर भयंकर अतिबल बीरा॥ ४॥

अतः मेरे हृदयमें बड़ा भारी संदेह होता है [कि तुम-जैसे बंदर राक्षसोंको कैसे जीतेंगे!] यह सुनकर हनुमान्‌जीने अपना शरीर प्रकट किया। सोनेके पर्वत (सुमेरु) के आकारका (अत्यन्त विशाल) शरीर था, जो युद्धमें शत्रुओंके हृदयमें भय उत्पन्न करनेवाला, अत्यन्त बलवान् और वीर था॥ ४॥

सीता मन भरोस तब भयऊ। पुनि लघु रूप पवनसुत लयऊ॥ ५॥

तब (उसे देखकर) सीताजीके मनमें विश्वास हुआ। हनुमान्‌जीने फिर छोटा रूप धारण कर लिया॥ ५॥

दो०—सुनु माता साखामृग नहिं बल बुद्धि बिसाल।
प्रभु प्रताप तें गरुड़हि खाइ परम लघु ब्याल॥ १६॥

हे माता! सुनो, वानरोंमें बहुत बल-बुद्धि नहीं होती। परंतु प्रभुके प्रतापसे बहुत छोटा सर्प भी गरुड़को खा सकता है (अत्यन्त निर्बल भी महान् बलवान्‌को मार सकता है)॥ १६॥

चौ०—मन संतोष सुनत कपि बानी। भगति प्रताप तेज बल सानी॥
आसिष दीन्हि राम प्रिय जाना। होहु तात बल सील निधाना॥ १॥

भक्ति, प्रताप, तेज और बलसे सनी हुई हनुमान्‌जीकी वाणी सुनकर सीताजीके मनमें संतोष हुआ। उन्होंने श्रीरामजीके प्रिय जानकर हनुमान्‌जीको आशीर्वाद दिया कि हे तात! तुम बल और शीलके निधान होओ॥ १॥

अजर अमर गुननिधि सुत होहू। करहुँ बहुत रघुनायक छोहू॥
करहुँ कृपा प्रभु अस सुनि काना। निर्भर प्रेम मगन हनुमाना॥ २॥

हे पुत्र ! तुम अजर (बुढ़ापेसे रहित), अमर और गुणोंके खजाने होओ। श्रीरघुनाथजी तुमपर बहुत कृपा करें। 'प्रभु कृपा करें' ऐसा कानोंसे सुनते ही हनुमान्‌जी पूर्ण प्रेममें मग्न हो गये॥ २॥

बार बार नाएसि पद सीसा। बोला बचन जोरि कर कीसा॥
अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता। आसिष तव अमोघ बिख्याता॥ ३॥

हनुमान्‌जीने बार-बार सीताजीके चरणोंमें सिर नवाया और फिर हाथ जोड़कर कहा—हे माता ! अब मैं कृतार्थ हो गया। आपका आशीर्वाद अमोघ (अचूक) है, यह बात प्रसिद्ध है॥ ३॥

सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा। लागि देखि सुंदर फल रूखा॥
सुनु सुत करहिं बिपिन रखवारी। परम सुभट रजनीचर भारी॥ ४॥

हे माता ! सुनो, सुन्दर फलवाले वृक्षोंको देखकर मुझे बड़ी ही भूख लग आयी है। [सीताजीने कहा—] हे बेटा ! सुनो, बड़े भारी योद्धा राक्षस इस वनकी रखवाली करते हैं॥ ४॥

तिन्ह कर भय माता मोहि नाहीं। जौं तुम्ह सुख मानहु मन माहीं॥ ५॥

[हनुमान्‌जीने कहा—] हे माता ! यदि आप मनमें सुख मानें (प्रसन्न होकर आज्ञा दें) तो मुझे उनका भय तो बिल्कुल नहीं है॥ ५॥

दो०—देखि बुद्धि बल निपुन कपि कहेउ जानकीं जाहु।
रघुपति चरन हृदयँ धरि तात मधुर फल खाहु॥ १७॥

हनुमान्‌जीको बुद्धि और बलमें निपुण देखकर जानकीजीने कहा—जाओ। हे तात ! श्रीरघुनाथजीके चरणोंको हृदयमें धारण करके मीठे फल खाओ॥ १७॥

चौ०—चलेउ नाइ सिरु पैठेउ बागा। फल खाएसि तरु तोरैं लागा॥
रहे तहाँ बहु भट रखवारे। कछु मारेसि कछु जाइ पुकारे॥ १॥

वे सीताजीको सिर नवाकर चले और बागमें घुस गये। फल खाये और वृक्षोंको तोड़ने लगे। वहाँ बहुत-से योद्धा रखवाले थे। उनमेंसे कुछको मार डाला और कुछने जाकर रावणसे पुकार की— ॥ १॥

नाथ एक आवा कपि भारी। तेहिं असोक बाटिका उजारी॥
खाएसि फल अरु बिटप उपारे। रच्छक मर्दि मर्दि महि डारे॥ २॥

[और कहा—] हे नाथ ! एक बड़ा भारी बंदर आया है। उसने अशोकवाटिका उजाड़ डाली। फल खाये, वृक्षोंको उखाड़ डाला और रखवालोंको मसल-मसलकर जमीनपर डाल दिया॥ २॥

सुनि रावन पठए भट नाना। तिन्हहि देखि गर्जेउ हनुमाना॥
सब रजनीचर कपि संघारे। गए पुकारत कछु अधमारे॥ ३॥

यह सुनकर रावणने बहुत-से योद्धा भेजे। उन्हें देखकर हनुमान्‌जीने गर्जना की। हनुमान्‌जीने सब राक्षसोंको मार डाला, कुछ जो अधमरे थे, चिल्लाते हुए गये॥ ३॥

पुनि पठयउ तेहिं अच्छकुमारा। चला संग लै सुभट अपारा॥
आवत देखि बिटप गहि तर्जा। ताहि निपाति महाधुनि गर्जा॥ ४॥

फिर रावणने अक्षयकुमारको भेजा। वह असंख्य श्रेष्ठ योद्धाओंको साथ लेकर चला। उसे आते देखकर हनुमान्‌जीने एक वृक्ष [हाथमें] लेकर ललकारा और उसे मारकर महाध्वनि (बड़े जोर) से गर्जना की॥ ४॥

दो०—कछु मारेसि कछु मर्देसि कछु मिलएसि धरि धूरि।
कछु पुनि जाइ पुकारे प्रभु मर्कट बल भूरि॥ १८॥

उन्होंने सेनामेंसे कुछको मार डाला और कुछको मसल डाला और कुछको पकड़-पकड़कर धूलमें मिला दिया। कुछने फिर जाकर पुकार की कि हे प्रभु! बंदर बहुत ही बलवान् है॥ १८॥

चौ०—सुनि सुत बध लंकेस रिसाना। पठएसि मेघनाद बलवाना।
मारसि जनि सुत बाँधेसु ताही। देखिअ कपिहि कहाँ कर आही॥ १॥

पुत्रका वध सुनकर रावण क्रोधित हो उठा और उसने [अपने जेठे पुत्र] बलवान् मेघनादको भेजा। [उससे कहा कि—] हे पुत्र! मारना नहीं; उसे बाँध लाना। उस बंदरको देखा जाय कि कहाँका है॥ १॥

चला इंद्रजित अतुलित जोधा। बंधु निधन सुनि उपजा क्रोधा॥
कपि देखा दारुन भट आवा। कटकटाइ गर्जा अरु धावा॥ २॥

इन्द्रको जीतनेवाला अतुलनीय योद्धा मेघनाद चला। भाईका मारा जाना सुन उसे क्रोध हो आया। हनुमान्‌जीने देखा कि अबकी भयानक योद्धा आया है। तब वे कटकटाकर गर्जे और दौड़े॥ २॥

अति बिसाल तरु एक उपारा। बिरथ कीन्ह लंकेस कुमारा॥
रहे महाभट ताके संगा। गहि गहि कपि मर्दइ निज अंगा॥ ३॥

उन्होंने एक बहुत बड़ा वृक्ष उखाड़ लिया और [उसके प्रहारसे] लंकेश्वर रावणके पुत्र मेघनादको बिना रथका कर दिया (रथको तोड़कर उसे नीचे पटक दिया)। उसके साथ जो बड़े-बड़े योद्धा थे, उनको पकड़-पकड़कर हनुमान्‌जी अपने शरीरसे मसलने लगे॥ ३॥

तिन्हहि निपाति ताहि सन बाजा। भिरे जुगल मानहुँ गजराजा॥
मुठिका मारि चढ़ा तरु जाई। ताहि एक छन मुरुछा आई॥ ४॥

उन सबको मारकर फिर मेघनादसे लड़ने लगे। [लड़ते हुए वे ऐसे मालूम होते थे] मानो दो गजराज (श्रेष्ठ हाथी) भिड़ गये हों। हनुमान्‌जी उसे एक घूँसा मारकर वृक्षपर जा चढ़े। उसको क्षणभरके लिये मूर्च्छा आ गयी॥ ४॥

उठि बहोरि कीन्हिसि बहु माया। जीति न जाइ प्रभंजन जाया॥ ५॥

फिर उठकर उसने बहुत माया रची; परंतु पवनके पुत्र उससे जीते नहीं जाते॥ ५॥

दो०—ब्रह्म अस्त्र तेहि साँधा कपि मन कीन्ह बिचार।
जौं न ब्रह्मसर मानउँ महिमा मिटइ अपार॥ १९॥

अन्तमें उसने ब्रह्मास्त्रका संधान (प्रयोग) किया, तब हनुमान्‌जीने मनमें विचार किया कि यदि ब्रह्मास्त्रको नहीं मानता हूँ तो उसकी अपार महिमा मिट जायगी॥ १९॥

चौ०—ब्रह्मबान कपि कहुँ तेहिं मारा। परतिहुँ बार कटकु संघारा॥
तेहि देखा कपि मुरुछित भयऊ। नागपास बाँधेसि लै गयऊ॥ १॥

उसने हनुमान्‌जीको ब्रह्मबाण मारा, [जिसके लगते ही वे वृक्षसे नीचे गिर पड़े] परंतु गिरते समय भी उन्होंने बहुत-सी सेना मार डाली। जब उसने देखा कि हनुमान्‌जी मूर्छित हो गये हैं, तब वह उनको नागपाशसे बाँधकर ले गया॥ १॥

जासु नाम जपि सुनहु भवानी। भव बंधन काटहिं नर ग्यानी॥
तासु दूत कि बंध तरु आवा। प्रभु कारज लगि कपिहिं बँधावा॥ २॥

[शिवजी कहते हैं—] हे भवानी ! सुनो, जिनका नाम जपकर ज्ञानी (विवेकी) मनुष्य संसार (जन्म-मरण) के बन्धनको काट डालते हैं, उनका दूत कहीं बन्धनमें आ सकता है ? किन्तु प्रभुके कार्यके लिये हनुमान्‌जीने स्वयं अपनेको बँधा लिया॥ २॥

कपि बंधन सुनि निसिचर धाए। कौतुक लागि सभाँ सब आए॥
दसमुख सभा दीखि कपि जाई। कहि न जाइ कछु अति प्रभुताई॥ ३॥

बंदरका बाँधा जाना सुनकर राक्षस दौड़े और कौतुकके लिये (तमाशा देखनेके लिये) सब सभामें आये। हनुमान्‌जीने जाकर रावणकी सभा देखी। उसकी अत्यन्त प्रभुता (ऐश्वर्य) कुछ कही नहीं जाती॥ ३॥

कर जोरें सुर दिसिप बिनीता। भृकुटि बिलोकत सकल सभीता॥
देखि प्रताप न कपि मन संका। जिमि अहिगन महुँ गरुड़ असंका॥ ४॥

देवता और दिक्पाल हाथ जोड़े बड़ी नम्रताके साथ भयभीत हुए सब रावणकी भौं ताक रहे हैं। (उसका रुख देख रहे हैं।) उसका ऐसा प्रताप देखकर भी हनुमान्‌जीके मनमें जरा भी डर नहीं हुआ। वे ऐसे निःशङ्क खड़े रहे, जैसे सर्पोंके समूहमें गरुड़ निःशङ्क (निर्भय) रहते हैं॥ ४॥

दो०—कपिहि बिलोकि दसानन बिहसा कहि दुर्बाद।
सुत बध सुरति कीन्हि पुनि उपजा हृदयँ बिषाद॥ २०॥

हनुमान्‌जीको देखकर रावण दुर्वचन कहता हुआ खूब हँसा। फिर पुत्र-वधका स्मरण किया तो उसके हृदयमें विषाद उत्पन्न हो गया॥ २०॥

चौ०—कह लंकेस कवन तैं कीसा। केहि कें बल घालेहि बन खीसा॥
की धौं श्रवन सुनेहि नहिं मोही। देखउँ अति असंक सठ तोही॥ १॥

लङ्कापति रावणने कहा—रे वानर ! तू कौन है ? किसके बलपर तूने वनको उजाड़कर नष्ट कर डाला ? क्या तूने कभी मुझे (मेरा नाम और यश) कानोंसे नहीं सुना ? रे शठ ! मैं तुझे अत्यन्त निःशङ्क देख रहा हूँ॥ १॥

मारे निसिचर केहिं अपराधा। कहु सठ तोहि न प्रान कइ बाधा॥
सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया। पाइ जासु बल बिरचति माया॥ २॥

तूने किस अपराधसे राक्षसोंको मारा ? रे मूर्ख ! बता, क्या तुझे प्राण जानेका भय नहीं है ? [हनुमान्‌जीने कहा—] हे रावण ! सुन; जिनका बल पाकर माया सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंके समूहोंकी रचना करती है;॥ २॥

जाकें बल बिरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा॥
जा बल सीस धरत सहसानन। अंडकोस समेत गिरि कानन॥ ३॥

जिनके बलसे हे दशशीश ! ब्रह्मा, विष्णु, महेश (क्रमशः) सृष्टिका सृजन, पालन और संहार करते हैं; जिनके बलसे सहस्रमुख (फणों) वाले शेषजी पर्वत और वनसहित समस्त ब्रह्माण्डको सिरपर धारण करते हैं;॥ ३॥

धरइ जो बिबिध देह सुरत्राता। तुम्ह से सठन्ह सिखावनु दाता॥
हर कोदंड कठिन जेहिं भंजा। तेहि समेत नृप दल मद गंजा॥ ४॥

जो देवताओंकी रक्षाके लिये नाना प्रकारकी देह धारण करते हैं और जो तुम्हारे-जैसे मूर्खोंको शिक्षा देनेवाले हैं; जिन्होंने शिवजीके कठोर धनुषको तोड़ डाला और उसीके साथ राजाओंके समूहका गर्व चूर्ण कर दिया॥ ४॥

खर दूषन त्रिसिरा अरु बाली। बधे सकल अतुलित बलसाली॥ ५॥

जिन्होंने खर, दूषण, त्रिशिरा और बालिको मार डाला, जो सब-के-सब अतुलनीय बलवान् थे; ॥ ५॥

दो०—जाके बल लवलेस तें जितेहु चराचर झारि।
तासु दूत मैं जा करि हरि आनेहु प्रिय नारि॥ २१॥

जिनके लेशमात्र बलसे तुमने समस्त चराचर जगत्‌को जीत लिया और जिनकी प्रिय पत्नीको तुम [चोरीसे] हर लाये हो, मैं उन्हींका दूत हूँ॥ २१॥

चौ०—जानउँ मैं तुम्हारि प्रभुताई। सहसबाहु सन परी लराई॥
समर बालि सन करि जसु पावा। सुनि कपि बचन बिहसि बिहरावा॥ १॥

मैं तुम्हारी प्रभुताको खूब जानता हूँ, सहस्रबाहुसे तुम्हारी लड़ाई हुई थी और बालिसे युद्ध करके तुमने यश प्राप्त किया था। हनुमान्‌जीके [मार्मिक] वचन सुनकर रावणने हँसकर बात टाल दी॥ १॥

खायउँ फल प्रभु लागी भूँखा। कपि सुभाव तें तोरेउँ रूखा॥
सब कें देह परम प्रिय स्वामी। मारहिं मोहि कुमारग गामी॥ २॥

हे [राक्षसोंके] स्वामी! मुझे भूख लगी थी, (इसलिये) मैंने फल खाये और वानर-स्वभावके कारण वृक्ष तोड़े। हे (निशाचरोंके) मालिक! देह सबको परम प्रिय है। कुमार्गपर चलनेवाले (दुष्ट) राक्षस जब मुझे मारने लगे॥ २॥

जिन्ह मोहि मारा ते मैं मारे। तेहि पर बाँधेउँ तनयँ तुम्हारे॥
मोहि न कछु बाँधे कइ लाजा। कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा॥ ३॥

तब जिन्होंने मुझे मारा, उनको मैंने भी मारा। उसपर तुम्हारे पुत्रने मुझको बाँध लिया। [किन्तु] मुझे अपने बाँधे जानेकी कुछ भी लज्जा नहीं है। मैं तो अपने प्रभुका कार्य किया चाहता हूँ॥ ३॥

बिनती करउँ जोरि कर रावन। सुनहु मान तजि मोर सिखावन॥
देखहु तुम्ह निज कुलहि बिचारी। भ्रम तजि भजहु भगत भय हारी॥ ४॥

हे रावण! मैं हाथ जोड़कर तुमसे विनती करता हूँ, तुम अभिमान छोड़कर मेरी सीख सुनो। तुम अपने पवित्र कुलका विचार करके देखो और भ्रमको छोड़कर भक्तभयहारी भगवान्‌को भजो॥ ४॥

जाकें डर अति काल डेराई। जो सुर असुर चराचर खाई॥
तासों बयरु कबहुँ नहिं कीजै। मोरे कहें जानकी दीजै॥ ५॥

जो देवता, राक्षस और समस्त चराचरको खा जाता है, वह काल भी जिनके डरसे अत्यन्त डरता है, उनसे कदापि वैर न करो और मेरे कहनेसे जानकीजीको दे दो॥ ५॥

दो०—प्रनतपाल रघुनायक करुना सिंधु खरारि।
गएँ सरन प्रभु राखिहैं तव अपराध बिसारि॥ २२॥

खरके शत्रु श्रीरघुनाथजी शरणागतोंके रक्षक और दयाके समुद्र हैं। शरण जानेपर प्रभु तुम्हारा अपराध भुलाकर तुम्हें अपनी शरणमें रख लेंगे॥ २२॥

चौ०—राम चरन पंकज उर धरहू। लंका अचल राजु तुम्ह करहू॥
रिषि पुलस्ति जसु बिमल मयंका। तेहि ससि महुँ जनि होहु कलंका॥ १॥

तुम श्रीरामजीके चरणकमलोंको हृदयमें धारण करो और लङ्काका अचल राज्य करो। ऋषि पुलस्त्यजीका यश निर्मल चन्द्रमाके समान है। उस चन्द्रमामें तुम कलंक न बनो॥ १॥

राम नाम बिनु गिरा न सोहा। देखु बिचारि त्यागि मद मोहा॥
बसन हीन नहिं सोह सुरारी। सब भूषन भूषित बर नारी॥ २॥

रामनामके बिना वाणी शोभा नहीं पाती, मद-मोहको छोड़, विचारकर देखो। हे देवताओंके शत्रु! सब गहनोंसे सजी हुई सुन्दरी स्त्री भी कपड़ोंके बिना (नंगी) शोभा नहीं पाती॥ २॥

राम बिमुख संपति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिनु पाई॥
सजल मूल जिन्ह सरितन्ह नाहीं। बरषि गएँ पुनि तबहिं सुखाहीं॥ ३॥

रामविमुख पुरुषकी सम्पत्ति और प्रभुता रही हुई भी चली जाती है और उसका पाना न पानेके समान है। जिन नदियोंके मूलमें कोई जलस्रोत नहीं है (अर्थात् जिन्हें केवल बरसातका ही आसरा है) वे वर्षा बीत जानेपर फिर तुरंत ही सूख जाती हैं॥ ३॥

सुनु दसकंठ कहउँ पन रोपी। बिमुख राम त्राता नहिं कोपी॥
संकर सहस बिष्नु अज तोही। सकहिं न राखि राम कर द्रोही॥ ४॥

हे रावण! सुनो, मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि रामविमुखकी रक्षा करनेवाला कोई भी नहीं है। हजारों शंकर, विष्णु और ब्रह्मा भी श्रीरामजीके साथ द्रोह करनेवाले तुमको नहीं बचा सकते॥ ४॥

दो०—मोहमूल बहु सूल प्रद त्यागहु तम अभिमान।
भजहु राम रघुनायक कृपा सिंधु भगवान॥ २३॥

मोह ही जिसका मूल है ऐसे (अज्ञानजनित), बहुत पीड़ा देनेवाले, तमरूप अभिमानका त्याग कर दो और रघुकुलके स्वामी, कृपाके समुद्र भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका भजन करो॥ २३॥

चौ०—जदपि कही कपि अति हित बानी। भगति बिबेक बिरति नय सानी॥
बोला बिहसि महा अभिमानी। मिला हमहि कपि गुर बड़ ग्यानी॥ १॥

यद्यपि हनुमान्‌जीने भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और नीतिसे सनी हुई बहुत ही हितकी वाणी कही, तो भी वह महान् अभिमानी रावण बहुत हँसकर (व्यंगसे) बोला कि हमें यह बंदर बड़ा ज्ञानी गुरु मिला!॥ १॥

मृत्यु निकट आई खल तोही। लागेसि अधम सिखावन मोही॥
उलटा होइहि कह हनुमाना। मतिभ्रम तोर प्रगट मैं जाना॥ २॥

रे दुष्ट! तेरी मृत्यु निकट आ गयी है। अधम! मुझे शिक्षा देने चला है। हनुमान्‌जीने कहा—इससे उलटा ही होगा (अर्थात् मृत्यु तेरी निकट आयी है, मेरी नहीं)। यह तेरा मतिभ्रम (बुद्धिका फेर) है, मैंने प्रत्यक्ष जान लिया है॥ २॥

सुनि कपि बचन बहुत खिसिआना। बेगि न हरहु मूढ़ कर प्राना॥
सुनत निसाचर मारन धाए। सचिवन्ह सहित बिभीषनु आए॥ ३॥

हनुमान्‌जीके वचन सुनकर वह बहुत ही कुपित हो गया [और बोला—] अरे ! इस मूर्खका प्राण शीघ्र ही क्यों नहीं हर लेते ? सुनते ही राक्षस उन्हें मारने दौड़े। उसी समय मन्त्रियोंके साथ विभीषणजी वहाँ आ पहुँचे ॥ ३ ॥

नाइ सीस करि बिनय बहूता। नीति बिरोध न मारिअ दूता ॥
आन दंड कछु करिअ गोसाँई। सबहीं कहा मंत्र भल भाई ॥ ४ ॥

उन्होंने सिर नवाकर और बहुत विनय करके रावणसे कहा कि दूतको मारना नहीं चाहिये, यह नीतिके विरुद्ध है। हे गोसाईं ! कोई दूसरा दण्ड दिया जाय। सबने कहा—भाई ! यह सलाह उत्तम है ॥ ४ ॥

सुनत बिहसि बोला दसकंधर। अंग भंग करि पठइअ बंदर ॥ ५ ॥

यह सुनते ही रावण हँसकर बोला—अच्छा तो, बंदरको अंग-भंग करके भेज (लौटा) दिया जाय ॥ ५ ॥

दो०—कपि कें ममता पूँछ पर सबहि कहउँ समुझाइ।
तेल बोरि पट बाँधि पुनि पावक देहु लगाइ ॥ २४ ॥

मैं सबको समझाकर कहता हूँ कि बंदरकी ममता पूँछपर होती है। अतः तेलमें कपड़ा डुबोकर उसे इसकी पूँछमें बाँधकर फिर आग लगा दो ॥ २४ ॥

चौ०—पूँछहीन बानर तहँ जाइहि। तब सठ निज नाथहि लइ आइहि ॥
जिन्ह कै कीन्हिसि बहुत बड़ाई। देखउँ मैं तिन्ह कै प्रभुताई ॥ १ ॥

जब बिना पूँछका यह बंदर वहाँ (अपने स्वामीके पास) जायगा, तब यह मूर्ख अपने मालिकको साथ ले आयेगा। जिनकी इसने बहुत बड़ाई की है, मैं जरा उनकी प्रभुता (सामर्थ्य) तो देखूँ ! ॥ १ ॥

बचन सुनत कपि मन मुसुकाना। भइ सहाय सारद मैं जाना ॥
जातुधान सुनि रावन बचना। लागे रचैं मूढ़ सोइ रचना ॥ २ ॥

यह वचन सुनते ही हनुमान्‌जी मनमें मुसकराये [और मन-ही-मन बोले कि] मैं जान गया, सरस्वतीजी [इसे ऐसी बुद्धि देनेमें] सहायक हुई हैं। रावणके वचन सुनकर मूर्ख राक्षस वही (पूँछमें आग लगानेकी) तैयारी करने लगे ॥ २ ॥

रहा न नगर बसन घृत तेला। बाढ़ी पूँछ कीन्ह कपि खेला ॥
कौतुक कहँ आए पुरबासी। मारहिं चरन करहिं बहु हाँसी ॥ ३ ॥

[पूँछके लपेटनेमें इतना कपड़ा और घी-तेल लगा कि] नगरमें कपड़ा, घी और तेल नहीं रह गया। हनुमान्‌जीने ऐसा खेल किया कि पूँछ बढ़ गयी (लम्बी हो गयी)। नगरवासी लोग तमाशा देखने आये। वे हनुमान्‌जीको पैरसे ठोकर मारते हैं और उनकी बहुत हँसी करते हैं ॥ ३ ॥

बाजहिं ढोल देहिं सब तारी। नगर फेरि पुनि पूँछ प्रजारी ॥
पावक जरत देखि हनुमंता। भयउ परम लघुरूप तुरंता ॥ ४ ॥

ढोल बजते हैं, सब लोग तालियाँ पीटते हैं। हनुमान्‌जीको नगरमें फिराकर, फिर पूँछमें आग लगा दी। अग्निको जलते हुए देखकर हनुमान्‌जी तुरंत ही बहुत छोटे रूपमें हो गये ॥ ४ ॥

निबुकि चढ़ेउ कपि कनक अटारीं। भईं सभीत निसाचर नारीं ॥ ५ ॥

बन्धनसे निकलकर वे सोनेकी अटारियोंपर जा चढ़े। उनको देखकर राक्षसोंकी स्त्रियाँ भयभीत

हो गयीं ॥ ५ ॥

दो०—हरि प्रेरित तेहि अवसर चले मरुत उनचास।
अट्टहास करि गर्जा कपि बढ़ि लाग अकास ॥ २५ ॥

उस समय भगवान्‌की प्रेरणासे उनचासों पवन चलने लगे। हनुमान्‌जी अट्टहास करके गर्जे और बढ़कर आकाशसे जा लगे ॥ २५ ॥

चौ०—देह बिसाल परम हरुआई। मंदिर तें मंदिर चढ़ धाई ॥
जरइ नगर भा लोग बिहाला। झपट लपट बहु कोटि कराला ॥ १ ॥

देह बड़ी विशाल, परंतु बहुत ही हल्की (फुर्तीली) है। वे दौड़कर एक महलसे दूसरे महलपर चढ़ जाते हैं। नगर जल रहा है, लोग बेहाल हो गये हैं। आगकी करोड़ों भयङ्कर लपटें झपट रही हैं ॥ १ ॥

तात मातु हा सुनिअ पुकारा। एहिं अवसर को हमहि उबारा ॥
हम जो कहा यह कपि नहिं होई। बानर रूप धरें सुर कोई ॥ २ ॥

हाय बप्पा ! हाय मैया ! इस अवसरपर हमें कौन बचावेगा ? [चारों ओर] यही पुकार सुनायी पड़ रही है। हमने तो पहले ही कहा था कि यह वानर नहीं है, वानरका रूप धरे कोई देवता है ! ॥ २ ॥

साधु अवग्या कर फलु ऐसा। जरइ नगर अनाथ कर जैसा ॥
जारा नगरु निमिष एक माहीं। एक बिभीषन कर गृह नाहीं ॥ ३ ॥

साधुके अपमानका यह फल है कि नगर अनाथके नगरकी तरह जल रहा है। हनुमान्‌जीने एक ही क्षणमें सारा नगर जला डाला। एक विभीषणका घर नहीं जलाया ॥ ३ ॥

ता कर दूत अनल जेहिं सिरिजा। जरा न सो तेहि कारन गिरिजा ॥
उलटि पलटि लंका सब जारी। कूदि परा पुनि सिंधु मझारी ॥ ४ ॥

[शिवजी कहते हैं—] हे पार्वती ! जिन्होंने अग्निको बनाया, हनुमान्‌जी उन्हींके दूत हैं। इसी कारण वे अग्निसे नहीं जले। हनुमान्‌जीने उलट-पलटकर (एक ओरसे दूसरी ओरतक) सारी लंका जला दी। फिर वे समुद्रमें कूद पड़े ॥ ४ ॥

दो०—पूँछ बुझाइ खोइ श्रम धरि लघु रूप बहोरि।
जनकसुता कें आगें ठाढ़ भयउ कर जोरि ॥ २६ ॥

पूँछ बुझाकर, थकावट दूर करके और फिर छोटा-सा रूप धारण कर हनुमान्‌जी श्रीजानकीजीके सामने हाथ जोड़कर जा खड़े हुए ॥ २६ ॥

चौ०—मातु मोहि दीजे कछु चीन्हा। जैसें रघुनायक मोहि दीन्हा ॥
चूड़ामनि उतारि तब दयऊ। हरष समेत पवनसुत लयऊ ॥ १ ॥

[हनुमान्‌जीने कहा—] हे माता ! मुझे कोई चिह्न (पहचान) दीजिये, जैसे श्रीरघुनाथजीने मुझे दिया था। तब सीताजीने चूड़ामणि उतारकर दी। हनुमान्‌जीने उसको हर्षपूर्वक ले लिया ॥ १ ॥

कहेहु तात अस मोर प्रनामा। सब प्रकार प्रभु पूरनकामा ॥
दीन दयाल बिरिदु संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी ॥ २ ॥

[जानकीजीने कहा—] हे तात ! मेरा प्रणाम निवेदन करना और इस प्रकार कहना—हे प्रभु !

यद्यपि आप सब प्रकारसे पूर्णकाम हैं (आपको किसी प्रकारकी कामना नहीं है), तथापि दीनों (दुखियों) पर दया करना आपका विरद है [और मैं दीन हूँ] अतः उस विरदको याद करके, हे नाथ ! मेरे भारी संकटको दूर कीजिये ॥ २ ॥

तात सक्रसुत कथा सुनाएहु। बान प्रताप प्रभुहि समुझाएहु ॥
मास दिवस महुँ नाथु न आवा। तौ पुनि मोहि जिअत नहिं पावा ॥ ३ ॥

हे तात ! इन्द्रपुत्र जयन्तकी कथा (घटना) सुनाना और प्रभुको उनके बाणका प्रताप समझाना (स्मरण कराना) । यदि महीनेभरमें नाथ न आये तो फिर मुझे जीती न पायेंगे ॥ ३ ॥

कहु कपि केहि बिधि राखौं प्राना। तुम्हहू तात कहत अब जाना ॥
तोहि देखि सीतलि भइ छाती। पुनि मो कहुँ सोइ दिनु सो राती ॥ ४ ॥

हे हनुमान् ! कहो, मैं किस प्रकार प्राण रक्खूँ ! हे तात ! तुम भी अब जानेको कह रहे हो। तुमको देखकर छाती ठंडी हुई थी। फिर मुझे वही दिन और वही रात ! ॥ ४ ॥

दो०—जनकसुतहि समुझाइ करि बहु बिधि धीरजु दीन्ह।
चरन कमल सिरु नाइ कपि गवनु राम पहिं कीन्ह ॥ २७ ॥

हनुमान्‌जीने जानकीजीको समझाकर बहुत प्रकारसे धीरज दिया और उनके चरणकमलोंमें सिर नवाकर श्रीरामजीके पास गमन किया ॥ २७ ॥

चौ०—चलत महाधुनि गर्जेसि भारी। गर्भ स्रवहिं सुनि निसिचर नारी ॥
नाघि सिंधु एहि पारहि आवा। सबद किलिकिला कपिन्ह सुनावा ॥ १ ॥

चलते समय उन्होंने महाध्वनिसे भारी गर्जन किया, जिसे सुनकर राक्षसोंकी स्त्रियोंके गर्भ गिरने लगे। समुद्र लाँघकर वे इस पार आये और उन्होंने वानरोंको किलकिला शब्द (हर्षध्वनि) सुनाया ॥ १ ॥

हरषे सब बिलोकि हनुमाना। नूतन जन्म कपिन्ह तब जाना ॥
मुख प्रसन्न तन तेज बिराजा। कीन्हेसि रामचंद्र कर काजा ॥ २ ॥

हनुमान्‌जीको देखकर सब हर्षित हो गये और तब वानरोंने अपना नया जन्म समझा। हनुमान्‌जीका मुख प्रसन्न है और शरीरमें तेज विराजमान है, [जिससे उन्होंने समझ लिया कि] ये श्रीरामचन्द्रजीका कार्य कर आये हैं ॥ २ ॥

मिले सकल अति भए सुखारी। तलफत मीन पाव जिमि बारी ॥
चले हरषि रघुनायक पासा। पूँछत कहत नवल इतिहासा ॥ ३ ॥

सब हनुमान्‌जीसे मिले और बहुत ही सुखी हुए, जैसे तड़पती हुई मछलीको जल मिल गया हो। सब हर्षित होकर नये-नये इतिहास (वृत्तान्त) पूछते-कहते हुए श्रीरघुनाथजीके पास चले ॥ ३ ॥

तब मधुबन भीतर सब आए। अंगद संमत मधु फल खाए ॥
रखवारे जब बरजन लागे। मुष्टि प्रहार हनत सब भागे ॥ ४ ॥

तब सब लोग मधुवनके भीतर आये और अंगदकी सम्मतिसे सबने मधुर फल [या मधु और फल] खाये। जब रखवाले बरजने लगे, तब घूँसोंकी मार मारते ही सब रखवाले भाग छूटे ॥ ४ ॥

दो०—जाइ पुकारे ते सब बन उजार जुबराज।
सुनि सुग्रीव हरष कपि करि आए प्रभु काज ॥ २८ ॥

उन सबने जाकर पुकारा कि युवराज अंगद वन उजाड़ रहे हैं। यह सुनकर सुग्रीव हर्षित हुए कि वानर प्रभुका कार्य कर आये हैं॥ २८॥

चौ०—जौं न होति सीता सुधि पाई। मधुबन के फल सकहिं कि खाई॥
एहि बिधि मन बिचार कर राजा। आइ गए कपि सहित समाजा॥ १॥

यदि सीताजीकी खबर न पायी होती तो क्या वे मधुवनके फल खा सकते थे? इस प्रकार राजा सुग्रीव मनमें विचार कर ही रहे थे कि समाज-सहित वानर आ गये॥ १॥

आइ सबन्हि नावा पद सीसा। मिलेउ सबन्हि अति प्रेम कपीसा॥
पूँछी कुसल कुसल पद देखी। राम कृपाँ भा काजु बिसेषी॥ २॥

सबने आकर सुग्रीवके चरणोंमें सिर नवाया। कपिराज सुग्रीव सभीसे बड़े प्रेमके साथ मिले। उन्होंने कुशल पूछी, [तब वानरोंने उत्तर दिया—] आपके चरणोंके दर्शनसे सब कुशल है। श्रीरामजीकी कृपासे विशेष कार्य हुआ (कार्यमें विशेष सफलता हुई है)॥ २॥

नाथ काजु कीन्हेउ हनुमाना। राखे सकल कपिन्ह के प्राना॥
सुनि सुग्रीव बहुरि तेहि मिलेऊ। कपिन्ह सहित रघुपति पहिं चलेऊ॥ ३॥

हे नाथ! हनुमान्‌ने ही सब कार्य किया और सब वानरोंके प्राण बचा लिये। यह सुनकर सुग्रीवजी हनुमान्‌जीसे फिर मिले और सब वानरोंसमेत श्रीरघुनाथजीके पास चले॥ ३॥

राम कपिन्ह जब आवत देखा। किएँ काजु मन हरष बिसेषा॥
फटिक सिला बैठे द्वौ भाई। परे सकल कपि चरनन्हि जाई॥ ४॥

श्रीरामजीने जब वानरोंको कार्य किये हुए आते देखा तब उनके मनमें विशेष हर्ष हुआ। दोनों भाई स्फटिक शिलापर बैठे थे। सब वानर जाकर उनके चरणोंपर गिर पड़े॥ ४॥

दो०—प्रीति सहित सब भेंटे रघुपति करुना पुंज।
पूँछी कुसल नाथ अब कुसल देखि पद कंज॥ २९॥

दयाकी राशि श्रीरघुनाथजी सबसे प्रेमसहित गले लगकर मिले और कुशल पूछी। [वानरोंने कहा—] हे नाथ! आपके चरणकमलोंके दर्शन पानेसे अब कुशल है॥ २९॥

चौ०—जामवंत कह सुनु रघुराया। जा पर नाथ करहु तुम्ह दाया॥
ताहि सदा सुभ कुसल निरंतर। सुर नर मुनि प्रसन्न ता ऊपर॥ १॥

जाम्बवान्‌ने कहा—हे रघुनाथजी! सुनिये। हे नाथ! जिसपर आप दया करते हैं, उसे सदा कल्याण और निरन्तर कुशल है। देवता, मनुष्य और मुनि सभी उसपर प्रसन्न रहते हैं॥ १॥

सोइ बिजई बिनई गुन सागर। तासु सुजसु त्रैलोक उजागर॥
प्रभु कीं कृपा भयउ सबु काजू। जन्म हमार सुफल भा आजू॥ २॥

वही विजयी है, वही विनयी है और वही गुणोंका समुद्र बन जाता है। उसीका सुन्दर यश तीनों लोकोंमें प्रकाशित होता है। प्रभुकी कृपासे सब कार्य हुआ। आज हमारा जन्म सफल हो गया॥ २॥

नाथ पवनसुत कीन्हि जो करनी। सहसहुँ मुख न जाइ सो बरनी॥
पवनतनय के चरित सुहाए। जामवंत रघुपतिहि सुनाए॥ ३॥

हे नाथ! पवनपुत्र हनुमान्‌ने जो करनी की, उसका हजार मुखोंसे भी वर्णन नहीं किया जा

सकता। तब जाम्बवान्‌ने हनुमान्‌जीके सुन्दर चरित्र (कार्य) श्रीरघुनाथजीको सुनाये॥ ३॥

सुनत कृपानिधि मन अति भाए। पुनि हनुमान हरषि हियँ लाए॥
कहहु तात केहि भाँति जानकी। रहति करति रच्छा स्वप्रान की॥ ४॥

[वे चरित्र] सुननेपर कृपानिधि श्रीरामचन्द्रजीके मनको बहुत ही अच्छे लगे। उन्होंने हर्षित होकर हनुमान्‌जीको फिर हृदयसे लगा लिया और कहा—हे तात! कहो, सीता किस प्रकार रहती और अपने प्राणोंकी रक्षा करती है?॥ ४॥

दो०—नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहिं बाट॥ ३०॥

[हनुमान्‌जीने कहा—] आपका नाम रात-दिन पहरा देनेवाला है, आपका ध्यान ही किवाड़ है। नेत्रोंको अपने चरणोंमें लगाये रहती हैं, यही ताला लगा है; फिर प्राण जायँ तो किस मार्गसे?॥ ३०॥

चौ०—चलत मोहि चूड़ामनि दीन्ही। रघुपति हृदयँ लाइ सोइ लीन्ही॥
नाथ जुगल लोचन भरि बारी। बचन कहे कछु जनककुमारी॥ १॥

चलते समय उन्होंने मुझे चूड़ामणि [उतारकर] दी। श्रीरघुनाथजीने उसे लेकर हृदयसे लगा लिया। [हनुमान्‌जीने फिर कहा—] हे नाथ! दोनों नेत्रोंमें जल भरकर जानकीजीने मुझसे कुछ वचन कहे—॥ १॥

अनुज समेत गहेहु प्रभु चरना। दीन बंधु प्रनतारति हरना॥
मन क्रम बचन चरन अनुरागी। केहिं अपराध नाथ हौं त्यागी॥ २॥

छोटे भाईसमेत प्रभुके चरण पकड़ना [और कहना कि] आप दीनबन्धु हैं, शरणागतके दुःखोंको हरनेवाले हैं और मैं मन, वचन और कर्मसे आपके चरणोंकी अनुरागिणी हूँ। फिर स्वामी (आप) ने मुझे किस अपराधसे त्याग दिया?॥ २॥

अवगुन एक मोर मैं माना। बिछुरत प्रान न कीन्ह पयाना॥
नाथ सो नयननि को अपराधा। निसरत प्रान करहिं हठि बाधा॥ ३॥

[हाँ] एक दोष मैं अपना [अवश्य] मानती हूँ कि आपका वियोग होते ही मेरे प्राण नहीं चले गये। किंतु हे नाथ! यह तो नेत्रोंका अपराध है जो प्राणोंके निकलनेमें हठपूर्वक बाधा देते हैं॥ ३॥

बिरह अगिनि तनु तूल समीरा। स्वास जरइ छन माहिं सरीरा॥
नयन स्रवहिं जलु निज हित लागी। जरैं न पाव देह बिरहागी॥ ४॥

विरह अग्नि है, शरीर रूई है और श्वास पवन है; इस प्रकार [अग्नि और पवनका संयोग होनेसे] यह शरीर क्षणमात्रमें जल सकता है। परंतु नेत्र अपने हितके लिये (प्रभुका स्वरूप देखकर सुखी होनेके लिये) जल (आँसू) बरसाते हैं, जिससे विरहकी आगसे भी देह जलने नहीं पाती॥ ४॥

सीता कै अति बिपति बिसाला। बिनहिं कहें भलि दीनदयाला॥ ५॥

सीताजीकी विपत्ति बहुत बड़ी है। हे दीनदयालु! वह बिना कही ही अच्छी है (कहनेसे आपको बड़ा क्लेश होगा)॥ ५॥

दो०—निमिष निमिष करुनानिधि जाहिं कलप सम बीति।
बेगि चलिअ प्रभु आनिअ भुज बल खल दल जीति॥ ३१॥

हे करुणानिधान! उनका एक-एक पल कल्पके समान बीतता है। अतः हे प्रभु! तुरंत चलिये

और अपनी भुजाओंके बलसे दुष्टोंके दलको जीतकर सीताजीको ले आइये ॥ ३१ ॥

चौ०—सुनि सीता दुख प्रभु सुख अयना। भरि आए जल राजिव नयना ॥
बचन कायँ मन मम गति जाही। सपनेहुँ बूझिअ बिपति कि ताही ॥ १ ॥

सीताजीका दुःख सुनकर सुखके धाम प्रभुके कमलनेत्रोंमें जल भर आया [और वे बोले—] मन, वचन और शरीरसे जिसे मेरी ही गति (मेरा ही आश्रय) है, उसे क्या स्वप्नमें भी विपत्ति हो सकती है ? ॥ १ ॥

कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई ॥
केतिक बात प्रभु जातुधान की। रिपुहि जीति आनिबी जानकी ॥ २ ॥

हनुमान्‌जीने कहा—हे प्रभु ! विपत्ति तो वही (तभी) है जब आपका भजन-स्मरण न हो। हे प्रभो ! राक्षसोंकी बात ही कितनी है ? आप शत्रुको जीतकर जानकीजीको ले आवेंगे ॥ २ ॥

सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी ॥
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा ॥ ३ ॥

[भगवान् कहने लगे—] हे हनुमान् ! सुन; तेरे समान मेरा उपकारी देवता, मनुष्य अथवा मुनि कोई भी शरीरधारी नहीं है। मैं तेरा प्रत्युपकार (बदलेमें उपकार) तो क्या करूँ, मेरा मन भी तेरे सामने नहीं हो सकता ॥ ३ ॥

सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचार मन माहीं ॥
पुनि पुनि कपिहि चितव सुरत्राता। लोचन नीर पुलक अति गाता ॥ ४ ॥

हे पुत्र ! सुन; मैंने मनमें [खूब] विचार करके देख लिया कि मैं तुझसे उऋण नहीं हो सकता। देवताओंके रक्षक प्रभु बार-बार हनुमान्‌जीको देख रहे हैं। नेत्रोंमें प्रेमाश्रुओंका जल भरा है और शरीर अत्यन्त पुलकित है ॥ ४ ॥

दो०—सुनि प्रभु बचन बिलोकि मुख गात हरषि हनुमंत।
चरन परेउ प्रेमाकुल त्राहि त्राहि भगवंत ॥ ३२ ॥

प्रभुके वचन सुनकर और उनके [प्रसन्न] मुख तथा [पुलकित] अङ्गोंको देखकर हनुमान्‌जी हर्षित हो गये और प्रेममें विकल होकर 'हे भगवन् ! मेरी रक्षा करो, रक्षा करो' कहते हुए श्रीरामजीके चरणोंमें गिर पड़े ॥ ३२ ॥

चौ०—बार बार प्रभु चहइ उठावा। प्रेम मगन तेहि उठब न भावा ॥
प्रभु कर पंकज कपि कें सीसा। सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा ॥ १ ॥

प्रभु उनको बार-बार उठाना चाहते हैं, परंतु प्रेममें डूबे हुए हनुमान्‌जीको चरणोंसे उठना सुहाता नहीं। प्रभुका कर-कमल हनुमान्‌जीके सिरपर है। उस स्थितिका स्मरण करके शिवजी प्रेममग्न हो गये ॥ १ ॥

सावधान मन करि पुनि संकर। लागे कहन कथा अति सुंदर ॥
कपि उठाइ प्रभु हृदयँ लगावा। कर गहि परम निकट बैठावा ॥ २ ॥

फिर मनको सावधान करके शंकरजी अत्यन्त सुन्दर कथा कहने लगे—हनुमान्‌जीको उठाकर प्रभुने हृदयसे लगाया और हाथ पकड़कर अत्यन्त निकट बैठा लिया ॥ २ ॥

कहु कपि रावन पालित लंका। केहि बिधि दहेउ दुर्ग अति बंका॥
प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना। बोला बचन बिगत अभिमाना॥ ३॥

हे हनुमान्! बताओ तो, रावणके द्वारा सुरक्षित लङ्का और उसके बड़े बाँके किलेको तुमने किस तरह जलाया? हनुमान्‌जीने प्रभुको प्रसन्न जाना और वे अभिमानरहित वचन बोले— ॥ ३॥

साखामृग कै बड़ि मनुसाई। साखा तें साखा पर जाई॥
नाघि सिंधु हाटकपुर जारा। निसिचर गन बधि बिपिन उजारा॥ ४॥

बंदरका बस, यही बड़ा पुरुषार्थ है कि वह एक डालसे दूसरी डालपर चला जाता है। मैंने जो समुद्र लाँघकर सोनेका नगर जलाया और राक्षसगणको मारकर अशोकवनको उजाड़ डाला, ॥ ४॥

सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछू मोरि प्रभुताई॥ ५॥

यह सब तो हे श्रीरघुनाथजी! आपहीका प्रताप है। हे नाथ! इसमें मेरी प्रभुता (बड़ाई) कुछ भी नहीं है॥ ५॥

दो०—ता कहुँ प्रभु कछु अगम नहिं जा पर तुम्ह अनुकूल।
तव प्रभावँ बड़वानलहि जारि सकइ खलु तूल॥ ३३॥

हे प्रभु! जिसपर आप प्रसन्न हों, उसके लिये कुछ भी कठिन नहीं है। आपके प्रभावसे रूई [जो स्वयं बहुत जल्दी जल जानेवाली वस्तु है] बड़वानलको निश्चय ही जला सकती है (अर्थात् असम्भव भी सम्भव हो सकता है)॥ ३३॥

चौ०—नाथ भगति अति सुखदायनी। देहु कृपा करि अनपायनी॥
सुनि प्रभु परम सरल कपि बानी। एवमस्तु तब कहेउ भवानी॥ १॥

हे नाथ! मुझे अत्यन्त सुख देनेवाली अपनी निश्चल भक्ति कृपा करके दीजिये। हनुमान्‌जीकी अत्यन्त सरल वाणी सुनकर, हे भवानी! तब प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने 'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) कहा॥ १॥

उमा राम सुभाउ जेहिं जाना। ताहि भजनु तजि भाव न आना॥
यह संबाद जासु उर आवा। रघुपति चरन भगति सोइ पावा॥ २॥

हे उमा! जिसने श्रीरामजीका स्वभाव जान लिया, उसे भजन छोड़कर दूसरी बात ही नहीं सुहाती। यह स्वामी-सेवकका संवाद जिसके हृदयमें आ गया, वही श्रीरघुनाथजीके चरणोंकी भक्ति पा गया॥ २॥

सुनि प्रभु बचन कहहिं कपि बृंदा। जय जय जय कृपाल सुखकंदा॥
तब रघुपति कपिपतिहि बोलावा। कहा चलैं कर करहु बनावा॥ ३॥

प्रभुके वचन सुनकर वानरगण कहने लगे—कृपालु आनन्दकन्द श्रीरामजीकी जय हो, जय हो, जय हो! तब श्रीरघुनाथजीने कपिराज सुग्रीवको बुलाया और कहा—चलनेकी तैयारी करो॥ ३॥

अब बिलंबु केहि कारन कीजे। तुरत कपिन्ह कहुँ आयसु दीजे॥
कौतुक देखि सुमन बहु बरषी। नभ तें भवन चले सुर हरषी॥ ४॥

अब विलम्ब किस कारण किया जाय? वानरोंको तुरंत आज्ञा दो। [भगवान्‌की] यह लीला (रावणवधकी तैयारी) देखकर, बहुत-से फूल बरसाकर और हर्षित होकर देवता आकाशसे अपने-अपने लोकको चले॥ ४॥

दो०—कपिपति बेगि बोलाए आए जूथप जूथ।
नाना बरन अतुल बल बानर भालु बरूथ॥ ३४॥

वानरराज सुग्रीवने शीघ्र ही वानरोंको बुलाया, सेनापतियोंके समूह आ गये। वानर-भालुओंके झुंड अनेक रंगोंके हैं और उनमें अतुलनीय बल है॥ ३४॥

चौ०—प्रभु पद पंकज नावहिं सीसा। गर्जहिं भालु महाबल कीसा॥
देखी राम सकल कपि सेना। चितइ कृपा करि राजिव नैना॥ १॥

वे प्रभुके चरणकमलोंमें सिर नवाते हैं। महान् बलवान् रीछ और वानर गरज रहे हैं। श्रीरामजीने वानरोंकी सारी सेना देखी। तब कमलनेत्रोंसे कृपापूर्वक उनकी ओर दृष्टि डाली॥ १॥

राम कृपा बल पाइ कपिंदा। भए पच्छजुत मनहुँ गिरिंदा॥
हरषि राम तब कीन्ह पयाना। सगुन भए सुंदर सुभ नाना॥ २॥

रामकृपाका बल पाकर श्रेष्ठ वानर मानो पंखवाले बड़े पर्वत हो गये। तब श्रीरामजीने हर्षित होकर प्रस्थान (कूच) किया। अनेक सुन्दर और शुभ शकुन हुए॥ २॥

जासु सकल मंगलमय कीती। तासु पयान सगुन यह नीती॥
प्रभु पयान जाना बैदेहीं। फरकि बाम अँग जनु कहि देहीं॥ ३॥

जिनकी कीर्ति सब मङ्गलोंसे पूर्ण है, उनके प्रस्थानके समय शकुन होना, यह नीति है (लीलाकी मर्यादा है)। प्रभुका प्रस्थान जानकीजीने भी जान लिया। उनके बायें अङ्ग फड़क-फड़ककर मानो कहे देते थे [कि श्रीरामजी आ रहे हैं]॥ ३॥

जोइ जोइ सगुन जानकिहि होई। असगुन भयउ रावनहि सोई॥
चला कटकु को बरनैं पारा। गर्जहिं बानर भालु अपारा॥ ४॥

जानकीजीको जो-जो शकुन होते थे, वही-वही रावणके लिये अपशकुन हुए। सेना चली, उसका वर्णन कौन कर सकता है? असंख्य वानर और भालू गर्जना कर रहे हैं॥ ४॥

नख आयुध गिरि पादपधारी। चले गगन महि इच्छाचारी॥
केहरिनाद भालु कपि करहीं। डगमगाहिं दिग्गज चिक्करहीं॥ ५॥

नख ही जिनके शस्त्र हैं, वे इच्छानुसार (सर्वत्र बेरोक-टोक) चलनेवाले रीछ-वानर पर्वतों और वृक्षोंको धारण किये कोई आकाशमार्गसे और कोई पृथ्वीपर चले जा रहे हैं। वे सिंहके समान गर्जना कर रहे हैं। [उनके चलने और गर्जनेसे] दिशाओंके हाथी विचलित होकर चिग्घाड़ रहे हैं॥ ५॥

छं०—चिक्करहिं दिग्गज डोल महि गिरि लोल सागर खरभरे।
मन हरष सभ गंधर्ब सुर मुनि नाग किंनर दुख टरे॥
कटकटहिं मर्कट बिकट भट बहु कोटि कोटिन्ह धावहीं।
जय राम प्रबल प्रताप कोसलनाथ गुन गन गावहीं॥ १॥

दिशाओंके हाथी चिग्घाड़ने लगे, पृथ्वी डोलने लगी, पर्वत चञ्चल हो गये (काँपने लगे) और समुद्र खलबला उठे। गन्धर्व, देवता, मुनि, नाग, किन्नर सब-के-सब मनमें हर्षित हुए कि [अब] हमारे दुःख टल गये। अनेकों करोड़ भयानक वानर योद्धा कटकटा रहे हैं और करोड़ों ही दौड़ रहे हैं। 'प्रबलप्रताप कोसलनाथ श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो' ऐसा पुकारते हुए वे उनके गुणसमूहोंको गा रहे हैं॥ १॥

सहि सक न भार उदार अहिपति बार बारहिं मोहई।
गह दसन पुनि पुनि कमठ पृष्ठ कठोर सो किमि सोहई॥

रघुबीर रुचिर प्रयान प्रस्थिति जानि परम सुहावनी।
जनु कमठ खर्पर सर्पराज सो लिखत अबिचल पावनी॥ २॥

उदार (परम श्रेष्ठ एवं महान्) सर्पराज शेषजी भी सेनाका बोझ नहीं सह सकते, वे बार-बार मोहित हो जाते (घबड़ा जाते) हैं और पुनः-पुनः कच्छपकी कठोर पीठको दाँतोंसे पकड़ते हैं। ऐसा करते (अर्थात् बार-बार दाँतोंको गड़ाकर कच्छपकी पीठपर लकीर-सी खींचते हुए) वे कैसे शोभा दे रहे हैं मानो श्रीरामचन्द्रजीकी सुन्दर प्रस्थानयात्राको परम सुहावनी जानकर उसकी अचल पवित्र कथाको सर्पराज शेषजी कच्छपकी पीठपर लिख रहे हों॥ २॥

दो०—एहि बिधि जाइ कृपानिधि उतरे सागर तीर।
जहँ तहँ लागे खान फल भालु बिपुल कपि बीर॥ ३५॥

इस प्रकार कृपानिधान श्रीरामजी समुद्रतटपर जा उतरे। अनेकों रीछ-वानर वीर जहाँ-तहाँ फल खाने लगे॥ ३५॥

चौ०—उहाँ निसाचर रहहिं ससंका। जब तें जारि गयउ कपि लंका॥
निज निज गृहँ सब करहिं बिचारा। नहिं निसिचर कुल केर उबारा॥ १॥

वहाँ (लंकामें) जबसे हनुमान्‌जी लंकाको जलाकर गये, तबसे राक्षस भयभीत रहने लगे। अपने-अपने घरोंमें सब विचार करते हैं कि अब राक्षसकुलकी रक्षा [का कोई उपाय] नहीं है॥ १॥

जासु दूत बल बरनि न जाई। तेहि आएँ पुर कवन भलाई॥
दूतिन्ह सन सुनि पुरजन बानी। मंदोदरी अधिक अकुलानी॥ २॥

जिसके दूतका बल वर्णन नहीं किया जा सकता, उसके स्वयं नगरमें आनेपर कौन भलाई है (हमलोगोंकी बड़ी बुरी दशा होगी) ? दूतियोंसे नगरनिवासियोंके वचन सुनकर मन्दोदरी बहुत ही व्याकुल हो गयी॥ २॥

रहसि जोरि कर पति पग लागी। बोली बचन नीति रस पागी॥
कंत करष हरि सन परिहरहू। मोर कहा अति हित हियँ धरहू॥ ३॥

वह एकान्तमें हाथ जोड़कर पति (रावण) के चरणों लगी और नीतिरसमें पगी हुई वाणी बोली—हे प्रियतम ! श्रीहरिसे विरोध छोड़ दीजिये। मेरे कहनेको अत्यन्त ही हितकर जानकर हृदयमें धारण कीजिये॥ ३॥

समुझत जासु दूत कइ करनी। स्रवहिं गर्भ रजनीचर घरनी॥
तासु नारि निज सचिव बोलाई। पठवहु कंत जो चहहु भलाई॥ ४॥

जिनके दूतकी करनीका विचार करते ही (स्मरण आते ही) राक्षसोंकी स्त्रियोंके गर्भ गिर जाते हैं, हे प्यारे स्वामी ! यदि भला चाहते हैं तो अपने मन्त्रीको बुलाकर उसके साथ उनकी स्त्रीको भेज दीजिये॥ ४॥

तव कुल कमल बिपिन दुखदाई। सीता सीत निसा सम आई॥
सुनहु नाथ सीता बिनु दीन्हें। हित न तुम्हार संभु अज कीन्हें॥ ५॥

सीता आपके कुलरूपी कमलोंके वनको दुःख देनेवाली जाड़ेकी रात्रिके समान आयी है। हे नाथ ! सुनिये, सीताको दिये (लौटाये) बिना शम्भु और ब्रह्माके किये भी आपका भला नहीं हो सकता॥ ५॥

दो०—राम बान अहि गन सरिस निकर निसाचर भेक।
जब लगि ग्रसत न तब लगि जतनु करहु तजि टेक॥ ३६॥

श्रीरामजीके बाण सर्पोंके समूहके समान हैं और राक्षसोंके समूह मेढकके समान। जबतक वे इन्हें ग्रस नहीं लेते (निगल नहीं जाते) तबतक हठ छोड़कर उपाय कर लीजिये॥ ३६॥

चौ०—श्रवन सुनी सठ ता करि बानी। बिहसा जगत बिदित अभिमानी॥
सभय सुभाउ नारि कर साचा। मंगल महुँ भय मन अति काचा॥ १॥

मूर्ख और जगत्प्रसिद्ध अभिमानी रावण कानोंसे उसकी वाणी सुनकर खूब हँसा [और बोला—] स्त्रियोंका स्वभाव सचमुच ही बहुत डरपोक होता है। मङ्गलमें भी भय करती हो। तुम्हारा मन (हृदय) बहुत ही कच्चा (कमजोर) है॥ १॥

जौं आवइ मर्कट कटकाई। जिअहिं बिचारे निसिचर खाई॥
कंपहिं लोकप जाकीं त्रासा। तासु नारि सभीत बड़ि हासा॥ २॥

यदि वानरोंकी सेना आवेगी तो बेचारे राक्षस उसे खाकर अपना जीवननिर्वाह करेंगे। लोकपाल भी जिसके डरसे काँपते हैं, उसकी स्त्री डरती हो, यह बड़ी हँसीकी बात है॥ २॥

अस कहि बिहसि ताहि उर लाई। चलेउ सभाँ ममता अधिकाई॥
मंदोदरी हृदयँ कर चिंता। भयउ कंत पर बिधि बिपरीता॥ ३॥

रावणने ऐसा कहकर हँसकर उसे हृदयसे लगा लिया और ममता बढ़ाकर (अधिक स्नेह दर्शाकर) वह सभामें चला गया। मन्दोदरी हृदयमें चिन्ता करने लगी कि पतिपर विधाता प्रतिकूल हो गये॥ ३॥

बैठेउ सभाँ खबरि असि पाई। सिंधु पार सेना सब आई॥
बूझेसि सचिव उचित मत कहहू। ते सब हँसे मष्ट करि रहहू॥ ४॥

ज्यों ही वह सभामें जाकर बैठा, उसने ऐसी खबर पायी कि शत्रुकी सारी सेना समुद्रके उस पार आ गयी है। उसने मन्त्रियोंसे पूछा कि उचित सलाह कहिये [अब क्या करना चाहिये ?]। तब वे सब हँसे और बोले कि चुप किये रहिये (इसमें सलाहकी कौन-सी बात है ?)॥ ४॥

जितेहु सुरासुर तब श्रम नाहीं। नर बानर केहि लेखे माहीं॥ ५॥

आपने देवताओं और राक्षसोंको जीत लिया, तब तो कुछ श्रम ही नहीं हुआ। फिर मनुष्य और वानर किस गिनतीमें हैं ?॥ ५॥

दो०—सचिव बैद गुर तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीनि कर होइ बेगिहीं नास॥ ३७॥

मन्त्री, वैद्य और गुरु—ये तीन यदि [अप्रसन्नताके] भय या [लाभकी] आशासे [हितकी बात न कहकर] प्रिय बोलते हैं (ठकुरसुहाती कहने लगते हैं); तो [क्रमशः] राज्य, शरीर और धर्म—इन तीनका शीघ्र ही नाश हो जाता है॥ ३७॥

चौ०—सोइ रावन कहुँ बनी सहाई। अस्तुति करहिं सुनाइ सुनाई॥
अवसर जानि बिभीषनु आवा। भ्राता चरन सीसु तेहिं नावा॥ १॥

रावणके लिये भी वही सहायता (संयोग) आ बनी है। मन्त्री उसे सुना-सुनाकर (मुँहपर) स्तुति करते हैं। [इसी समय] अवसर जानकर विभीषणजी आये। उन्होंने बड़े भाईके चरणोंमें सिर नवाया॥ १॥

पुनि सिरु नाइ बैठ निज आसन। बोला बचन पाइ अनुसासन॥
जौ कृपाल पूँछिहु मोहि बाता। मति अनुरूप कहउँ हित ताता॥ २॥

फिर वे सिर नवाकर अपने आसनपर बैठ गये और आज्ञा पाकर ये वचन बोले—हे कृपालु! जब आपने मुझसे बात (राय) पूछी ही है, तो हे तात! मैं अपनी बुद्धिके अनुसार आपके हितकी बात कहता हूँ— ॥ २॥

जो आपन चाहै कल्याना। सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना॥
सो परनारि लिलार गोसाईं। तजउ चउथि के चंद कि नाईं॥ ३॥

जो मनुष्य अपना कल्याण, सुन्दर यश, सुबुद्धि, शुभ गति और नाना प्रकारके सुख चाहता हो, वह हे स्वामी! परस्त्रीके ललाटको चौथके चन्द्रमाकी तरह त्याग दे (अर्थात् जैसे लोग चौथके चन्द्रमाको नहीं देखते, उसी प्रकार परस्त्रीका मुख ही न देखे) ॥ ३॥

चौदह भुवन एक पति होई। भूत द्रोह तिष्ठइ नहिं सोई॥
गुन सागर नागर नर जोऊ। अलप लोभ भल कहइ न कोऊ॥ ४॥

चौदहों भुवनोंका एक ही स्वामी हो, वह भी जीवोंसे वैर करके ठहर नहीं सकता (नष्ट हो जाता है)। जो मनुष्य गुणोंका समुद्र और चतुर हो, उसे चाहे थोड़ा भी लोभ क्यों न हो, तो भी कोई भला नहीं कहता॥ ४॥

दो०—काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ।
सब परिहरि रघुबीरहि भजहु भजहिं जेहि संत॥ ३८॥

हे नाथ! काम, क्रोध, मद और लोभ—ये सब नरकके रास्ते हैं। इन सबको छोड़कर श्रीरामचन्द्रजीको भजिये, जिन्हें संत (सत्पुरुष) भजते हैं॥ ३८॥

चौ०—तात राम नहिं नर भूपाला। भुवनेस्वर कालहु कर काला॥
ब्रह्म अनामय अज भगवंता। ब्यापक अजित अनादि अनंता॥ १॥

हे तात! राम मनुष्योंके ही राजा नहीं हैं। वे समस्त लोकोंके स्वामी और कालके भी काल हैं। वे [सम्पूर्ण ऐश्वर्य, यश, श्री, धर्म, वैराग्य एवं ज्ञानके भण्डार] भगवान् हैं; वे निरामय (विकाररहित), अजन्मा, व्यापक, अजेय, अनादि और अनन्त ब्रह्म हैं॥ १॥

गो द्विज धेनु देव हितकारी। कृपा सिंधु मानुष तनुधारी॥
जन रंजन भंजन खल ब्राता। बेद धर्म रच्छक सुनु भ्राता॥ २॥

उन कृपाके समुद्र भगवान्‌ने पृथ्वी, ब्राह्मण, गौ और देवताओंका हित करनेके लिये ही मनुष्य-शरीर धारण किया है। हे भाई! सुनिये, वे सेवकोंको आनन्द देनेवाले, दुष्टोंके समूहका नाश करनेवाले और वेद तथा धर्मकी रक्षा करनेवाले हैं॥ २॥

ताहि बयरु तजि नाइअ माथा। प्रनतारति भंजन रघुनाथा॥
देहु नाथ प्रभु कहुँ बैदेही। भजहु राम बिनु हेतु सनेही॥ ३॥

वैर त्यागकर उन्हें मस्तक नवाइये। वे श्रीरघुनाथजी शरणागतका दुःख नाश करनेवाले हैं। हे नाथ! उन प्रभु (सर्वेश्वर) को जानकीजी दे दीजिये और बिना ही कारण स्नेह करनेवाले श्रीरामजीको भजिये॥ ३॥

सरन गएँ प्रभु ताहु न त्यागा। बिस्व द्रोह कृत अघ जेहि लागा॥
जासु नाम त्रय ताप नसावन। सोइ प्रभु प्रगट समुझु जियँ रावन॥ ४॥

जिसे सम्पूर्ण जगत्‌से द्रोह करनेका पाप लगा है, शरण जानेपर प्रभु उसका भी त्याग नहीं करते। जिनका नाम तीनों तापोंका नाश करनेवाला है, वे ही प्रभु (भगवान्) मनुष्यरूपमें प्रकट हुए हैं। हे रावण! हृदयमें यह समझ लीजिये॥ ४॥

दो०—बार बार पद लागउँ बिनय करउँ दससीस।
परिहरि मान मोह मद भजहु कोसलाधीस॥ ३९ क॥

हे दशशीश! मैं बार-बार आपके चरणों लगता हूँ और विनती करता हूँ कि मान, मोह और मदको त्यागकर आप कोसलपति श्रीरामजीका भजन कीजिये॥ ३९ (क)॥

मुनि पुलस्ति निज सिष्य सन कहि पठई यह बात।
तुरत सो मैं प्रभु सन कही पाइ सुअवसरु तात॥ ३९ ख॥

मुनि पुलस्त्यजीने अपने शिष्यके हाथ यह बात कहला भेजी है। हे तात! सुन्दर अवसर पाकर मैंने तुरंत ही वह बात प्रभु (आप) से कह दी॥ ३९ (ख)॥

चौ०—माल्यवंत अति सचिव सयाना। तासु बचन सुनि अति सुख माना॥
तात अनुज तव नीति बिभूषन। सो उर धरहु जो कहत बिभीषन॥ १॥

माल्यवान् नामका एक बहुत ही बुद्धिमान् मन्त्री था। उसने उन (विभीषण) के वचन सुनकर बहुत सुख माना [और कहा—] हे तात! आपके छोटे भाई नीति-विभूषण (नीतिको भूषणरूपमें धारण करनेवाले अर्थात् नीतिमान्) हैं। विभीषण जो कुछ कह रहे हैं उसे हृदयमें धारण कर लीजिये॥ १॥

रिपु उतकरष कहत सठ दोऊ। दूरि न करहु इहाँ हइ कोऊ॥
माल्यवंत गृह गयउ बहोरी। कहइ बिभीषनु पुनि कर जोरी॥ २॥

[रावणने कहा—] ये दोनों मूर्ख शत्रुकी महिमा बखान रहे हैं। यहाँ कोई है? इन्हें दूर करो न! तब माल्यवान् तो घर लौट गया और विभीषणजी हाथ जोड़कर फिर कहने लगे— ॥ २॥

सुमति कुमति सब कें उर रहहीं। नाथ पुरान निगम अस कहहीं॥
जहाँ सुमति तहँ संपति नाना। जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना॥ ३॥

हे नाथ! पुराण और वेद ऐसा कहते हैं कि सुबुद्धि (अच्छी बुद्धि) और कुबुद्धि (खोटी बुद्धि) सबके हृदयमें रहती हैं, जहाँ सुबुद्धि है, वहाँ नाना प्रकारकी सम्पदाएँ (सुखकी स्थिति) रहती हैं और जहाँ कुबुद्धि है, वहाँ परिणाममें विपत्ति (दुःख) रहती है॥ ३॥

तव उर कुमति बसी बिपरीता। हित अनहित मानहु रिपु प्रीता॥
कालराति निसिचर कुल केरी। तेहि सीता पर प्रीति घनेरी॥ ४॥

आपके हृदयमें उलटी बुद्धि आ बसी है। इसीसे आप हितको अहित और शत्रुको मित्र मान रहे हैं। जो राक्षसकुलके लिये कालरात्रि [के समान] हैं, उन सीतापर आपकी बड़ी प्रीति है॥ ४॥

दो०—तात चरन गहि मागउँ राखहु मोर दुलार।
सीता देहु राम कहुँ अहित न होइ तुम्हार॥ ४०॥

हे तात! मैं चरण पकड़कर आपसे भीख माँगता हूँ (विनती करता हूँ) कि आप मेरा दुलार

रखिये (मुझ बालकके आग्रहको स्नेहपूर्वक स्वीकार कीजिये)। श्रीरामजीको सीताजी दे दीजिये, जिसमें आपका अहित न हो॥ ४०॥

चौ०—बुध पुरान श्रुति संमत बानी। कही बिभीषन नीति बखानी॥
सुनत दसानन उठा रिसाई। खल तोहि निकट मृत्यु अब आई॥ १॥

विभीषणने पण्डितों, पुराणों और वेदोंद्वारा सम्मत (अनुमोदित) वाणीसे नीति बखानकर कही। पर उसे सुनते ही रावण क्रोधित होकर उठा और बोला कि रे दुष्ट! अब मृत्यु तेरे निकट आ गयी है!॥ १॥

जिअसि सदा सठ मोर जिआवा। रिपु कर पच्छ मूढ़ तोहि भावा॥
कहसि न खल अस को जग माहीं। भुज बल जाहि जिता मैं नाहीं॥ २॥

अरे मूर्ख! तू जीता तो है सदा मेरा जिलाया हुआ (अर्थात् मेरे ही अन्नसे पल रहा है), पर हे मूढ़! पक्ष तुझे शत्रुका ही अच्छा लगता है। अरे दुष्ट! बता न, जगत्‌में ऐसा कौन है जिसे मैंने अपनी भुजाओंके बलसे न जीता हो?॥ २॥

मम पुर बसि तपसिन्ह पर प्रीती। सठ मिलु जाइ तिन्हहि कहु नीती॥
अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा। अनुज गहे पद बारहिं बारा॥ ३॥

मेरे नगरमें रहकर प्रेम करता है तपस्वियोंपर। मूर्ख! उन्हींसे जा मिल और उन्हींको नीति बता। ऐसा कहकर रावणने उन्हें लात मारी। परंतु छोटे भाई विभीषणने [मारनेपर भी] बार-बार उसके चरण ही पकड़े॥ ३॥

उमा संत कइ इहइ बड़ाई। मंद करत जो करइ भलाई॥
तुम्ह पितु सरिस भलेहिं मोहि मारा। रामु भजें हित नाथ तुम्हारा॥ ४॥

[शिवजी कहते हैं—] हे उमा! संतकी यही बड़ाई (महिमा) है कि वे बुराई करनेपर भी [बुराई करनेवालेकी] भलाई ही करते हैं। [विभीषणजीने कहा—] आप मेरे पिताके समान हैं, मुझे मारा सो तो अच्छा ही किया; परंतु हे नाथ! आपका भला श्रीरामजीको भजनेमें ही है॥ ४॥

सचिव संग लै नभ पथ गयऊ। सबहि सुनाइ कहत अस भयऊ॥ ५॥

[इतना कहकर] विभीषण अपने मन्त्रियोंको साथ लेकर आकाशमार्गमें गये और सबको सुनाकर वे ऐसा कहने लगे—॥ ५॥

दो०—रामु सत्यसंकल्प प्रभु सभा कालबस तोरि।
मैं रघुबीर सरन अब जाउँ देहु जनि खोरि॥ ४१॥

श्रीरामजी सत्यसंकल्प एवं [सर्वसमर्थ] प्रभु हैं और [हे रावण] तुम्हारी सभा कालके वश है। अतः मैं अब श्रीरघुवीरकी शरण जाता हूँ, मुझे दोष न देना॥ ४१॥

चौ०—अस कहि चला बिभीषनु जबहीं। आयू हीन भए सब तबहीं॥
साधु अवग्या तुरत भवानी। कर कल्यान अखिल कै हानी॥ १॥

ऐसा कहकर विभीषणजी ज्यों ही चले, त्यों ही सब राक्षस आयुहीन हो गये (उनकी मृत्यु निश्चित हो गयी)। [शिवजी कहते हैं—] हे भवानी! साधुका अपमान तुरंत ही सम्पूर्ण कल्याणकी हानि (नाश) कर देता है॥ १॥

रावन जबहिं बिभीषन त्यागा। भयउ बिभव बिनु तबहिं अभागा॥
चलेउ हरषि रघुनायक पाहीं। करत मनोरथ बहु मन माहीं॥ २॥

रावणने जिस क्षण विभीषणको त्यागा, उसी क्षण वह अभागा वैभव (ऐश्वर्य) से हीन हो गया। विभीषणजी हर्षित होकर मनमें अनेकों मनोरथ करते हुए श्रीरघुनाथजीके पास चले॥ २॥

देखिहउँ जाइ चरन जलजाता। अरुन मृदुल सेवक सुखदाता॥
जे पद परसि तरी रिषिनारी। दंडक कानन पावनकारी॥ ३॥

[वे सोचते जाते थे—] मैं जाकर भगवान्‌के कोमल और लाल वर्णके सुन्दर चरणकमलोंके दर्शन करूँगा, जो सेवकोंको सुख देनेवाले हैं, जिन चरणोंका स्पर्श पाकर ऋषिपत्नी अहल्या तर गयीं और जो दण्डकवनको पवित्र करनेवाले हैं॥ ३॥

जे पद जनकसुताँ उर लाए। कपट कुरंग संग धर धाए॥
हर उर सर सरोज पद जेई। अहोभाग्य मैं देखिहउँ तेई॥ ४॥

जिन चरणोंको जानकीजीने हृदयमें धारण कर रक्खा है, जो कपटमृगके साथ पृथ्वीपर [उसे पकड़नेको] दौड़े थे और जो चरणकमल साक्षात् शिवजीके हृदयरूपी सरोवरमें विराजते हैं, मेरा अहोभाग्य है कि उन्हींको आज मैं देखूँगा॥ ४॥

दो०—जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि भरतु रहे मन लाइ।
ते पद आजु बिलोकिहउँ इन्ह नयनन्हि अब जाइ॥ ४२॥

जिन चरणोंकी पादुकाओंमें भरतजीने अपना मन लगा रक्खा है, अहा! आज मैं उन्हीं चरणोंको अभी जाकर इन नेत्रोंसे देखूँगा॥ ४२॥

चौ०—एहि बिधि करत सप्रेम बिचारा। आयउ सपदि सिंधु एहिं पारा॥
कपिन्ह बिभीषनु आवत देखा। जाना कोउ रिपु दूत बिसेषा॥ १॥

इस प्रकार प्रेमसहित विचार करते हुए वे शीघ्र ही समुद्रके इस पार (जिधर श्रीरामचन्द्रजीकी सेना थी) आ गये। वानरोंने विभीषणको आते देखा तो उन्होंने जाना कि शत्रुका कोई खास दूत है॥ १॥

ताहि राखि कपीस पहिं आए। समाचार सब ताहि सुनाए॥
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। आवा मिलन दसानन भाई॥ २॥

उन्हें [पहरेपर] ठहराकर वे सुग्रीवके पास आये और उनको सब समाचार कह सुनाये। सुग्रीवने [श्रीरामजीके पास जाकर] कहा—हे रघुनाथजी! सुनिये, रावणका भाई [आपसे] मिलने आया है॥ २॥

कह प्रभु सखा बूझिऐ काहा। कहइ कपीस सुनहु नरनाहा॥
जानि न जाइ निसाचर माया। कामरूप केहि कारन आया॥ ३॥

प्रभु श्रीरामजीने कहा—हे मित्र! तुम क्या समझते हो (तुम्हारी क्या राय है)? वानरराज सुग्रीवने कहा—हे महाराज! सुनिये, राक्षसोंकी माया जानी नहीं जाती। यह इच्छानुसार रूप बदलनेवाला (छली) न जाने किस कारण आया है॥ ३॥

भेद हमार लेन सठ आवा। राखिअ बाँधि मोहि अस भावा॥
सखा नीति तुम्ह नीकि बिचारी। मम पन सरनागत भयहारी॥ ४॥

[जान पड़ता है] यह मूर्ख हमारा भेद लेने आया है, इसलिये मुझे तो यही अच्छा लगता है कि इसे बाँध रक्खा जाय। [श्रीरामजीने कहा—] हे मित्र ! तुमने नीति तो अच्छी विचारी ! परंतु मेरा प्रण तो है शरणागतके भयको हर लेना ! ॥ ४ ॥

सुनि प्रभु बचन हरष हनुमाना। सरनागत बच्छल भगवाना ॥ ५ ॥

प्रभुके वचन सुनकर हनुमान्‌जी हर्षित हुए [और मन-ही-मन कहने लगे कि] भगवान् कैसे शरणागतवत्सल (शरणमें आये हुएपर पिताकी भाँति प्रेम करनेवाले) हैं ॥ ५ ॥

दो०—सरनागत कहुँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि।
ते नर पावँर पापमय तिन्हहि बिलोकत हानि ॥ ४३ ॥

[श्रीरामजी फिर बोले—] जो मनुष्य अपने अहितका अनुमान करके शरणमें आये हुएका त्याग कर देते हैं, वे पामर (क्षुद्र) हैं, पापमय हैं; उन्हें देखनेमें भी हानि है (पाप लगता है) ॥ ४३ ॥

चौ०—कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू। आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू ॥
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं ॥ १ ॥

जिसे करोड़ों ब्राह्मणोंकी हत्या लगी हो, शरणमें आनेपर मैं उसे भी नहीं त्यागता। जीव ज्यों ही मेरे सम्मुख होता है, त्यों ही उसके करोड़ों जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥

पापवंत कर सहज सुभाऊ। भजनु मोर तेहि भाव न काऊ ॥
जौं पै दुष्ट हृदय सोइ होई। मोरें सनमुख आव कि सोई ॥ २ ॥

पापीका यह सहज स्वभाव होता है कि मेरा भजन उसे कभी नहीं सुहाता। यदि वह (रावणका भाई) निश्चय ही दुष्ट हृदयका होता तो क्या वह मेरे सम्मुख आ सकता था ? ॥ २ ॥

निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा ॥
भेद लेन पठवा दससीसा। तबहुँ न कछु भय हानि कपीसा ॥ ३ ॥

जो मनुष्य निर्मल मनका होता है, वही मुझे पाता है। मुझे कपट और छल-छिद्र नहीं सुहाते। यदि उसे रावणने भेद लेनेको भेजा है, तब भी हे सुग्रीव ! अपनेको कुछ भी भय या हानि नहीं है ॥ ३ ॥

जग महुँ सखा निसाचर जेते। लछिमनु हनइ निमिष महुँ तेते ॥
जौं सभीत आवा सरनाईं। रखिहउँ ताहि प्रान की नाईं ॥ ४ ॥

क्योंकि हे सखे ! जगत्‌में जितने भी राक्षस हैं, लक्ष्मण क्षणभरमें उन सबको मार सकते हैं और यदि वह भयभीत होकर मेरे शरण आया है तो मैं उसे प्राणोंकी तरह रक्खूँगा ॥ ४ ॥

दो०—उभय भाँति तेहि आनहु हँसि कह कृपानिकेत।
जय कृपाल कहि कपि चले अंगद हनू समेत ॥ ४४ ॥

कृपाके धाम श्रीरामजीने हँसकर कहा—दोनों ही स्थितियोंमें उसे ले आओ। तब अंगद और हनुमान्‌सहित सुग्रीवजी 'कृपालु श्रीरामकी जय हो' कहते हुए चले ॥ ४४ ॥

चौ०—सादर तेहि आगें करि बानर। चले जहाँ रघुपति करुनाकर ॥
दूरिहि ते देखे द्वौ भ्राता। नयनानंद दान के दाता ॥ १ ॥

विभीषणजीको आदरसहित आगे करके वानर फिर वहाँ चले, जहाँ करुणाकी खान श्रीरघुनाथजी थे। नेत्रोंको आनन्दका दान देनेवाले (अत्यन्त सुखद) दोनों भाइयोंको विभीषणजीने दूरहीसे देखा ॥ १ ॥

बहुरि राम छबिधाम बिलोकी। रहेउ ठटुकि एकटक पल रोकी॥
भुज प्रलंब कंजारुन लोचन। स्यामल गात प्रनत भय मोचन॥ २॥

फिर शोभाके धाम श्रीरामजीको देखकर वे पलक [मारना] रोककर ठिठककर (स्तब्ध होकर) एकटक देखते ही रह गये। भगवान्‌की विशाल भुजाएँ हैं, लाल कमलके समान नेत्र हैं और शरणागतके भयका नाश करनेवाला साँवला शरीर है॥ २॥

सिंघ कंध आयत उर सोहा। आनन अमित मदन मन मोहा॥
नयन नीर पुलकित अति गाता। मन धरि धीर कही मृदु बाता॥ ३॥

सिंहके-से कंधे हैं, विशाल वक्षःस्थल (चौड़ी छाती) अत्यन्त शोभा दे रहा है। असंख्य कामदेवोंके मनको मोहित करनेवाला मुख है। भगवान्‌के स्वरूपको देखकर विभीषणजीके नेत्रोंमें [प्रेमाश्रुओंका] जल भर आया और शरीर अत्यन्त पुलकित हो गया। फिर मनमें धीरज धरकर उन्होंने कोमल वचन कहे॥ ३॥

नाथ दसानन कर मैं भ्राता। निसिचर बंस जनम सुरत्राता॥
सहज पापप्रिय तामस देहा। जथा उलूकहि तम पर नेहा॥ ४॥

हे नाथ! मैं दशमुख रावणका भाई हूँ। हे देवताओंके रक्षक! मेरा जन्म राक्षसकुलमें हुआ है। मेरा तामसी शरीर है, स्वभावसे ही मुझे पाप प्रिय हैं, जैसे उल्लूको अन्धकारपर सहज स्नेह होता है॥ ४॥

दो०—श्रवन सुजसु सुनि आयउँ प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीर॥ ४५॥

मैं कानोंसे आपका सुयश सुनकर आया हूँ कि प्रभु भव (जन्म-मरण) के भयका नाश करनेवाले हैं। हे दुखियोंके दुःख दूर करनेवाले और शरणागतको सुख देनेवाले श्रीरघुवीर! मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये॥ ४५॥

चौ०—अस कहि करत दंडवत देखा। तुरत उठे प्रभु हरष बिसेषा॥
दीन बचन सुनि प्रभु मन भावा। भुज बिसाल गहि हृदयँ लगावा॥ १॥

प्रभुने उन्हें ऐसा कहकर दण्डवत् करते देखा तो वे अत्यन्त हर्षित होकर तुरंत उठे। विभीषणजीके दीन वचन सुननेपर प्रभुके मनको बहुत ही भाये। उन्होंने अपनी विशाल भुजाओंसे पकड़कर उनको हृदयसे लगा लिया॥ १॥

अनुज सहित मिलि ढिग बैठारी। बोले बचन भगत भय हारी॥
कहु लंकेस सहित परिवारा। कुसल कुठाहर बास तुम्हारा॥ २॥

छोटे भाई लक्ष्मणजीसहित गले मिलकर उनको अपने पास बैठाकर श्रीरामजी भक्तोंके भयको हरनेवाले वचन बोले—हे लंकेश! परिवारसहित अपनी कुशल कहो। तुम्हारा निवास बुरी जगहपर है॥ २॥

खल मंडलीं बसहु दिनु राती। सखा धरम निबहइ केहि भाँती॥
मैं जानउँ तुम्हारि सब रीती। अति नय निपुन न भाव अनीती॥ ३॥

दिन-रात दुष्टोंकी मण्डलीमें बसते हो। [ऐसी दशामें] हे सखे! तुम्हारा धर्म किस प्रकार निभता है? मैं तुम्हारी सब रीति (आचार-व्यवहार) जानता हूँ। तुम अत्यन्त नीतिनिपुण हो, तुम्हें अनीति नहीं सुहाती॥ ३॥

बरु भल बास नरक कर ताता। दुष्ट संग जनि देइ बिधाता॥
अब पद देखि कुसल रघुराया। जौं तुम्ह कीन्हि जानि जन दाया॥ ४॥

हे तात! नरकमें रहना वरं अच्छा है, परंतु विधाता दुष्टका संग [कभी] न दे। [विभीषणजीने कहा—] हे रघुनाथजी! अब आपके चरणोंका दर्शन कर कुशलसे हूँ, जो आपने अपना सेवक जानकर मुझपर दया की है॥ ४॥

दो०—तब लगि कुसल न जीव कहुँ सपनेहुँ मन बिश्राम।
जब लगि भजत न राम कहुँ सोक धाम तजि काम॥ ४६॥

तबतक जीवकी कुशल नहीं और न स्वप्नमें भी उसके मनको शान्ति है, जबतक वह शोकके घर काम (विषय-कामना) को छोड़कर श्रीरामजीको नहीं भजता॥ ४६॥

चौ०—तब लगि हृदयँ बसत खल नाना। लोभ मोह मच्छर मद माना॥
जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरें चाप सायक कटि भाथा॥ १॥

लोभ, मोह, मत्सर (डाह), मद और मान आदि अनेकों दुष्ट तभीतक हृदयमें बसते हैं, जबतक कि धनुष-बाण और कमरमें तरकस धारण किये हुए श्रीरघुनाथजी हृदयमें नहीं बसते॥ १॥

ममता तरुन तमी अँधिआरी। राग द्वेष उलूक सुखकारी॥
तब लगि बसति जीव मन माहीं। जब लगि प्रभु प्रताप रबि नाहीं॥ २॥

ममता पूर्ण अँधेरी रात है, जो राग-द्वेषरूपी उल्लुओंको सुख देनेवाली है। वह (ममतारूपी रात्रि) तभीतक जीवके मनमें बसती है, जबतक प्रभु (आप) का प्रतापरूपी सूर्य उदय नहीं होता॥ २॥

अब मैं कुसल मिटे भय भारे। देखि राम पद कमल तुम्हारे॥
तुम्ह कृपाल जा पर अनुकूला। ताहि न ब्यापत त्रिबिध भव सूला॥ ३॥

हे श्रीरामजी! आपके चरणारविन्दके दर्शन कर अब मैं कुशलसे हूँ, मेरे भारी भय मिट गये। हे कृपालु! आप जिसपर अनुकूल होते हैं, उसे तीनों प्रकारके भवशूल (आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक ताप) नहीं व्यापते॥ ३॥

मैं निसिचर अति अधम सुभाऊ। सुभ आचरनु कीन्ह नहिं काऊ॥
जासु रूप मुनि ध्यान न आवा। तेहिं प्रभु हरषि हृदयँ मोहि लावा॥ ४॥

मैं अत्यन्त नीच स्वभावका राक्षस हूँ। मैंने कभी शुभ आचरण नहीं किया। जिनका रूप मुनियोंके भी ध्यानमें नहीं आता, उन प्रभुने स्वयं हर्षित होकर मुझे हृदयसे लगा लिया॥ ४॥

दो०—अहोभाग्य मम अमित अति राम कृपा सुख पुंज।
देखेउँ नयन बिरंचि सिव सेब्य जुगल पद कंज॥ ४७॥

हे कृपा और सुखके पुञ्ज श्रीरामजी! मेरा अत्यन्त असीम सौभाग्य है, जो मैंने ब्रह्मा और शिवजीके द्वारा सेवित युगल चरणकमलोंको अपने नेत्रोंसे देखा॥ ४७॥

चौ०—सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ। जान भुसुंडि संभु गिरिजाऊ॥
जौं नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही॥ १॥

[श्रीरामजीने कहा—] हे सखा! सुनो! मैं तुम्हें अपना स्वभाव कहता हूँ, जिसे काकभुशुण्डि, शिवजी और पार्वतीजी भी जानती हैं। कोई मनुष्य [सम्पूर्ण] जड़-चेतन जगत्का

द्रोही हो, यदि वह भी भयभीत होकर मेरी शरण तककर आ जाय, ॥ १ ॥

तजि मद मोह कपट छल नाना। करउँ सद्य तेहि साधु समाना॥
जननी जनक बंधु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद परिवारा॥ २॥

और मद, मोह तथा नाना प्रकारके छल-कपट त्याग दे तो मैं उसे बहुत शीघ्र साधुके समान कर देता हूँ। माता, पिता, भाई, पुत्र, स्त्री, शरीर, धन, घर, मित्र और परिवार ॥ २ ॥

सब कै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध बरि डोरी॥
समदरसी इच्छा कछु नाहीं। हरष सोक भय नहिं मन माहीं॥ ३॥

इन सबके ममत्वरूपी तागोंको बटोरकर और उन सबकी एक डोरी बटकर उसके द्वारा जो अपने मनको मेरे चरणोंमें बाँध देता है (सारे सांसारिक सम्बन्धोंका केन्द्र मुझे बना लेता है), जो समदर्शी है, जिसे कुछ इच्छा नहीं है और जिसके मनमें हर्ष, शोक और भय नहीं है ॥ ३ ॥

अस सज्जन मम उर बस कैसें। लोभी हृदयँ बसइ धनु जैसें॥
तुम्ह सारिखे संत प्रिय मोरें। धरउँ देह नहिं आन निहोरें॥ ४॥

ऐसा सज्जन मेरे हृदयमें कैसे बसता है, जैसे लोभीके हृदयमें धन बसा करता है। तुम-सरीखे संत ही मुझे प्रिय हैं। मैं और किसीके निहोरेसे (कृतज्ञतावश) देह धारण नहीं करता ॥ ४ ॥

दो०—सगुन उपासक परहित निरत नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्रान समान मम जिन्ह कें द्विज पद प्रेम॥ ४८॥

जो सगुण (साकार) भगवान्‌के उपासक हैं, दूसरेके हितमें लगे रहते हैं, नीति और नियमोंमें दृढ़ हैं और जिन्हें ब्राह्मणोंके चरणोंमें प्रेम है, वे मनुष्य मेरे प्राणोंके समान हैं॥ ४८ ॥

चौ०—सुनु लंकेस सकल गुन तोरें। तातें तुम्ह अतिसय प्रिय मोरें॥
राम बचन सुनि बानर जूथा। सकल कहहिं जय कृपाबरूथा॥ १॥

हे लङ्कापति ! सुनो, तुम्हारे अंदर उपर्युक्त सब गुण हैं। इससे तुम मुझे अत्यन्त ही प्रिय हो। श्रीरामजीके वचन सुनकर सब वानरोंके समूह कहने लगे—कृपाके समूह श्रीरामजीकी जय हो ॥ १ ॥

सुनत बिभीषनु प्रभु कै बानी। नहिं अघात श्रवनामृत जानी॥
पद अंबुज गहि बारहिं बारा। हृदयँ समात न प्रेमु अपारा॥ २॥

प्रभुकी वाणी सुनते हैं और उसे कानोंके लिये अमृत जानकर विभीषणजी अघाते नहीं हैं। वे बार-बार श्रीरामजीके चरणकमलोंको पकड़ते हैं। अपार प्रेम है, हृदयमें समाता नहीं है ॥ २ ॥

सुनहु देव सचराचर स्वामी। प्रनतपाल उर अंतरजामी॥
उर कछु प्रथम बासना रही। प्रभु पद प्रीति सरित सो बही॥ ३॥

[विभीषणजीने कहा—] हे देव ! हे चराचर जगत्‌के स्वामी !हे शरणागतके रक्षक ! हे सबके हृदयके भीतरकी जाननेवाले ! सुनिये, मेरे हृदयमें पहले कुछ वासना थी। वह प्रभुके चरणोंकी प्रीतिरूपी नदीमें बह गयी ॥ ३ ॥

अब कृपाल निज भगति पावनी। देहु सदा सिव मन भावनी॥
एवमस्तु कहि प्रभु रनधीरा। मागा तुरत सिंधु कर नीरा॥ ४॥

अब तो हे कृपालु ! शिवजीके मनको सदैव प्रिय लगनेवाली अपनी पवित्र भक्ति मुझे

दीजिये। 'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) कहकर रणधीर प्रभु श्रीरामजीने तुरंत ही समुद्रका जल माँगा ॥ ४ ॥

जदपि सखा तव इच्छा नाहीं। मोर दरसु अमोघ जग माहीं ॥
अस कहि राम तिलक तेहि सारा। सुमन बृष्टि नभ भई अपारा ॥ ५ ॥

[और कहा—] हे सखा ! यद्यपि तुम्हारी इच्छा नहीं है, पर जगत्‌में मेरा दर्शन अमोघ है (वह निष्फल नहीं जाता) । ऐसा कहकर श्रीरामजीने उनको राजतिलक कर दिया। आकाशसे पुष्पोंकी अपार वृष्टि हुई ॥ ५ ॥

दो०—रावन क्रोध अनल निज स्वास समीर प्रचंड।
जरत बिभीषनु राखेउ दीन्हेउ राजु अखंड ॥ ४९ क ॥

श्रीरामजीने रावणके क्रोधरूपी अग्निमें, जो अपनी (विभीषणकी) श्वास (वचन) रूपी पवनसे प्रचण्ड हो रही थी, जलते हुए विभीषणको बचा लिया और उसे अखण्ड राज्य दिया ॥ ४९ (क) ॥

जो संपति सिव रावनहि दीन्हि दिएँ दस माथ।
सोइ संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ ॥ ४९ ख ॥

शिवजीने जो सम्पत्ति रावणको दसों सिरोंकी बलि देनेपर दी थी, वही सम्पत्ति श्रीरघुनाथजीने विभीषणको बहुत सकुचते हुए दी ॥ ४९ (ख) ॥

चौ०—अस प्रभु छाड़ि भजहिं जे आना। ते नर पसु बिनु पूँछ बिषाना ॥
निज जन जानि ताहि अपनावा। प्रभु सुभाव कपि कुल मन भावा ॥ १ ॥

ऐसे परम कृपालु प्रभुको छोड़कर जो मनुष्य दूसरेको भजते हैं, वे बिना सींग-पूँछके पशु हैं। अपना सेवक जानकर विभीषणको श्रीरामजीने अपना लिया। प्रभुका स्वभाव वानरकुलके मनको [बहुत] भाया ॥ १ ॥

पुनि सर्बग्य सर्ब उर बासी। सर्बरूप सब रहित उदासी ॥
बोले बचन नीति प्रतिपालक। कारन मनुज दनुज कुल घालक ॥ २ ॥

फिर सब कुछ जाननेवाले, सबके हृदयमें बसनेवाले, सर्वरूप (सब रूपोंमें प्रकट), सबसे रहित, उदासीन, कारणसे (भक्तोंपर कृपा करनेके लिये) मनुष्य बने हुए तथा राक्षसोंके कुलका नाश करनेवाले श्रीरामजी नीतिकी रक्षा करनेवाले वचन बोले— ॥ २ ॥

सुनु कपीस लंकापति बीरा। केहि बिधि तरिअ जलधि गंभीरा ॥
संकुल मकर उरग झष जाती। अति अगाध दुस्तर सब भाँती ॥ ३ ॥

हे वीर वानरराज सुग्रीव और लङ्कापति विभीषण ! सुनो, इस गहरे समुद्रको किस प्रकार पार किया जाय ? अनेक जातिके मगर, साँप और मछलियोंसे भरा हुआ यह अत्यन्त अथाह समुद्र पार करनेमें सब प्रकारसे कठिन है ॥ ३ ॥

कह लंकेस सुनहु रघुनायक। कोटि सिंधु सोषक तव सायक ॥
जद्यपि तदपि नीति असि गाई। बिनय करिअ सागर सन जाई ॥ ४ ॥

बिभीषणजीने कहा—हे रघुनाथजी ! सुनिये, यद्यपि आपका एक बाण ही करोड़ों समुद्रोंको सोखनेवाला है (सोख सकता है), तथापि नीति ऐसी कही गयी है (उचित यह होगा) कि [पहले] जाकर समुद्रसे प्रार्थना की जाय ॥ ४ ॥

दो०—प्रभु तुम्हार कुलगुर जलधि कहिहि उपाय बिचारि।
बिनु प्रयास सागर तरिहि सकल भालु कपि धारि ॥ ५० ॥

हे प्रभु ! समुद्र आपके कुलमें बड़े (पूर्वज) हैं, वे विचारकर उपाय बतला देंगे। तब रीछ और वानरोंकी सारी सेना बिना ही परिश्रमके समुद्रके पार उतर जायगी ॥ ५० ॥

चौ०—सखा कही तुम्ह नीकि उपाई। करिअ दैव जौं होइ सहाई ॥
मंत्र न यह लछिमन मन भावा। राम बचन सुनि अति दुख पावा ॥ १ ॥

[श्रीरामजीने कहा—] हे सखा ! तुमने अच्छा उपाय बताया। यही किया जाय, यदि दैव सहायक हों। यह सलाह लक्ष्मणजीके मनको अच्छी नहीं लगी। श्रीरामजीके वचन सुनकर तो उन्होंने बहुत ही दुःख पाया ॥ १ ॥

नाथ दैव कर कवन भरोसा। सोषिअ सिंधु करिअ मन रोसा ॥
कादर मन कहुँ एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा ॥ २ ॥

[लक्ष्मणजीने कहा—] हे नाथ ! दैवका कौन भरोसा ! मनमें क्रोध कीजिये (ले आइये) और समुद्रको सुखा डालिये। यह दैव तो कायरके मनका एक आधार (तसल्ली देनेका उपाय) है। आलसी लोग ही दैव-दैव पुकारा करते हैं ॥ २ ॥

सुनत बिहसि बोले रघुबीरा। ऐसेहिं करब धरहु मन धीरा ॥
अस कहि प्रभु अनुजहि समुझाई। सिंधु समीप गए रघुराई ॥ ३ ॥

यह सुनकर श्रीरघुवीर हँसकर बोले—ऐसे ही करेंगे, मनमें धीरज रक्खो। ऐसा कहकर छोटे भाईको समझाकर प्रभु श्रीरघुनाथजी समुद्रके समीप गये ॥ ३ ॥

प्रथम प्रनाम कीन्ह सिरु नाई। बैठे पुनि तट दर्भ डसाई ॥
जबहिं बिभीषन प्रभु पहिं आए। पाछें रावन दूत पठाए ॥ ४ ॥

उन्होंने पहले सिर नवाकर प्रणाम किया। फिर किनारेपर कुश बिछाकर बैठ गये। इधर ज्यों ही विभीषणजी प्रभुके पास आये थे, त्यों ही रावणने उनके पीछे दूत भेजे थे ॥ ४ ॥

दो०—सकल चरित तिन्ह देखे धरें कपट कपि देह।
प्रभु गुन हृदयँ सराहहिं सरनागत पर नेह ॥ ५१ ॥

कपटसे वानरका शरीर धारणकर उन्होंने सब लीलाएँ देखीं। वे अपने हृदयमें प्रभुके गुणोंकी और शरणागतपर उनके स्नेहकी सराहना करने लगे ॥ ५१ ॥

चौ०—प्रगट बखानहिं राम सुभाऊ। अति सप्रेम गा बिसरि दुराऊ ॥
रिपु के दूत कपिन्ह तब जाने। सकल बाँधि कपीस पहिं आने ॥ १ ॥

फिर वे प्रकटरूपमें भी अत्यन्त प्रेमके साथ श्रीरामजीके स्वभावकी बड़ाई करने लगे, उन्हें दुराव (कपट वेष) भूल गया। तब वानरोंने जाना कि ये शत्रुके दूत हैं और वे उन सबको बाँधकर सुग्रीवके पास ले आये ॥ १ ॥

कह सुग्रीव सुनहु सब बानर। अंग भंग करि पठवहु निसिचर ॥
सुनि सुग्रीव बचन कपि धाए। बाँधि कटक चहु पास फिराए ॥ २ ॥

सुग्रीवने कहा—सब वानरो ! सुनो, राक्षसोंके अङ्ग-भङ्ग करके भेज दो। सुग्रीवके वचन सुनकर वानर दौड़े। दूतोंको बाँधकर उन्होंने सेनाके चारों ओर घुमाया ॥ २ ॥

बहु प्रकार मारन कपि लागे। दीन पुकारत तदपि न त्यागे ॥
जो हमार हर नासा काना। तेहि कोसलाधीस कै आना ॥ ३ ॥

वानर उन्हें बहुत तरहसे मारने लगे। वे दीन होकर पुकारते थे, फिर भी वानरोंने उन्हें नहीं छोड़ा। [तब दूतोंने पुकारकर कहा—] जो हमारे नाक-कान काटेगा, उसे कोशलाधीश श्रीरामजीकी सौगंध है॥ ३॥

सुनि लछिमन सब निकट बोलाए। दया लागि हँसि तुरत छोड़ाए॥
रावन कर दीजहु यह पाती। लछिमन बचन बाचु कुलघाती॥ ४॥

यह सुनकर लक्ष्मणजीने सबको निकट बुलाया। उन्हें बड़ी दया लगी, इससे हँसकर उन्होंने राक्षसोंको तुरंत ही छुड़ा दिया। [और उनसे कहा—] रावणके हाथमें यह चिट्ठी देना [और कहना—] हे कुलघातक ! लक्ष्मणके शब्दों (सँदेसे) को बाँचो॥ ४॥

दो०—कहेहु मुखागर मूढ़ सन मम संदेसु उदार।
सीता देइ मिलहु न त आवा कालु तुम्हार॥ ५२॥

फिर उस मूर्खसे जबानी यह मेरा उदार (कृपासे भरा हुआ) संदेश कहना कि सीताजीको देकर उनसे (श्रीरामजीसे) मिलो, नहीं तो तुम्हारा काल आ गया [समझो]॥ ५२॥

चौ०—तुरत नाइ लछिमन पद माथा। चले दूत बरनत गुन गाथा॥
कहत राम जसु लंकाँ आए। रावन चरन सीस तिन्ह नाए॥ १॥

लक्ष्मणजीके चरणोंमें मस्तक नवाकर, श्रीरामजीके गुणोंकी कथा वर्णन करते हुए दूत तुरंत ही चल दिये। श्रीरामजीका यश कहते हुए वे लङ्कामें आये और उन्होंने रावणके चरणोंमें सिर नवाये॥ १॥

बिहसि दसानन पूँछी बाता। कहसि न सुक आपनि कुसलाता॥
पुनि कहु खबरि बिभीषन केरी। जाहि मृत्यु आई अति नेरी॥ २॥

दशमुख रावणने हँसकर बात पूछी—अरे शुक ! अपनी कुशल क्यों नहीं कहता ? फिर उस विभीषणका समाचार सुना, मृत्यु जिसके अत्यन्त निकट आ गयी है॥ २॥

करत राज लंका सठ त्यागी। होइहि जव कर कीट अभागी॥
पुनि कहु भालु कीस कटकाई। कठिन काल प्रेरित चलि आई॥ ३॥

मूर्खने राज्य करते हुए लङ्काको त्याग दिया। अभागा अब जौका कीड़ा (घुन) बनेगा (जौके साथ जैसे घुन भी पिस जाता है, वैसे ही नर-वानरोंके साथ वह भी मारा जायगा); फिर भालु और वानरोंकी सेनाका हाल कह, जो कठिन कालकी प्रेरणासे यहाँ चली आयी है॥ ३॥

जिन्ह के जीवन कर रखवारा। भयउ मृदुल चित सिंधु बिचारा॥
कहु तपसिन्ह कै बात बहोरी। जिन्ह के हृदयँ त्रास अति मोरी॥ ४॥

और जिनके जीवनका रक्षक कोमल चित्तवाला बेचारा समुद्र बन गया है (अर्थात् उनके और राक्षसोंके बीचमें यदि समुद्र न होता तो अबतक राक्षस उन्हें मारकर खा गये होते)। फिर उन तपस्वियोंकी बात बता, जिनके हृदयमें मेरा बड़ा डर है॥ ४॥

दो०—की भइ भेंट कि फिरि गए श्रवन सुजसु सुनि मोर।
कहसि न रिपु दल तेज बल बहुत चकित चित तोर॥ ५३॥

उनसे तेरी भेंट हुई या वे कानोंसे मेरा सुयश सुनकर ही लौट गये ? शत्रुसेनाका तेज और बल बताता क्यों नहीं ? तेरा चित्त बहुत ही चकित (भौंचक्का-सा) हो रहा है॥ ५३॥

चौ०—नाथ कृपा करि पूँछेहु जैसें। मानहु कहा क्रोध तजि तैसें॥
मिला जाइ जब अनुज तुम्हारा। जातहिं राम तिलक तेहि सारा॥ १॥

[दूतने कहा—] हे नाथ! आपने जैसे कृपा करके पूछा है, वैसे ही क्रोध छोड़कर मेरा कहना मानिये (मेरी बातपर विश्वास कीजिये)। जब आपका छोटा भाई श्रीरामजीसे जाकर मिला, तब उसके पहुँचते ही श्रीरामजीने उसको राजतिलक कर दिया॥ १॥

रावन दूत हमहि सुनि काना। कपिन्ह बाँधि दीन्हे दुख नाना॥
श्रवन नासिका काटैं लागे। राम सपथ दीन्हें हम त्यागे॥ २॥

हम रावणके दूत हैं, यह कानोंसे सुनकर वानरोंने हमें बाँधकर बहुत कष्ट दिये, यहाँतक कि वे हमारे नाक-कान काटने लगे। श्रीरामजीकी शपथ दिलानेपर कहीं उन्होंने हमको छोड़ा॥ २॥

पूँछिहु नाथ राम कटकाई। बदन कोटि सत बरनि न जाई॥
नाना बरन भालु कपि धारी। बिकटानन बिसाल भयकारी॥ ३॥

हे नाथ! आपने श्रीरामजीकी सेना पूछी; सो वह तो सौ करोड़ मुखोंसे भी वर्णन नहीं की जा सकती। अनेकों रंगोंके भालु और वानरोंकी सेना है, जो भयंकर मुखवाले, विशाल शरीरवाले और भयानक हैं॥ ३॥

जेहिं पुर दहेउ हतेउ सुत तोरा। सकल कपिन्ह महँ तेहि बलु थोरा॥
अमित नाम भट कठिन कराला। अमित नाग बल बिपुल बिसाला॥ ४॥

जिसने नगरको जलाया और आपके पुत्र अक्षयकुमारको मारा, उसका बल तो सब वानरोंमें थोड़ा है। असंख्य नामोंवाले बड़े ही कठोर और भयंकर योद्धा हैं। उनमें असंख्य हाथियोंका बल है और वे बड़े ही विशाल हैं॥ ४॥

दो०—द्विबिद मयंद नील नल अंगद गद बिकटासि।
दधिमुख केहरि निसठ सठ जामवंत बलरासि॥ ५४॥

द्विविद, मयंद, नील, नल, अंगद, गद, विकटास्य, दधिमुख, केसरी, निशठ, शठ और जाम्बवान्—ये सभी बलकी राशि हैं॥ ५४॥

चौ०—ए कपि सब सुग्रीव समाना। इन्ह सम कोटिन्ह गनइ को नाना॥
राम कृपाँ अतुलित बल तिन्हहीं। तृन समान त्रैलोकहि गनहीं॥ १॥

ये सब वानर बलमें सुग्रीवके समान हैं और इनके-जैसे [एक-दो नहीं] करोड़ों हैं; उन बहुत-सोंको गिन ही कौन सकता है? श्रीरामजीकी कृपासे उनमें अतुलनीय बल है। वे तीनों लोकोंको तृणके समान [तुच्छ] समझते हैं॥ १॥

अस मैं सुना श्रवन दसकंधर। पदुम अठारह जूथप बंदर॥
नाथ कटक महँ सो कपि नाहीं। जो न तुम्हहि जीतै रन माहीं॥ २॥

हे दशग्रीव! मैंने कानोंसे ऐसा सुना है कि अठारह पद्म तो अकेले वानरोंके सेनापति हैं। हे नाथ! उस सेनामें ऐसा कोई वानर नहीं है, जो आपको रणमें न जीत सके॥ २॥

परम क्रोध मीजहिं सब हाथा। आयसु पै न देहिं रघुनाथा॥
सोषहिं सिंधु सहित झष ब्याला। पूरहिं न त भरि कुधर बिसाला॥ ३॥

सब-के-सब अत्यन्त क्रोधसे हाथ मीजते हैं। पर श्रीरघुनाथजी उन्हें आज्ञा नहीं देते। हम मछलियों

और साँपोंसहित समुद्रको सोख लेंगे। नहीं तो बड़े-बड़े पर्वतोंसे उसे भरकर पूर (पाट) देंगे॥ ३॥

मर्दि गर्द मिलवहिं दससीसा। ऐसेइ बचन कहहिं सब कीसा॥
गर्जहिं तर्जहिं सहज असंका। मानहुँ ग्रसन चहत हहिं लंका॥ ४॥

और रावणको मसलकर धूलमें मिला देंगे। सब वानर ऐसे ही वचन कह रहे हैं। सब सहज ही निडर हैं; इस प्रकार गरजते और डपटते हैं मानो लङ्काको निगल ही जाना चाहते हैं॥ ४॥

दो०—सहज सूर कपि भालु सब पुनि सिर पर प्रभु राम।
रावन काल कोटि कहुँ जीति सकहिं संग्राम॥ ५५॥

सब वानर-भालू सहज ही शूरवीर हैं फिर उनके सिरपर प्रभु (सर्वेश्वर) श्रीरामजी हैं। हे रावण! वे संग्राममें करोड़ों कालोंको जीत सकते हैं॥ ५५॥

चौ०—राम तेज बल बुधि बिपुलाई। सेष सहस सत सकहिं न गाई॥
सक सर एक सोषि सत सागर। तव भ्रातहि पूँछेउ नय नागर॥ १॥

श्रीरामचन्द्रजीके तेज (सामर्थ्य), बल और बुद्धिकी अधिकताको लाखों शेष भी नहीं गा सकते। वे एक ही बाणसे सैकड़ों समुद्रोंको सोख सकते हैं, परन्तु नीतिनिपुण श्रीरामजीने [नीतिकी रक्षाके लिये] आपके भाईसे उपाय पूछा॥ १॥

तासु बचन सुनि सागर पाहीं। मागत पंथ कृपा मन माहीं॥
सुनत बचन बिहसा दससीसा। जौं असि मति सहाय कृत कीसा॥ २॥

उनके (आपके भाईके) वचन सुनकर वे (श्रीरामजी) समुद्रसे राह माँग रहे हैं, उनके मनमें कृपा भरी है [इसलिये वे उसे सोखते नहीं]। दूतके ये वचन सुनते ही रावण खूब हँसा [और बोला—]जब ऐसी बुद्धि है, तभी तो वानरोंको सहायक बनाया है!॥ २॥

सहज भीरु कर बचन दृढ़ाई। सागर सन ठानी मचलाई॥
मूढ़ मृषा का करसि बड़ाई। रिपु बल बुद्धि थाह मैं पाई॥ ३॥

स्वाभाविक ही डरपोक विभीषणके वचनके प्रमाण करके उन्होंने समुद्रसे मचलना (बालहठ) ठाना है। अरे मूर्ख! झूठी बड़ाई क्या करता है? बस, मैंने शत्रु (राम) के बल और बुद्धिकी थाह पा ली॥ ३॥

सचिव सभीत बिभीषन जाकें। बिजय बिभूति कहाँ जग ताकें॥
सुनि खल बचन दूत रिस बाढ़ी। समय बिचारि पत्रिका काढ़ी॥ ४॥

जिसके विभीषण-जैसा डरपोक मन्त्री हो, उसे जगत्‌में विजय और विभूति (ऐश्वर्य) कहाँ? दुष्ट रावणके वचन सुनकर दूतको क्रोध बढ़ आया। उसने मौका समझकर पत्रिका निकाली॥ ४॥

रामानुज दीन्ही यह पाती। नाथ बचाइ जुड़ावहु छाती॥
बिहसि बाम कर लीन्ही रावन। सचिव बोलि सठ लाग बचावन॥ ५॥

[और कहा—] श्रीरामजीके छोटे भाई लक्ष्मणने यह पत्रिका दी है। हे नाथ! इसे बचवाकर छाती ठंडी कीजिये। रावणने हँसकर उसे बायें हाथसे लिया और मन्त्रीको बुलवाकर वह मूर्ख उसे बँचाने लगा॥ ५॥

दो०—बातन्ह मनहि रिझाइ सठ जनि घालसि कुल खीस।
राम बिरोध न उबरसि सरन बिष्नु अज ईस॥ ५६ क॥

[पत्रिकामें लिखा था—] अरे मूर्ख ! केवल बातोंसे ही मनको रिझाकर अपने कुलको नष्ट-भ्रष्ट न कर। श्रीरामजीसे विरोध करके तू विष्णु, ब्रह्मा और महेशकी शरण जानेपर भी नहीं बचेगा ॥ ५६ (क) ॥

की तजि मान अनुज इव प्रभु पद पंकज भृंग।
होहि कि राम सरानल खल कुल सहित पतंग ॥ ५६ ख ॥

या तो अभिमान छोड़कर अपने छोटे भाई विभीषणकी भाँति प्रभुके चरण-कमलोंका भ्रमर बन जा। अथवा रे दुष्ट ! श्रीरामजीके बाणरूपी अग्निमें परिवारसहित पतिंगा हो जा (दोनोंमेंसे जो अच्छा लगे सो कर) ॥ ५६ (ख) ॥

चौ०—सुनत सभय मन मुख मुसुकाई। कहत दसानन सबहि सुनाई ॥
भूमि परा कर गहत अकासा। लघु तापस कर बाग बिलासा ॥ १ ॥

पत्रिका सुनते ही रावण मनमें भयभीत हो गया, परंतु मुखसे (ऊपरसे) मुसकराता हुआ वह सबको सुनाकर कहने लगा—जैसे कोई पृथ्वीपर पड़ा हुआ हाथसे आकाशको पकड़नेकी चेष्टा करता हो, वैसे ही यह छोटा तपस्वी (लक्ष्मण) वाग्विलास करता है (डींग हाँकता है) ॥ १ ॥

कह सुक नाथ सत्य सब बानी। समुझहु छाड़ि प्रकृति अभिमानी ॥
सुनहु बचन मम परिहरि क्रोधा। नाथ राम सन तजहु बिरोधा ॥ २ ॥

शुक (दूत) ने कहा—हे नाथ ! अभिमानी स्वभावको छोड़कर [इस पत्रमें लिखी] सब बातोंको सत्य समझिये। क्रोध छोड़कर मेरा वचन सुनिये। हे नाथ ! श्रीरामजीसे वैर त्याग दीजिये ॥ २ ॥

अति कोमल रघुबीर सुभाऊ। जद्यपि अखिल लोक कर राऊ ॥
मिलत कृपा तुम्ह पर प्रभु करिही। उर अपराध न एकउ धरिही ॥ ३ ॥

यद्यपि श्रीरघुवीर समस्त लोकोंके स्वामी हैं, पर उनका स्वभाव अत्यन्त ही कोमल है। मिलते ही प्रभु आपपर कृपा करेंगे और आपका एक भी अपराध वे हृदयमें नहीं रक्खेंगे ॥ ३ ॥

जनकसुता रघुनाथहि दीजे। एतना कहा मोर प्रभु कीजे ॥
जब तेहिं कहा देन बैदेही। चरन प्रहार कीन्ह सठ तेही ॥ ४ ॥

जानकीजी श्रीरघुनाथजीको दे दीजिये। हे प्रभु ! इतना कहना मेरा कीजिये। जब उस (दूत) ने जानकीजीको देनेके लिये कहा, तब दुष्ट रावणने उसको लात मारी ॥ ४ ॥

नाइ चरन सिरु चला सो तहाँ। कृपासिंधु रघुनायक जहाँ ॥
करि प्रनामु निज कथा सुनाई। राम कृपाँ आपनि गति पाई ॥ ५ ॥

वह भी [विभीषणकी भाँति] चरणोंमें सिर नवाकर वहीं चला, जहाँ कृपासागर श्रीरघुनाथजी थे। प्रणाम करके उसने अपनी कथा सुनायी और श्रीरामजीकी कृपासे अपनी गति (मुनिका स्वरूप) पायी ॥ ५ ॥

रिषि अगस्ति कीं साप भवानी। राछस भयउ रहा मुनि ग्यानी ॥
बंदि राम पद बारहिं बारा। मुनि निज आश्रम कहुँ पगु धारा ॥ ६ ॥

[शिवजी कहते हैं—] हे भवानी ! वह ज्ञानी मुनि था, अगस्त्य ऋषिके शापसे राक्षस हो गया था। बार-बार श्रीरामजीके चरणोंकी वन्दना करके वह मुनि अपने आश्रमको चला गया ॥ ६ ॥

दो०—बिनय न मानत जलधि जड़ गए तीनि दिन बीति।
बोले राम सकोप तब भय बिनु होइ न प्रीति ॥ ५७ ॥

इधर तीन दिन बीत गये, किंतु जड समुद्र विनय नहीं मानता। तब श्रीरामजी क्रोधसहित बोले—बिना भयके प्रीति नहीं होती ! ॥ ५७ ॥

चौ०—लछिमन बान सरासन आनू। सोषौं बारिधि बिसिख कृसानू॥
सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीती। सहज कृपन सन सुंदर नीती॥ १॥

हे लक्ष्मण ! धनुष-बाण लाओ, मैं अग्निबाणसे समुद्रको सोख डालूँ। मूर्खसे विनय, कुटिलके साथ प्रीति, स्वाभाविक ही कंजूससे सुन्दर नीति (उदारताका उपदेश), ॥ १ ॥

ममता रत सन ग्यान कहानी। अति लोभी सन बिरति बखानी॥
क्रोधिहि सम कामिहि हरिकथा। ऊसर बीज बएँ फल जथा॥ २॥

ममतामें फँसे हुए मनुष्यसे ज्ञानकी कथा, अत्यन्त लोभीसे वैराग्यका वर्णन, क्रोधीसे शम (शान्ति) की बात और कामीसे भगवान्‌की कथा, इनका वैसा ही फल होता है जैसा ऊसरमें बीज बोनेसे होता है (अर्थात् ऊसरमें बीज बोनेकी भाँति यह सब व्यर्थ जाता है) ॥ २ ॥

अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा। यह मत लछिमन के मन भावा॥
संधानेउ प्रभु बिसिख कराला। उठी उदधि उर अंतर ज्वाला॥ ३॥

ऐसा कहकर श्रीरघुनाथजीने धनुष चढ़ाया। यह मत लक्ष्मणजीके मनको बहुत अच्छा लगा। प्रभुने भयानक [अग्नि] बाण सन्धान किया, जिससे समुद्रके हृदयके अंदर अग्निकी ज्वाला उठी ॥ ३ ॥

मकर उरग झष गन अकुलाने। जरत जंतु जलनिधि जब जाने॥
कनक थार भरि मनि गन नाना। बिप्र रूप आयउ तजि माना॥ ४॥

मगर, साँप तथा मछलियोंके समूह व्याकुल हो गये। जब समुद्रने जीवोंको जलते जाना, तब सोनेके थालमें अनेक मणियों (रत्नों) को भरकर अभिमान छोड़कर वह ब्राह्मणके रूपमें आया ॥ ४ ॥

दो०—काटेहिं पइ कदरी फरइ कोटि जतन कोउ सींच।
बिनय न मान खगेस सुनु डाटेहिं पइ नव नीच॥ ५८॥

[काकभुशुण्डिजी कहते हैं—] हे गरुड़जी ! सुनिये, चाहे कोई करोड़ों उपाय करके सींचे, पर केला तो काटनेपर ही फलता है। नीच विनयसे नहीं मानता, वह डाँटनेपर ही झुकता है (रास्तेपर आता है) ॥ ५८ ॥

सभय सिंधु गहि पद प्रभु केरे। छमहु नाथ सब अवगुन मेरे॥
गगन समीर अनल जल धरनी। इन्ह कइ नाथ सहज जड़ करनी॥ १॥

समुद्रने भयभीत होकर प्रभुके चरण पकड़कर कहा—हे नाथ ! मेरे सब अवगुण (दोष) क्षमा कीजिये। हे नाथ ! आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—इन सबकी करनी स्वभावसे ही जड है ॥ १ ॥

तव प्रेरित मायाँ उपजाए। सृष्टि हेतु सब ग्रंथनि गाए॥
प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई। सो तेहि भाँति रहें सुख लहई॥ २॥

आपकी प्रेरणासे मायाने इन्हें सृष्टिके लिये उत्पन्न किया है, सब ग्रन्थोंने यही गाया है। जिसके लिये स्वामीकी जैसी आज्ञा है, वह उसी प्रकारसे रहनेमें सुख पाता है ॥ २ ॥

प्रभु भल कीन्ह मोहि सिख दीन्ही। मरजादा पुनि तुम्हरी कीन्ही॥
ढोल गवाँर सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी॥ ३॥

प्रभुने अच्छा किया जो मुझे शिक्षा (दण्ड) दी; किंतु मर्यादा (जीवोंका स्वभाव) भी आपकी

ही बनायी हुई है। ढोल, गँवार, शूद्र, पशु और स्त्री—ये सब दण्डके अधिकारी हैं॥ ३॥

प्रभु प्रताप मैं जाब सुखाई। उतरिहि कटकु न मोरि बड़ाई॥
प्रभु अग्या अपेल श्रुति गाई। करौं सो बेगि जो तुम्हहि सोहाई॥ ४॥

प्रभुके प्रतापसे मैं सूख जाऊँगा और सेना पार उतर जायगी, इसमें मेरी बड़ाई नहीं है (मेरी मर्यादा नहीं रहेगी)। तथापि प्रभुकी आज्ञा अपेल है (अर्थात् आपकी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं हो सकता) ऐसा वेद गाते हैं। अब आपको जो अच्छा लगे, मैं तुरंत वहीं करूँ॥ ४॥

दो०—सुनत बिनीत बचन अति कह कृपाल मुसुकाइ।
जेहि बिधि उतरै कपि कटकु तात सो कहहु उपाइ॥ ५९॥

समुद्रके अत्यन्त विनीत वचन सुनकर कृपालु श्रीरामजीने मुसकराकर कहा—हे तात! जिस प्रकर वानरोंकी सेना पार उतर जाय, वह उपाय बताओ॥ ५९॥

चौ०—नाथ नील नल कपि द्वौ भाई। लरिकाईं रिषि आसिष पाई॥
तिन्ह कें परस किएँ गिरि भारे। तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे॥ १॥

[समुद्रने कहा—] हे नाथ! नील और नल दो वानर भाई हैं। उन्होंने लड़कपनमें ऋषिसे आशीर्वाद पाया था। उनके स्पर्श कर लेनेसे ही भारी-भारी पहाड़ भी आपके प्रतापसे समुद्रपर तैर जायँगे॥ १॥

मैं पुनि उर धरि प्रभु प्रभुताई। करिहउँ बल अनुमान सहाई॥
एहि बिधि नाथ पयोधि बँधाइअ। जेहिं यह सुजसु लोक तिहुँ गाइअ॥ २॥

मैं भी प्रभुकी प्रभुताको हृदयमें धारण कर अपने बलके अनुसार (जहाँतक मुझसे बन पड़ेगा) सहायता करूँगा। हे नाथ! इस प्रकार समुद्रको बँधाइये, जिससे तीनों लोकोंमें आपका सुन्दर यश गाया जाय॥ २॥

एहिं सर मम उत्तर तट बासी। हतहु नाथ खल नर अघ रासी॥
सुनि कृपाल सागर मन पीरा। तुरतहिं हरी राम रनधीरा॥ ३॥

इस बाणसे मेरे उत्तर तटपर रहनेवाले पापके राशि दुष्ट मनुष्योंका वध कीजिये। कृपालु और रणधीर श्रीरामजीने समुद्रके मनकी पीड़ा सुनकर उसे तुरंत ही हर लिया (अर्थात् बाणसे उन दुष्टोंका वध कर दिया)॥ ३॥

देखि राम बल पौरुष भारी। हरषि पयोनिधि भयउ सुखारी॥
सकल चरित कहि प्रभुहि सुनावा। चरन बंदि पाथोधि सिधावा॥ ४॥

श्रीरामजीका भारी बल और पौरुष देखकर समुद्र हर्षित होकर सुखी हो गया। उसने उन दुष्टोंका सारा चरित्र प्रभुको कह सुनाया। फिर चरणोंकी वन्दना करके समुद्र चला गया॥ ४॥

छं०—निज भवन गवनेउ सिंधु श्रीरघुपतिहि यह मत भायऊ।
यह चरित कलि मलहर जथामति दास तुलसी गायऊ॥
सुख भवन संसय समन दवन बिषाद रघुपति गुन गना।
तजि सकल आस भरोस गावहि सुनहि संतत सठ मना॥

समुद्र अपने घर चला गया, श्रीरघुनाथजीको यह मत (उसकी सलाह) अच्छा लगा। यह चरित्र कलियुगके पापोंको हरनेवाला है, इसे तुलसीदासने अपनी बुद्धिके अनुसार गाया है। श्रीरघुनाथजीके गुणसमूह सुखके धाम, सन्देहका नाश करनेवाले और विषादका दमन करनेवाले हैं। अरे मूर्ख मन! तू संसारका सब आशा-भरोसा त्यागकर निरन्तर इन्हें गा और सुन।

दो०—सकल सुमंगल दायक रघुनायक गुन गान।
सादर सुनहिं ते तरहिं भव सिंधु बिना जलजान॥ ६०॥

श्रीरघुनाथजीका गुणगान सम्पूर्ण सुन्दर मङ्गलोंका देनेवाला है। जो इसे आदरसहित सुनेंगे, वे बिना किसी जहाज (अन्य साधन) के ही भवसागरको तर जायँगे॥ ६०॥

मासपारायण, चौबीसवाँ विश्राम

इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने पञ्चमः सोपानः समाप्तः।

कलियुगके समस्त पापोंका नाश करनेवाले श्रीरामचरितमानसका यह पाँचवाँ सोपान समाप्त हुआ।

(सुन्दरकाण्ड समाप्त)

श्रीरामायणजीकी आरती

आरति श्रीरामायनजी की।
कीरति कलित ललित सिय पी की॥
गावत ब्रह्मादिक मुनि नारद।
बालमीक बिग्यान बिसारद॥
सुक सनकादि सेष अरु सारद।
बरनि पवनसुत कीरति नीकी॥ १॥
गावत बेद पुरान अष्टदस।
छओ सास्त्र सब ग्रंथन को रस॥
मुनि जन धन संतन को सरबस।
सार अंस संमत सबही की॥ २॥
गावत संतत संभु भवानी।
अरु घटसंभव मुनि बिग्यानी॥
ब्यास आदि कबिबर्ज बखानी।
कागभुसुंडि गरुड के ही की॥ ३॥
कलिमल हरनि बिषय रस फीकी।
सुभग सिंगार मुक्ति जुबती की॥
दलन रोग भव मूरि अमी की।
तात मात सब बिधि तुलसी की॥ ४॥

दो०—सकल सुमंगल दायक रघुनायक गुन गान।
सादर सुनहिं ते तरहिं भव सिंधु बिना जलजान॥ ६०॥

श्रीरघुनाथजीका गुणगान सम्पूर्ण सुन्दर मङ्गलोंका देनेवाला है। जो इसे आदरसहित सुनेंगे, वे बिना किसी जहाज (अन्य साधन) के ही भवसागरको तर जायँगे॥ ६०॥

मासपारायण, चौबीसवाँ विश्राम

इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने पञ्चमः सोपानः समाप्तः।

कलियुगके समस्त पापोंका नाश करनेवाले श्रीरामचरितमानसका यह पाँचवाँ सोपान समाप्त हुआ।

(सुन्दरकाण्ड समाप्त)

श्रीरामायणजीकी आरती

आरति श्रीरामायनजी की।
कीरति कलित ललित सिय पी की॥
गावत ब्रह्मादिक मुनि नारद।
बालमीक बिग्यान बिसारद॥
सुक सनकादि सेष अरु सारद।
बरनि पवनसुत कीरति नीकी॥ १॥
गावत बेद पुरान अष्टदस।
छओ सास्त्र सब ग्रंथन को रस॥
मुनि जन धन संतन को सरबस।
सार अंस संमत सबही की॥ २॥
गावत संतत संभु भवानी।
अरु घटसंभव मुनि बिग्यानी॥
ब्यास आदि कबिबर्ज बखानी।
कागभुसुंडि गरुड के ही की॥ ३॥
कलिमल हरनि बिषय रस फीकी।
सुभग सिंगार मुक्ति जुबती की॥
दलन रोग भव मूरि अमी की।
तात मात सब बिधि तुलसी की॥ ४॥